PREAMBLE – CHAPTER 10
"The Opulence of the absolute " "Vibhuti Yog"

The previous chapter revealed the science of bhakti or loving devotion of God. In this chapter, Shree Krishna desires to increase Arjun's bhakti by describing His infinite glories and opulence. The verses are not only pleasing to read but also enchanting to hear. He helps Arjun to meditate on God by reflecting upon His magnificence.

Lord Krishna reveals that He is the source of all that exists. It is from His mind, the seven great sages, the four great saints, and the fourteen Manus were born. All the people of this world then descended from them. The various exceptional qualities in humans also arise from Him. Those devotees who know this engage in His devotion with great faith. They derive immense satisfaction by conversing about His glories and also help enlightening others about them. God dwells in the hearts of such devotees whose mind is always united in Him. He then bestows upon them His divine knowledge, through which they can attain God-realization.

Arjun is now fully convinced that Shree Krishna is the Supreme Divine Personality and requests Him to describe further His divine glories, which are like divine nectar. Shree Krishna then discloses that everything that exists is a manifestation of His energies. He is the beginning, middle, and end of all. All beings and things get their splendour from Him. He is the powerhouse of magnificence and the infinite reservoir of knowledge, power, beauty, and glory. Whatever catches our imagination and infuses us with bliss is nothing but a tiny spark of His opulence.

The rest of the chapter describes the personalities, objects, and activities that best display His magnificence. Shree Krishna finally says that the magnitude of His glory cannot be described in words, as within a fraction of His being, He upholds infinite universes. Since God is the source of all the splendour and glory, we must make Him the object of our devotion.

(Preamble -Courtesy “The song of GOD - Swami Mukundananda”)

प्रस्तावना - श्रीमद्भगवद गीता: दशमोS ध्याय - “विभूतियोग”

श्रीमद्भगवद् गीता का अध्ययन करने से पूर्व यह ख्याल रहता था कि एक व्यवसायिक और अपनी ही सांसारिक दुनियां में आसक्त व्यक्ति को गीता जैसे पुराणिक ग्रंथ का अध्ययन क्यों करना चाहिए। दुनिया में बाबा लोगो को देखता था तो लगता था कि इन से भले वह मजदूर है जो किसी पर निर्भर भी नही है और अपने आप पर घमंड भी नहीं करता। दिनचर्या में व्यवसाय किसी भी धर्म ग्रंथ को पढ़ने से ज्यादा महत्वपूर्ण लगता था। किंतु किसी अनहोनी पर अपनी विवशता भी नजर आती थी, जिसे नियति की मार मान कर स्वीकार करते थे। किंतु अध्ययन से पता चला जितना बौना हम अपने को समझ रहे थे, वह हम नहीं है। हम उस परब्रह्म के अंश के जिस ने ब्रह्मांड की रचना की। अपनी नियति भी हम ही तय करते है। अतः जिस विशिष्ट कार्य हेतु हम ने मानव जन्म लिया है, उस के जो मेहनत, सात्विक आवरण और कर्म हमे लोकसंग्रह हेतु करना है, उसे पूर्ण कर के पुनः हमे उसी परब्रह्म में विलीन होना है जो हमेशा चारो ओर विभिन्न स्वरूपों में विद्यमान है। बालक को सांसारिक ज्ञान अक्षर, स्वर और अभ्यास से करवाया जाता है, जिस से वह उस वस्तु के स्वरूप, स्वभाव, रंग और आभा को पहचान सके। यही प्रबोध ज्ञान गीता द्वारा हमे मिलता है जो हमे अपने स्वरूप से परिचय कराता है और दशम अध्याय में परमात्मा अब अपने उन स्वरूप को वर्णित करेंगे जिन्होंने प्रकृति के निमित्त हो कर निष्काम और लोकसंग्रह हेतु कर्म किए। यह परब्रह्म का स्वरूप है और यही जीव का स्वरूप है जरूरत उस के श्रवण, मनन और निदिध्यासन की है। प्रबोध ज्ञान के बाद ही आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञान से ही स्वयं से परिचय होता है। स्वयं से परिचय होने से आत्मशुद्धि होती है और प्रकृति के बंधन का बोध होता है। यही गीता के अध्ययन का महत्व है कि हम अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने कैसे भौतिक, राजनैतिक, व्यापार और व्यवसाय और विज्ञान के उच्चतम शिखर को छूने वाला प्रकृति से निमित्त ब्रह्म का अंश लोकसंग्रह के लिए निष्काम और निर्लिप्त भाव से कार्य करता है और अमृत सा बन संसार में चमकता रहता है और कैसे स्वार्थ, लोभ, दर्प, क्रूर और आतातायी जीव क्षण भर के संसार में छा जाता है और फिर लुप्त हो जाता है। सनातन संस्कृति में अपने उत्थान के साथ मुगल और अंग्रेजो के संकट को झेला, किंतु सत्य मिटता नही, इसलिए सनातन संस्कृति का पुनरुत्थान भगवान राम के मंदिर के रूप में होने जा रहा है।

नवम अध्याय का दृष्टिकोण, विचार या व्याख्या दसवें अध्याय में भी पाई जाती है। इस का नाम विभूतियोग है। इस का सार यह है कि लोक में जितने देवता हैं, सब एक ही भगवान, की विभूतियाँ हैं, मनुष्य के समस्त गुण और अवगुण भगवान की शक्ति के ही रूप हैं। बुद्धि से इन छुटभैए देवताओं की व्याख्या चाहे ने हो सके किंतु लोक में तो वह हैं ही। कोई पीपल को पूज रहा है। कोई पहाड़ को कोई नदी या समुद्र को, कोई उनमें रहनेवाले मछली, कछुओं को। यों कितने देवता हैं, इसका कोई अंत नहीं। विश्व के इतिहास में देवताओं की यह भरमार सर्वत्र पाई जाती है। भागवतों ने इनकी सत्ता को स्वीकारते हुए सब को विष्णु का रूप मानकर समन्वय की एक नई दृष्टि प्रदान की। इसी का नाम विभूतियोग है। जो सत्व जीव बलयुक्त अथवा चमत्कारयुक्त है, वह सब भगवान का रूप है। इतना मान लेने से चित्त निर्विरोध स्थिति में पहुँच जाता है। यह संसार में विभेद दृष्टि जीव की है, विभेद प्रकृति का भाग है, इसलिए विभेद से हम प्रकृति के जीवन को जीते है और आत्मा से हम अपने ब्रह्म स्वरूप को पहचानते है। इसलिए जो जीव आत्मशुद्धि से चित्त में कोई भी प्रकृति का विकार नहीं रखते हुए, प्रकृति के निमित्त हो कर सात्त्विक कर्म करता है, वही निष्काम कर्मयोगी है। इसलिए गीता सुनने के बाद अर्जुन ने युद्ध किया और युद्ध भी विजय की प्राप्ति हेतु पूर्ण दक्षता के साथ शत्रु को बिना किसी द्वेष और घृणा के भाव से किया। राम ने रावण का वध किया किंतु उस से कोई द्वेष नहीं किया। गीता से हमारे कर्म नही बदलते, उस का स्वरूप, उस से उत्पन्न कामना, स्वार्थ, लोभ और आसक्ति का भाव बदल जाता है और फिर वही कर्म हमारी पूजा हो जाता है। यह संसार में भगवान को समझने और देखने का तरीका बदल जाता है, संसार वही रहता है और अपनी ही गति में बहता चला जाता है।

प्रारम्भ में भगवान श्री कृष्ण योग शब्दवाच्य अपने प्रभाव का वर्णन कर के अपनी कुछ विभूतियों को बताते है, तद्पश्चात अपने बुद्धिमान अनन्य प्रेमी भक्तो के बारे में बता के पुनः विभूतियों एवम योगशक्तियो का विस्तार से वर्णन करते है। इसी प्रकार अपनी विभिन्न प्रधान प्रधान विभूतियों का वर्णन अंत तक करते हुए, अंतिम श्लोक में योग शब्दवाच्य अपने प्रभाव के वर्णन के साथ अध्याय का समापन 42वे श्लोक में करते है।

नवम श्लोक में राजगुह्य ज्ञान को अर्जुन को बतलाने के लिये श्रद्धा, विश्वास और प्रेम की बात कही गई थी। इसलिये परमात्मा का समस्त स्वरूपो में विद्यमान होना एवम संसार का रचियता एवम कर्ता होते हुए कार्य करने की बात सुन कर अर्जुन के मन मे भगवान के स्वरूप को जानने की इच्छा हुई। विभूतियों को जानने का अर्थ वही समझ सकता है जो इन्द्रिय-मन-बुद्धि में एकत्व को प्राप्त कर चुका हो। अध्यात्म प्रयोगशाला में प्रयोग कर के

सिद्ध करने का विषय नही है। "जो पदार्थ इन्द्रियातीत है और इसलिये जिन का चिंतन नही किया जा सकता, उन का निर्णय केवल तर्क या अनुमान से नही कर लेना चाहिये। सारी सृष्टि की मूल प्रकृति से भी परे जो पदार्थ है, वह इस प्रकार अचिन्त्य है" यह एक पुराना श्लोक भी है। अतः विभूतियों में अतिभोतिक दृष्टिकोण से जो दिखता है, उस से परे जो है, उस को समझना चाहिए। भगवद गीता का सिंद्धांत यही है कि प्रकृति और पुरुष से भी परे एक सर्वव्यापक, अव्यक्त और अमृत तत्व है, वही चर और अचर प्रकृति का मूल है। इसलिये भगवान ने कहा भी है कि यद्यपि मै अव्यक्त अर्थात इन्द्रियों को अगोचर हूँ, तो भी मूर्ख लोग मुझे व्यक्त समझते है, और व्यक्त में भी परे के मेरे श्रेष्ठ तथा अव्यक्त रूप को नही पहचानते। तुम जो मेरा रूप देख रहे हो, वह मेरी की हुई माया है, इससे तुम यह न समझो कि मै सर्वभूतों के गुणों से युक्त हूँ। इसलिये विभूतियों में परमात्मा का वर्णन सांकेतिक ही है, वह उस से भी परे है। जिसे जानने के लिये ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनो का भेद मिटना आवश्यक है, यही ध्यान की तुरीयातीत अवस्था है।

सच्चा ज्ञान वही है, जिससे आमनित्व, क्षान्ति, आत्मनिग्रह, समबुद्धि इत्यादि उदात्त मनोवृतियां जागृत हो जावे। जिस की व्यवसायिक बुद्धि, वासनात्मक बुद्धि और निश्चयात्मक बुद्धि आदि शुद्ध हो कर शुद्ध आचरण में परिवतित हो जाये। जो सच्चा अंतर्बाह्य शुद्ध अर्थात साम्य शील हो गया हो, वही आत्मनिष्ठ है और मुक्ति उसी को मिलती है। मोक्ष बाजार में बिकने वाली रेवड़ी नही है, जो चाहे खरीद ले, इसलिये प्रत्येक जीव को समबुद्धि आत्मनिष्ठ होना ही होगा।

गीता अध्ययन में यदि हमारे ज्ञान शाब्दिक रह जाये और हम यदि सुविचारों के प्रचारक ही रह जाये तो कोई अर्थ नही। कंप्यूटर और पुस्तको में गीता पूरी लिखी है। टेप रिकॉर्डर भी पूरी गीता बोल कर सुना सकता है। व्याख्यानों, आश्रमो एवम चर्चा के शिक्षण केंद्रों से गीता के ज्ञान को प्राप्त नही किया जा सकता, इस के लिये शुद्ध आचरण के चरित्र का गठन होना चाहिए। यह सामूहिक विचार न हो कर गीता के अध्ययन करने वाले का व्यक्तिगत लक्ष्य होना चाहिये, तभी वह भगवान की विभिन्न विभूतियों को समझ पायेगा।

आत्मशुद्धि या चित्तशुद्धी का अर्थ के मन पर विजय प्राप्त करना। इंद्रियजीत या जिन भी वही कहलाते है जो इंद्रियों को जीत लेते है। किंतु योगमाया के प्रभाव से जीव में समय के अनुसार प्रकृति के क्षणिक सुखों के लिए कामनाएं, आसक्ति, लोभ, मोह, ममता, स्वार्थ, ईर्ष्या, राग - द्वेष, क्रोध, घृणा जैसे दुर्गुण ज्ञानेद्रियो इंद्रियों द्वारा देख कर, सुनकर, स्वाद

चख कर, सूंघ कर और स्पर्श द्वारा पैदा होते है। इन पर कोई रोक है तो वह संस्कार, आत्मसंयम, सामाजिक प्रतिष्ठा, व्यक्तित्व और योग के द्वारा होती है। जब तक योग से जीव अपने को पूर्णतः नियंत्रित नही करता संस्कार, आत्मसंयम, सामाजिक प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व विभिन्न प्रकार से इन प्रकृति के गुणों को नियंत्रित रखता है, जिन्हे हम विभिन्न प्रकार के वैराग्य भी कह सकते है। जीव योगमाया में ग्रसित अपने को संत या सत्पुरुष समझता है क्योंकि उसे अनुचित करने का अवसर नही नहीं मिला। इस में सब से अलग और मुख्य किरदार यदि किसी का है, तो वह है अहम। क्योंकि कितना भी ऊंचे पद पर आप हो, पद का अहम आप को अपने आप से परिचय ही नही करने देता। जिस ने अवसर पा कर भी मन को नियंत्रित किया, वही सच्चा योगी होता है।

आज के युग मे वैराग्य जो अर्जुन को हुआ था, गीता पढ़ने वालों को भी होता है। किंतु वैराग्य में **प्रथम आपात वैराग्य** जो तीव्र इच्छा या आपात स्थिति से पैदा होता है और इच्छा की पूर्ति या समाप्ति या संकट की समाप्ति के साथ खत्म हो जाता है। **दूसरा वैराग्य श्मशान वैराग्य** है जो जगह के हिसाब से होता है और वह स्थान छोड़ने के साथ ही समाप्त हो जाता है। **तीसरा वैराग्य मर्कट वैराग्य** जो आज है और कल नही, **चौथा वैराग्य पुराण** वैराग्य है जो ज्ञानियो को ज्ञान की पुस्तक पढ़ने से या ध्यान, तप और श्रवण और श्रूति से मिलता है, यह ज्ञान बांटने और मन मे भरी कामनाओ के साथ होता है। जो ग्रुप बना कर, शिष्य बना कर आश्रम बनाने या पद, सत्ता या धन की लालसा या प्रसिद्धि की लालसा को ले कर होता है। किन्तु जिन्हें परमात्मा को प्राप्त करना होता है, उन का **वैराग्य नैमित्तिक वैराग्य** होता है। गीता को सभी अपने अपने वैराग्य के अनुसार पढ़ते है, उसी प्रकार विभूतियों को परमात्मा के स्वरूप में समझते है। परंतु जो भी जीव मुक्ति के लिए प्रयास करता है जैसा हम पूर्व अध्याय के अंतिम श्लोक में पढ़ा, उस के लिए मुक्ति का मार्ग स्वयं परमात्मा खोलता जाता है। वह ही उसे ज्ञान देता है और योगक्षेम वहन करता है।

जब सब कुछ ही परमात्मा है तो यहां दोहराने की आवश्यकता क्या है। मनुष्य प्रकृति के रहस्यों को खोजता रहता है, जैसे जैसे इस मे आगे बढ़ता है तो प्रकृति और भी गहरी और रहस्यमयी होती है। इस के आवरण में नए नए स्वरूप आते है और यह सूक्ष्म से सूक्ष्म होती जाती है।

विभूतियों के बाद ही अर्जुन को परमात्मा के विश्वरूप को देखने की उत्कंठा उत्पन्न हुई थी, वही उत्कंठा हम में भी हो, ऐसी आशा के साथ प्रस्तावना विषय से हट कर लिखी है।

इसलिये इस के प्रत्येक आवरण को सूक्ष्म रूप से जानना आवश्यक है, यही नवम अध्याय के जुड़ा हुआ दशम अध्याय हम पढ़ना शुरू करते है।

।। हरि ॐ तत सत।। गीता 10- प्रस्तावना ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.1॥

श्रीभगवानुवाच
भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया॥

"śrī-bhagavān uvāca,
bhūya eva mahā-bāho,
śṛṇu me paramaṁ vacaḥ..।
yat te 'haṁ prīyamāṇāya,
vakṣyāmi hita- kāmyayā"..।।

भावार्थ:

श्री भगवान् ने कहा - हे महाबाहु अर्जुन! तू मेरे परम-प्रभावशाली वचनों को फ़िर से सुन, क्योंकि मैं तुझे अत्यन्त प्रिय मानता हूँ इसलिये तेरे हित के लिये कहता हूँ। (१)

Meaning:

Shree Bhagavan said:

Again, O mighty armed warrior, listen to my supreme statements, which I will say to you filled with delight, desiring your well-being.

Explanation:

After concluding the ninth chapter, Shree Krishna is delighted with Arjun's keen interest in hearing his glories. He did not wait for Arjuna to ask a question. Good teachers know when to take questions and when to continue teaching so that the student is engaged and encouraged. Shree Krishna declares that he will narrate his sublime glories and incomparable attributes.

He uses the words te prīyamāṇāya, implying “You are my beloved confidant, and so I am revealing this very special knowledge to you.”

This chapter of the Gita is known as “Vibhooti Yoga”. It continues the theme of the seventh and ninth chapters by listing several vibhootis or expressions of Ishvara. Why are expressions important? Consider electricity which is invisible to our senses but is a source of great power. If we wish to learn more about electricity by watching a power outlet or a power line, we may not be able to understand electricity that much. But if we see a bright and colourful lamp, or medical equipment that helps save people’s lives, it is easier to appreciate the glory of electricity.

Ishvara is infinitely powerful than electricity but is also invisible and unknown to our senses. Only through knowing his expressions can we become aware of his presence, and gradually expand our vision to see the one Ishvara in everything. Shri Krishna is concerned with Arjuna’s well-being, so in that regard he wanted to reveal Ishvara’s glories to Arjuna. He calls these glories “paramam” or supreme because they enable us to transcend this world of name and form and access Ishvara.

Shri Krishna has given this knowledge not for the reason that Arjun has faith on him and good student or he has some interest, the knowledge is given for the purpose of convenience and feel free and easier to get liberalisation.

Why is Ishvara invisible and unknown to our senses, and to other beings in the universe? This is explained next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यह माना जाता है जब तक साधक अपने लक्ष्य की प्राप्त न कर ले उस के पूर्तिपर्यंत तक खतरा है। जैसे जैसे वह आगे की बढ़ता है, प्रकृति के आवरण सूक्ष्म होते जाते है और नए नए दृश्य सामने आना शुरू ही जाते है। इसलिये उस मे बिना किसी के मार्ग दर्शन के

फिसलने या लड़खड़ाने की संभावना बनी रहती है। यदि मार्गदर्शन बन्द हो जाये तो भी साधक स्वरूप की उपलब्धि से वंचित हो जाएगा। इसलिये आवश्यक के किसी के कार्य के प्रारंभ में ही उस के अंत तक के एक योग्यदर्शक हो, चाहे वो ज्ञान की पुस्तक हो या कोई गुरू। ज्ञान की चंद लाइनें पढ़ लेने से कोई ज्ञानी नहीं हो जाता, ज्ञानी होने के लिए ज्ञान को आत्मसात करना होता है। व्यवहार में कई लोग पोस्ट ग्रेजुएशन की डिग्री ले कर एक पत्र नही लिख पाते, जब की उन से कम पढ़े लिखे लोग पूरे व्यवसाय का संचालन कर लेते है।

उत्पत्ति, प्रलय, गति, अगति, विद्या एवम अविद्या, सगुण - निर्गुण, साकार - निराकार, स्थूल और सूक्ष्म, व्यक्त और अव्यक्त को ही जानने वाला ही परमात्मा होता है, यह ज्ञान व्यर्थ में जो सुनने के इच्छुक नही हो, उन को नही देना चाहिए। सिर्फ गुरु ही यह तय करता है कि कौन शिष्य इस सम्पूर्ण ज्ञान के योग्य है। इसलिये जब तक योग्य पात्र न हो जो ध्यान से ज्ञान को सुने, उस का आदर करे एवम पालन करे, तब तक वक्ता को शांत ही रहना चाहिए। यहां अर्जुन परमात्मा के साथ साथ इस ज्ञान में रुचि लेने लगा इसलिये परमात्मा भी उत्साहित हो कर परम वचन शुरू करने की बाते दोहराते है। दोहराना का अर्थ पुनः अवलोकन करना, जिस से पहले सुनी एवम समझी बाते कंठस्थ हो जाये।

प्रथम अध्याय के अनिश्चय की स्थिति में देखे गये कम्पित अर्जुन ने अब तक एक अतुलनीय आन्तरिक सन्तुलन प्राप्त कर लिया था। हिन्दू दर्शन के बुद्धिमत्तापूर्वक किये गये अध्ययन से, जो आन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है, उसे भगवान् इस अध्याय के प्रारम्भ में ही अपने शिष्य अर्जुन को प्रीयमाण कहकर स्पष्ट करते हैं। प्रीयमाण का अर्थ है जो प्रसन्न हो। यहाँ अर्जुन की प्रसन्नता का कारण भगवान् के उपदेश का श्रवण है। शिष्यों के उत्साह एवं रुचिपूर्ण श्रवण से गुरु का उत्साह भी द्विगुणित हो जाता है। वेदान्त दर्शन के गूढ़ अभिप्रायों को अधिकाधिक समझने पर आन्तरिक शान्ति और सन्तोष का अनुभव हुए बिना नहीं रह सकता। गीताचार्य श्रीकृष्ण पुन उत्साह से भरकर इस ज्ञान का विस्तार से वर्णन करते हैं। पुन तुम मेरे परम वचनों को सुनो, जो मैं तुम्हारे हित की इच्छा से कहूँगा।

भगवान् ने गीता में जगह जगह कामना का निषेध किया है, फिर वे स्वयं अपने में यह वचन सुनाने की कामना क्यों रखते हैं। भगवान् का प्रवचन किसी लौकिक विषय पर न होकर मनुष्य में ही निहित आध्यात्मिक श्रेष्ठता की सम्भावनाओं तथा उन्हें उजागर करने के उपायों पर है क्योंकि यहाँ कहा गया है कि तुम मेरे परम वचनों को सुनो, जो मैं तुम्हारे (आध्यात्मिक) हित की इच्छा से कहूंगा। दूसरों के हित की कामना कामना है ही नहीं। दूसरों

के हित की कामना तो त्याग है और अपनी कामना को मिटाने का मुख्य साधन है। इसलिये भगवान् सबको धारण करनेके लिये आदर्शरूप से कह रहे हैं कि जैसे मैं हित की कामना से कहता हूँ, ऐसे ही मनुष्य मात्र को चाहिये कि वह प्राणिमात्र के हित की कामना से ही सब के साथ यथायोग्य व्यवहार करे। इस से अपनी कामना मिट जायगी और कामना मिटने पर मेरी प्राप्ति सुगमता से हो जायगी।

क्रम से हम ने सातवे अध्याय में हम ने ज्ञान-विज्ञान में इस ब्रह्मांड की रचना में क्षराक्षर विचार पढा। आठवे अध्याय में ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ एवम अधिदेह आदि परिभाषाये एवम व्याख्या पढ़ी। नवम अध्याय में राजविद्या में परमात्मा द्वारा सृष्टि के संचालन से हर कण कण में विद्यमान होने को पढ़ा। विज्ञान का मूल प्रश्न यही है कि इस सृष्टि की रचना कैसे हुई। नासा आदि में इस विषय मे दीर्घकालीन अध्ययन शुरू है किंतु उन के अध्ययन में सहायक ऋग्वेद के नासदीय सूक्त ही है, जो हजारो वर्ष पूर्व हमारे महऋषियो ने अपने ज्ञान को सूक्त में संजो कर रखा। हिन्दू धर्म या सनातन धर्म की विशेषता उस का संकीर्ण नही होना ही है। इस मे कट्टरता नही है, वह हर मत को स्वीकार करता है। गीता में परब्रह्म के रूप में हम सृष्टि के मूल को ही ज्ञान-विज्ञान के रूप में पढ़ रहे है। ऐसी मान्यता है जो पहले भी था और अंत मे भी रहेगा, जो सम्पूर्ण सृष्टि का मूल अनन्त और नित्य है, वही परब्रह्म हो सकता है, उसी से सृष्टि की रचना हुई इसलिये वही हर में विद्यमान है और अंत मे सभी उसी में विलीन हो जाते है। मूल पदार्थ का कोई मूल नही होता, जो सृष्टि की रचना से पहले भी था और प्रलय के बाद भी रहेगा, वही अजन्मा परब्रह्म ही है या हमारे वेद, उपनिषद एवम गीता आदि सृष्टि की रचना के प्रमाणिक ग्रन्थ है, जिन्हें हम अध्यात्म के रूप में पढ़ते है, किन्तु विदेशो में यह अनुसंधान का विषय है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त बिग बैग या गॉड पार्टिकल सिंद्धांत का आधार है। अतः यह परब्रह्म कैसा है, उस का स्वरूप कैसा है, वह कैसे काम करता है, किस प्रकार से यह सृष्टि चलती है, हमारी वास्तविकता क्या है, यह जानना और समझना और उस के अनुसार जीवन व्यतीत करना ही गीता का कर्मयोग है। कुछ कथाये पुराणों में समझने के लिये लिखी गई किन्तु धर्म के अनुसंधान को अपभ्रंश करने के लिये कुछ लोगो ने विसंगति पूर्ण कथाये जोड़ कर बिगाड़ने का प्रयास किया, आश्चर्य यही है, धर्म की श्रद्धा एवं विश्वास में अविवेक पूर्ण आचरण में हम से ही कुछ लोग इन कथाओं से भ्रमित भी रहते है और भ्रमित भी करते है। अर्जुन को अपने विषय मे और अपनी कार्य करने की विधि बतलाने के बाद यह आवश्यक था, की परमात्मा जो अव्यक्त, अनन्त और नित्य है, वह कैसा दृष्टिगोचर होता है। इन्द्रिय,

मन और बुद्धि की अपनी सीमा है, अतः अंधे को बतलाया जाए कि हाथी कैसा होता है, तो वह बताये हुए शब्दों से उस का एक रूप तैयार कर लेता है, जो वास्तविकता से परे होता है। इसलिये विभूतियों को जानने के बाद उस के स्वरूप को अनन्त रूप में ही पहचाने, यही इस अध्याय की सार्थकता है।

यहां यह भी बताना आवश्यक है जिन वचनों से इहलौकिक प्रेय ही सिद्ध होता हो वे परम वचन नही कहलाते, परमात्मा अर्जुन को परम वचन बताने की बात कहते है अर्थात परम वचन वे ही है जिन के द्वारा पारलौकिक श्रेयः की प्राप्ति हो। साथ मे परमात्मा अपने विभिन्न स्वरूपों वर्णन भी करेंगे जिस से अर्जुन को उन के दर्शन की अभिलाषा पैदा हो जाएगी और अगले अध्याय में हम उस स्वरूप के दर्शन भी करेंगे।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.01।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.2॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥

"na me viduḥ sura-gaṇāḥ,
prabhavaṁ na maharṣayaḥ..।
aham ādir hi devānāṁ,
maharṣīṇāṁ ca sarvaśaḥ"..।।

भावार्थ:

मेरे ऎश्वर्य के प्रभाव को न तो कोई देवतागण जानते हैं और न ही कोई महान ऋषिगण ही जानते हैं, क्योंकि मैं ही सभी प्रकार से देवताओं और महर्षियों को उत्पन्न करने वाला हूँ। (२)

Meaning:

Neither the gods nor the great sages know of my origin, for I am the cause of the gods and great sages in every aspect.

Explanation:

Previously, Shri Krishna declared that only Ishvara can speak about Ishvara's glories. Now, why should that be the case? Why can't someone else talk about Ishvara's glories? It is because Ishvara is the cause of everything in this entire universe. He is the "aadihi" or the first principle. He is the ultimate cause.

The devatās (celestial gods) and the ṛiṣhis (sages) cannot comprehend the real nature of the origin of God, who existed before they were even born. And so, the Rig Veda states:

"Who in the world can know clearly? Who can proclaim from where this universe was born? Who can state where this creation has come from? The devatās came after creation. Therefore, who knows from where the universe arose?"

Again, the Īśhopaniṣhad states:

"God cannot be known by the celestial devatās, as he existed before them."

As we have seen earlier, most of us have an idea that a certain deity is almighty and all-powerful. But ultimately, all those gods and deities are emissaries of Ishvara. They came into existence much later than Ishvara. Similarly, great sages and wise people have also come into existence after Ishvara. Therefore, none of these individuals has the ability to clearly fathom the real nature of Ishvara.

For instance, imagine that you want to learn the history of a large corporation. You may research internet sites, you can talk to the current employees, you can even track down the original employees, but the only person who knows the entire history will be the company's founder. He can reveal details that only he knew at the time of founding the company. No one else can know these details.

So then, if Ishvara is the ultimate cause of the universe, then everything in the universe is an effect of that ultimate cause. An effect can never know its cause in totality. Therefore, the most qualified person to expound the glories himself is Ishvara himself, speaking through the form of Shri Krishna. Such a teaching is called “apaurusheya”. It is not authored by a human, it has come from Ishvara directly.

As we hear more about the glories of Ishvara, we will need to delve deeper into what is meant by the term “ultimate cause”. To prepare for this exploration, picture a potter creating a pot. There are two main ingredients that go into the pot. One is clay, the substance of which the pot is made. The other is the intelligence of the potter that decides the shape and the method to create it.

With this picture in mind, let us remember four things that will help us in understanding Ishvara. The pot is an effect. The pot has come from a cause. The “material cause” of the pot is clay. The intelligence, also known as the “efficient cause”, is the potter. We will recall this example later in the chapter.

So then, what is the gain of learning about Ishvara and his glories? Such inaccessible knowledge will now be given by Shree Krishna to nurture the devotion of his dear friend.

।। हिंदी समीक्षा ।।

परमात्मा कहते है मै अपने प्रभाव से जगत का सृजन, पालन और संहार करने के लिये ब्रह्मा, विष्णु एवम रुद्र के रूप में, दुष्टों का विनाश, भक्तों के परित्राण, धर्म के संस्थापन और नाना प्रकार की चित्र- विचित्र लीलाओं के द्वारा जगत के प्राणियों के उद्धार के लिये श्रीराम, श्री कृष्ण, श्री मत्स्य, श्री कच्छप आदि दिव्य अवतारों के रूपो में, भक्तों को दर्शन दे कर उन्हें कृतार्थ करने के लिये उन के इच्छानुसार नाना रूपो में तथा लीला वैचित्र्य की अनन्त धारा प्रवाहित करने के लिए समस्त विश्व रूपो में प्रकट होता रहता हूँ। मेरे इस रहस्य को कि मै किस समय और कहां, किस रूप में और किस प्रयोजन हेतु किस प्रकार

प्रकट होऊगा, अतीन्द्रिय विषयो को समझने वाले देवता, महर्षि, सुरगण अर्थात रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य, प्रजापति, उनचास मरुदगण, अश्विनीकुमार और इंद्र आदि एवम सप्त ऋषिगण भी नही समझ या जान सकते है।

यह कथन इसलिये कहा गया है कि परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, वही सब की उत्पत्ति का कारण है। कहा जाता है जब सत असत कुछ नही था तो परमात्मा ही था। ऐसा माना जाता है परमात्मा ने संकल्प या इच्छा प्रकट की उसे एक से विविध होना है और सृष्टि की रचना हुई। अतः जो आदि है, सब का मूल है उसे तो कोई भी नही जानता, वो ही सब को जानता है।

देवता और ऋषिगण उस भगवान के उदगम की मूल प्रकृति को जान नहीं सकते जो उन के जन्म से पूर्व विद्यमान था। इसी प्रकार का समान वर्णन ऋग्वेद में किया गया है-

"को अद्धा वेद क इह प्रावोचत् कुत आ जाता कुत इयं विश्रुतिः।

अर्वागदेवा अस्य विसर्जनाय, अथा को वेद यत आबभूव।।"

(ऋग्वेद-10.129.6)

"संसार में कौन है जो स्पष्ट रूप से जान सकता है? कौन यह सिद्ध कर सकता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कहाँ से प्रारम्भ हुई? कौन यह बता सकता है कि सृष्टि की उत्पत्ति कहाँ से हुई? देवताओं का जन्म सृष्टि के उपरान्त हुआ। इसलिए कौन जान सकता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कहाँ से हुई?"

उपनिषदों में भी वर्णन किया गया है

"नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।"

(ईषोपनिषद्-4)

"भगवान को स्वर्ग के देवता नहीं जान सकते क्योंकि वे उनसे पूर्व अस्तित्व में थे।"

सप्त ऋषियों का दार्शनिक अर्थ निम्न प्रकार से है। जब अनन्तस्वरूप ब्रह्म केवल आभासिक रूप से समष्टि बुद्धि (महत् तत्त्व) के साथ तादात्म्य को प्राप्त कर अपना एक व्यक्तित्व प्रकट (अहंकार) करता है, तब वह स्वयं ही स्वयं को, स्वयं के आनन्द के लिए इस विषयात्मक जगत् में प्रपेक्षित करता है अथवा व्यक्त करता है। वास्तव में, ये भोग के विषय

सूक्ष्म होते हैं, जिन्हें तन्मात्रा कहते हैं। इन सबको पुराणों में सप्त ऋषि कह कर विभिन्न नाम भी दिये गये हैं वे सप्तर्षि हैं महत् तत्त्व, अहंकार और पंचतन्मात्राएं। पुराणों में इन्हें मानवीय रूप दे दिया गया है। संयुक्त रूप में ये सप्तर्षि मनुष्य के बौद्धिक और मानसिक जीवन के तथा सृष्टि के निमित्त और उपादान कारण के प्रतीक हैं। देव (सुर) शब्द का वाच्यार्थ स्वर्ग के निवासी यहाँ अभिप्रेत नहीं है, यद्यपि वह अर्थ भी संभव है। देव शब्द द्यु धातु से बनता है, जिसका अर्थ है प्रकाशित करना। अत हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ ही वे देव हैं, जो हमारे असंख्य अनुभवों के लिए विषयों को प्रकाशित करते हैं। इसलिए यह कथन उचित ही है कि चिन्मय स्वरूप मैं सब देवगणों तथा महर्षिजनों का आदिकारण हूँ, अर्थात् आत्मा हमारे स्थूल और सूक्ष्म, शारीरिक और मानसिक जीवन का अधिष्ठान है। यद्यपि वे इस सत्य आत्मा में ही स्थित रहते हैं, किन्तु वे मेरे प्रभव को नहीं जान सकते। चैतन्य आत्मा हमारे हृदय में द्रष्टा के रूप में स्थित है, इसलिए वह इन्द्रियों का दृश्य विषय या मन की भावना अथवा बुद्धि के ज्ञान का विषय कदापि नहीं बन सकता।

पूर्व में भी कठो उपनिषद के "नेति नेति" सूत्र को हम ने पढ़ा था। जिस का सारांश यही है जितना हम जानते है उस से आगे परमात्मा है, इस लिये प्रकृति प्रदत मन, बुद्धि, विवेक से पूर्ण रूप परमात्मा को जानना असंभव है, जब तक आत्मा ही परमात्मा में विलय न हो जाये। जो अजन्मा है, जो सृष्टि से पूर्व में भी था और सृष्टि के बाद भी होगा, उस अव्यक्त को व्यक्त करना किसी मच्छर द्वारा समुन्दर को पार करना है। किन्तु जितना भी हम आगे बढ़ते है उतने ही उस के निकट पहुचते है क्योंकि जैसे ही हम लौकिक प्रवृतियों को त्याग कर परमात्मा की ओर बढ़ना शुरू कर देते है तो उस की आभा और तेज से प्रकाशित होने लगते है। संसार उन ही विभूतियों को सम्मान और पूजता है, जिन में परमात्मा का तेज हो। तामसी या आसुरी प्रवृतियों से प्रभावित यदि कोई परमात्मा के होने का प्रमाण मांगते है वो तो मूढ ही कहलाते है।

परमात्मा की विभूतियों के वर्णन के साथ सर्वप्रथम यही समझना चाहिये कि जिसे देवता, महृषि, विद्वान एवम सांसारिक लोग नही जान सके, और उसे जितना भी जानने की कोशिश करते है, वह उतना ही और अधिक रहस्यमय होता जाता है, उस परमतत्व को व्यक्त स्वरूप में वर्णित करने का अर्थ उस के सूक्ष्मांश को व्यक्त करना। तथाकथित अपने को भगवान घोषित करनेवाले या परमात्मा से सीधे संपर्क स्थापित करने वाले जो भी स्वघोषित महात्मा या संत है, वो स्वयं ही कितने भ्रमित होंगे, यह अंदाजा लगाना कठिन है। हमारे वेदों और उपनिषदों ने देवऋषि, महृषि, ब्रहमऋषि एवम देवी-देवताओं से अनेक को नवाजा, किन्तु

परब्रहम से नवाजे जाने वाले कलयुग में भले ही मिल जाये, सतयुग से द्वापर तक तो कोई भी नही है। परमात्मा का यह कथन है कि वह सब मे विद्यमान है किंतु सब उस मे विद्यमान नही। वह उन सब से भी परे बहुत कुछ है, इसलिये उस के ऐष्वर्य उस के अतिरिक्त कोई नही जानता। व्यास जी ने गीता में शायद इसी कारण से अर्जुन और कृष्ण के माध्यम से संवाद जीव और परमात्मा का दिखाया है।

परमात्मा ही जब सृष्टि का आदि है तो उस को वही जान या कह सकता है, इस लिए इस अध्याय के पूर्व के श्लोक में यदि परमात्मा अपनी बात को दोहराने की बात कहते है तो यहां यह भी स्पष्ट कर देते है कि अर्जुन तुम्हे मेरे अतिरिक्त समस्त जगत में कोई भी प्राणी इतना गुढ़ ज्ञान कह भी नही सकता और कोई जानता भी नहीं है। अक्सर जब प्रवचन या लेक्चर चल रहा हो, तो अक्सर मन भटकता है और हम सोचते है यह बात हम बाद में भी किसी ज्ञानी से सुन लेंगे या कभी कभी हम दंभ में भर कर बिना पूरा ध्यान से सुने समझते है कि यह किसी पुस्तक से या किसी विद्वान से पहले भी हम जान चुके है। प्रवक्ता को चाहिए कि श्रोता को, बात कहने से पूर्व ही बात के महत्व और अद्वितीय ज्ञान के विषय में सचेत कर दे। जिस से वह एकाग्र हो कर सुने। अतः परब्रहम को जानने की जो चेष्टा करता है, उस के विषय मे परमात्मा क्या कहते है, आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.02।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.3॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

"yo mām ajam anādiṁ ca,
vetti loka- maheśvaram..।
asammūḍhaḥ sa martyeṣu,
sarva-pāpaiḥ pramucyate"..।।

भावार्थ:

जो मनुष्य मुझे जन्म-मृत्यु रहित, आदि-अंत रहित और सभी लोकों का महान ईश्वरीय रूप को जान जाता है, वह मृत्यु को प्राप्त होने वाला मनुष्य मोह से मुक्त होकर सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (३)

Meaning:

One who knows me as birthless, causeless and lord of the universe, he is wise among all humans and is freed from all sins.

Explanation:

In this shloka, Shri Krishna says that one whose devotion in Ishvara has reached its pinnacle, one who understands Ishvara as the eternal lord of the universe, automatically develops this capacity of discrimination and becomes wise. Also, he is freed from all his sins. This is the end result of devotion.

Having said that no one can know him, Shree Krishna now states that some people do know him. Is he contradicting himself? No, he means that by self-efforts no one can know God, but if God himself bestows his grace upon someone, that fortunate soul gets to know him. Hence, all those who come to know God do so by virtue of his divine grace. As he mentions in verse 10 of this chapter: “To those whose minds are always united with me in loving devotion, I give the divine knowledge by which they can attain me.” Here, Shree Krishna says that those who know him as the Supreme Lord of all lords are not deluded. Such blessed souls become free from all reactions to their past and present actions and develop loving devotion toward him.

The Gita places special emphasis on the quality of viveka or discrimination. It is the ability to differentiate between what is real and what is unreal. For some people, this comes easily but for most of us, it does not. Devotion is the solution. When we begin to hear about Ishvara’s glories, our vision and understanding about his true nature increases. We begin to realize that while everything in the world has a beginning and end, Ishvara is beyond time.

We begin to see that he is everywhere, he is not confined to a certain space or location.

So, when we see that Ishvara is present everywhere and everytime, beyond the realm of time and space, we automatically begin to understand that everything else is finite and transient. Our reactions to situations become calmer. If we come across a tough situation, we know that the timeless ever-present Ishvara is in there, and so therefore the situation will be temporary and will not bother us anymore. We become “assammodaha” or wise, beyond all delusion.

Also, by hearing these glories, we realize that Ishvara is the one who is running the universe. When we identify ourselves with the controller of the universe, our ego, sense of doership and enjoyership automatically drops because we know that we are doing nothing, it is all Ishvara’s doing. When the sinner, which is nothing the sense of doership and enjoyership, is dropped, all our sins are destroyed in an instant.

Shri Krishna now beings to speak of Ishvara’s expressions, which is the main theme of this chapter. He first speaks about Ishvara’s inner, subtle expressions in the next few shlokas. He later speaks about his external, more visible expressions.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मुझे सभी ईश्वरों के परमेश्वर के रूप में जानते हैं, वे भ्रमित नहीं होते। ऐसी भाग्यशाली और पुण्य आत्माएँ अपने वर्तमान और पूर्वजन्मों के कर्म फलों के बंधनों से मुक्त हो जाती हैं और भगवान की प्रेममयी भक्ति को पुष्ट करती हैं। वे अपने और जीवात्मा के बीच के भेद को स्पष्ट करते हुए घोषित करते हैं कि वे 'लोकमहेश्वरम्' सभी लोकों के परमस्वामी हैं। इसी प्रकार की उद्घोषणा 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में भी की गयी है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।

पति पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद्-6.7)

"परमात्मा सभी नियन्ताओं का नियामक है, वह सभी मानवों और ब्रह्माण्ड में विधित पदार्थों का परमेश्वर है। वह सभी प्रियों का प्रियतम है। वह संसार का नियामक और प्राकृत शक्ति से परे है।"

क्योंकि मैं महर्षियों का और देवों का आदि कारण हूँ, मेरा आदि दूसरा कोई नहीं है, उन कालातीत भगवान् में काल का भी आदि और अन्त हो जाता है। इसलिये मैं अजन्मा और अनादि हूँ। अनादित्व ही जन्मरहित होने में कारण है। इस प्रकार जो मुझे जन्मरहित अनादि और लोकों का महान् ईश्वर अर्थात् अज्ञान और उस के कार्य से रहित जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति - इन तीनों अवस्थाओं से अतीत चतुर्थ अवस्थायुक्त जानता है और जो यह भी जानता है कि यह संसार क्षणभङ्गुर है, जिस का प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है और जिस को जिस क्षण में जिस रूप में देखा है, उस को दुबारा दूसरे क्षण में उस रूप में कोई भी देख नहीं सकता क्योंकि वह दूसरे क्षण में वैसा रहता ही नहीं - जिसे इस प्रकार संसार को यथार्थरूप का ज्ञान है। वह मनुष्यों में ज्ञानी है अर्थात् मोह से रहित श्रेष्ठ पुरुष है और वह जान बूझकर किये हुए या बिना जाने किये हुए सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। हम यदि यह समझते रहे कि गंगा में डुबकी लगाने से पाप धुल जाते तो ध्यान रहे कि वहां के मल्लाह एवम मछली आदि जलचर को परमगति निश्चित थी।

जो मुझे जानता है यह जानना केवल भावना के प्रवाह में अथवा बुद्धि के विचारों से जानना नहीं है, वरन् यह पूर्ण और वास्तविक आत्मानुभूति है, जो आत्मा के साथ घनिष्ठ तादात्म्य के क्षणों में होती है। आत्मा को किसी दृश्य के समान नहीं किन्तु स्वस्वरूप से इस प्रकार जानना है कि वह अजन्मा, अनादि और सर्वलोकमहेश्वर है। जो लोग वेदान्त दर्शन की प्राचीन परम्परा से कुछ परिचित हैं, उनके लिए उपर्युक्त ये तीन विशेषण अत्यन्त सारगर्भित हैं, जबकि उस से अनभिज्ञ लोगों को ये विशेषण निरर्थक ही प्रतीत होंगे। अनात्म जड़ जगत् परिच्छिन्न है, जहाँ कि प्रत्येक वस्तु, प्राणी या अनुभव अनित्य हैं, अर्थात् समस्त वस्तुएं आदि (जन्म) और अन्त (मृत्यु) से युक्त हैं।असीम अनन्त परमात्मा का कभी जन्म नहीं हो सकता, क्योंकि जो उत्पन्न हुआ है, वह परिच्छिन्न है और किसी भी परिच्छिन्न वस्तु में अनन्त तत्त्व कभी अपने अनन्त स्वरूप में व्यक्त नहीं हो सकता। स्थाणु (स्तम्भ) में जब भ्रान्ति से पुरुष (या प्रेत) की प्रतीति होती है, तब पुरुष का नाश (अप्रतीति) हो सकता है,

क्योंकि वह उत्पन्न हुआ था। परन्तु, वास्तव में यह नहीं कहा जा सकता कि स्थाणु ने प्रेत को जन्म दिया, अथवा स्तम्भ से प्रेत की उत्पत्ति हुई। स्थाणु तो वहाँ पहले भी था, है और रहेगा। आत्मा नित्य सनातन है, इसलिए वह जन्मरहित है। अन्य वस्तुओं का जन्म, स्थिति और नाश इस आत्मा में ही होता है।

इस श्लोक में आत्मा को अनादि विशेषण दिया गया है।लोकमहेश्वर लोक शब्द का अर्थ जगत् करने से इस संस्कृत शब्द के व्यापक आशय की उपेक्षा हो जाती है। लोक शब्द जिस धातु से बनता है उसका अर्थ है देखना, अनुभव करना। अत इसका सम्पूर्ण अर्थ होगा अनुभव का क्षेत्र। हमारे दैनिक जीवन में भी इसी अर्थ में लोक शब्द का प्रयोग किया जाता है, जैसे धनवानों का लोक, अपराधियों का लोक, विद्यार्थी लोक, कवियों का लोक आदि। इसलिए, उसके व्यापक अर्थ में लोक शब्द से मात्र भौतिक जगत् ही नहीं, बल्कि भावनाओं एवं विचारों के जगत् का भी बोध होता है।इस प्रकार, मेरा लोक वह है, जो मैं अपने शरीर, मन और बुद्धि के द्वारा अनुभव करता हूँ। यह तो स्पष्ट है कि जब तक मुझे इनका निरन्तर भान नहीं होता तब तक ये अनुभव मेरे नहीं हो सकते। यह चैतन्य तत्त्व, जिसके कारण ही मैं जीता हूँ और जगत् का अनुभव करता हूँ, वास्तव में मेरे लोक का ईश्वर होना ही चाहिए। जो मेरे व्यष्टि के विषय में सत्य है, वही जगत् के समस्त प्राणियों के विषय में भी सत्य है, क्योंकि आत्मा सर्वत्र एक ही है। इस समष्टि लोक का शासक, महान् ईश्वर स्वयं परमात्मा ही हो सकता है। यह लोक महेश्वर शब्द का वास्तविक अर्थ है।

मनुष्य अपने पापों के लिए दण्डित नहीं, वरन् अपने पापों के द्वारा ही दण्डित होता है। पाप वह स्वअपमानजनक कर्म है, जिस का मूल कारण है मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का अज्ञान का होना। ऐसे कर्म और विचार मनुष्य को निम्न स्तर के भोगों में आसक्त कर बाँध देते हैं, जिस के कारण वह उन से ऊपर उठकर वास्तविक पूर्णत्व के शिखर तक कभी नहीं पहुँच पाता। आत्मस्वरूप को पहचान कर उसमें दृढ़ निष्ठा प्राप्त कर लेने पर वह व्यक्ति पुन कभी पापकर्म में प्रवृत नहीं होता।

तैत्तरीय उपनिषद में कहा है कि यह अनृत ब्रह्म जगत की प्रतिष्ठा अथवा आधार है, इसे और दूसरे आधार की अपेक्षा नही है एवम जिस ने इसको जान लिया वह अभय हो गया। अंत मे कहा गया कि यह सारा जगत पहले असत अर्थात ब्रह्म था, जिस से ऋग्वेद के अनुसार सत यानी नामरूपात्मक व्यक्त जगत की उत्पत्ति हुई। किन्तु बाद में असत का अर्थ बदल गया और असत को विनाशी, न टिकने वाला, मिथ्या मानते हुए जगत कहा गया और

सत को ब्रह्म माना गया। ब्रह्म की परिभाषा में अंतर होने से भगवद्गीता में "ॐ तत सत" कह कर ब्रह्म को सत अर्थात सदैव रहने वाला और जगत को असत अर्थात विनाशी मानते हुए, प्रणव अक्षर के साथ तत और सत को जोड़ दिया गया। अर्थात अविनाशी और विनाशी दोनो ही मिल कर ब्रह्म है। तत यानी वह अथवा दृश्य सृष्टि स परे दूर रहनेवाला अनिर्वाच्य तत्व और सत का अर्थ आंखों के सामने वाली दृश्य सृष्टि। इसलिये परमात्मा ने अपने को "सदसच्चाहमर्जुन" अर्थात सत और असत दोनो मैं ही हूँ, कहा है। इस तत्व को जो आत्मसात कर लिया है, वह ही ब्रह्मसन्ध हो गया।

आईने के सामने खड़े हो कर यदि हम अपने को देखे तो किसे देखते है, यह शरीर जो सामने है, उस का जगत में एक नाम दिया हुआ है, जिस में महत्वाकांक्षाओं में जन्म ले रखा है, जिस का जगत में पिता, माँ, पुत्र,पुत्री, भाई, बहन, मित्र आदि आदि न जाने कितने सम्बन्ध है। किंतु कभी अपने अविनाशी ब्रह्म स्वरूप को हम ने नही देखा होगा। यही आईने के सामने धूल का पर्दा है, धूल हमारी नजरो और चेहरे पर रहती है और हम आईने को पौछते रहते है।

जिस क्षण हम अपने आत्मस्वरूप को पहचानते हैं कि वह अजन्मा और अनादि है तथा उसका विकारी और विनाशी उपाधियों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, उस समय हम वह सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं जो जीवन में प्राप्तव्य है, और वह सब कुछ जान लेते हैं जो ज्ञातव्य है। ऐसा सम्यक् तत्त्वदर्शी पुरुष स्वयं ही लोकमहेश्वर बन जाता है। परमतत्व को आत्मसात कर के ही परमात्मा को जाना जा सकता है, तोते की भांति सभी ग्रंथो, वेदो, पुराण, काव्य, उपनिषदों का कंठस्थ करने वाला जानने वाला नहीं हो सकता।

जो जगत का कारण है किंतु जिस का कोई कारण नहीं है। उसे कोई कैसे जान सकता है जब तक स्वयं उस की कृपा न बरसे। किंतु व्यवहार में हम अपने जन्म और मृत्यु के लिए इस शरीर को ही जानते है और हमारे समस्त प्रयास इस शरीर की सुख और समृद्धि के लिए ही होते है। कुछ विवेकशील लोग प्रकृति के कारण को सोचते है तो आइस्टीन, आर्यभट्ट, गैलेलियो या न्यूटन जैसे वैज्ञानिक बनते है किंतु वे भी प्रकृति के कारण की खोज करते है। परंतु जगत के कारण की खोज के बुद्ध, नानक, महावीर या शंकराचार्य जैसे कुछ ही विरले महापुरुष होते है।

परमात्मा को जाननेवाले के लक्षण क्या होंगे यह हम आगे पुनः दोहराते है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.03।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.4॥

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च॥

"buddhir jñānam asammohaḥ,
kṣamā satyaṁ damaḥ śamaḥ..।
sukhaṁ duḥkhaṁ bhavo 'bhāvo,
bhayaṁ cābhayam eva ca"..।।

भावार्थ:

संशय को मिटाने वाली बुद्धि, मोह से मुक्ति दिलाने वाला ज्ञान, क्षमा का भाव, सत्य का आचरण, इंद्रियों का नियन्त्रण, मन की स्थिरता, सुख-दुःख की अनुभूति, जन्म-मृत्यु का कारण, भय-अभय की चिन्ता,.....(४)

Meaning:

Intellect, wisdom, non-delusion, forgiveness, truth, external restraint, internal restraint, external restraint, joy and sorrow, creation and destruction, fear and sorrow.

Explanation:

Shri Krishna begins describing Ishvara's vibhootis or expressions with this shloka. For the sake of convenience, the world is divided into two; one is the external world of objects, bāhya prapañcaḥ; and the internal world of thoughts; ānthara prapañcaḥ. Shree Krishna says internal world is also born out of Me alone, the external world is also born out of Me alone, which means see God, you need not look at a special direction, if you open the eyes, Bhagavān, if you close the eyes, bhagavan. Therefore, God is everywhere.

First, he describes Ishvara's subtle expressions in two shlokas. He says that intelligence, wisdom, non- delusion, forgiveness, self- restraint, joy and sorrow, creation and destruction, fear and fearlessness, all of these are

expressions of Ishvara. Whenever we come across any of these expressions, we should immediately realize that it is Ishvara expressing himself through them.

Here, he mentions twenty emotions in two shloks that manifest in a variety of degrees and combinations in different people to form the individual fabric of human nature. He declares that the various moods, temperaments, and dispositions of humankind all emanate from him.

Buddhi is the ability to analyze things in their proper perspective. It is the ability to know subtle things, things that are not immediately perceived by our senses.

Jñānam is the ability to discriminate spiritual from material.

Asammoham is the absence of confusion.

Kṣhamā is the ability to forgive those who have harmed us. Thus forgiveness lets us drop any negative thinking that is generated out of such interactions.

Satyam is the veracity to declare the truth for the benefit of all. It is our duty to convey to others what we perceive of the world without adding any modifications or distortions.

Dam means restraining the senses from the sense objects.

Śham is restraint and control of the mind.

We may also encounter people, objects and situations that generate selfish desires within us. In order to guard against chasing after them, we need to cultivate “dama” or sense control, and “shama” which is control over the mind.

Sukham is the emotion of joy and delight.

Duḥkham is the emotion of sorrow and affliction.

Bhavaḥ is the perception of one's existence "I am."

Abhāvaḥ is the experience of death.

Bhaya is the fear of oncoming difficulties.

Abhaya is freedom from fear.

Shri Krishna wants us to remain equanimous, remain balanced in both aspects of these pairs. Ishvara may send a sorrowful situation in order to create further vairagya or dispassion. Like a municipality that demolishes a dangerously unliveable building, he may destroy a person, object or situation so that a new one can be created in its place. Like a robber who is afraid of a burglary alarm, he may generate fear in us so that we do not commit an unlawful or unethical act.

The second part of this topic is covered in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

परमात्मा के विभूतियोग का प्रारम्भ भाव से होता है। भाव का अर्थ अवस्था, स्थिति या वृति होता है। श्लोक चार एवम पांच ईश्वरीय गुणों के 20 भाव को बताते है। वेदान्त शास्त्री का मानना है कि सृष्टि के मायात्मक सभी पदार्थ परब्रहम के मानस भाव ही है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि परमात्मा सृष्टि में चारों ओर समाया हुआ है तो किसी जीव में अंदर वह उस के भाव और गुण में समाया है। फिर यदि हमारे अंदर जो भी भाव उत्पन्न हो वहां से ले कर जो भी हमे दिखता या महसूस होता है, वह परमात्मा ही है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति, जीव, कन्या को देख कर जो भी अच्छा या बुरा विचार उत्पन्न होता है, उसे परमात्मा के भाव से जोड़ने से मन, बुद्धि और भावना से सात्विक स्वरूप में परिवर्तित हो जाता है और वह प्राणी के स्नायु तंत्र में कोई प्रभाव नहीं डालता। अर्जुन युद्ध भूमि में स्वजनों को मोह और ममता में अपने विरुद्ध युद्ध के लिए तैयार दिखता है तो उस के स्नायु तंत्र में मोह, ममता और भय के कारण पसीना छूटना, जबान लड़खड़ाना और शरीर में

कमजोरी महसूस होना शुरू हो गई। वही अर्जुन कृष्ण द्वारा गीता के ज्ञान से समृद्ध होने लगा तो उस की शारीरिक और मानसिक स्थिति में अपेक्षित सुधार आ गया।

भावों में प्रथम स्थान बुद्धि, फिर निरवधि ज्ञान, मोह, सहिष्णुता, क्षमा एवम सत्य है। इस के बाद मनोनिग्रह एवम इन्द्रीयनियंत्रण आता है।

परमात्मा का कहना है बुद्धि, ज्ञान, असमोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुख, भव, अभाव, भय एवम अभय ये प्राणियों की मनोवृतियां मुझ से होती है।

प्रस्तुत श्लोक में ईश्वरीय भाव को हम इसप्रकार समझते है।

बुद्धि भले-बुरे, कर्तव्य- अकर्तव्य एवम ग्राह्य- अग्राह्य आदि का निर्णय लेने की वृत्ति बुद्धि होती है। प्रवृति- निवृति, कार्य- अकार्य, भय- अभय एवम बंध- मोक्ष को जानने वाली बुद्धि सात्विक, जिस बुद्धि से धर्म-अधर्म एवम कार्य- अकार्य का पूर्ण ग्यान ययार्थ रूप में न हो वह राजसी एवम अंधकार एवम अहम से ढकी बुद्धि जो अधर्म को धर्म मानती है वो तामसी बुद्धि होती है।

ज्ञान चेतन- अचेतन वस्तु भेद को अनुभव कराने वाला ही ज्ञान है। सार - असार, ग्राह्य - अग्राह्य, नित्य - अनित्य, सत् - असत्, उचित - अनुचित, कर्तव्य- अकर्तव्य ऐसा जो विवेक अर्थात् अलग अलग जानकारी है, उसका नाम ज्ञान है। ज्ञान से ब्रह्म, जीव, माया तत्व जाना जा सकता है।

असम्मोह भोगासक्त मनुष्यो को नित्य और सुखप्रद प्रतीत होने वाले समस्त सांसारिक भोगों को अनित्य, क्षणिक और दुःख मूलक समझ कर उन में मोहित न होना - यही असम्मोह है।

क्षमा जितने भी अपराध है उस को करने वाला कोई भी क्यों न हो, अपने मे बदला लेने का पूरा सामर्थ्य रहने पर भी उस से बदला लेने की इच्छा का त्याग एवम उस को इस लोक एवम परलोक में भी दंड न मिले ऐसा भाव ही क्षमा है।

कर्तव्य पालन का आदेश देना एवम क्षमा दोनों में विषमता है। कर्तव्य पालन अपने अधिकार की रक्षा है, अपने दायित्व का पालन करना कर्तव्य पालन है इस मे बदला लेने की भावना नहीं है।

सत्य इंद्रिय एवम अन्तःकरण द्वारा जो बात जिस रूप में देखी, सुनी एवम अनुभव की गयी हो उस को उसी रूप में हित कर प्रिय वचन के साथ बिना किसी स्वार्थ या प्रलोभन के प्रस्तुत करना ही सत्य है।

दम एवम शम परमात्मा प्राप्ति का उद्देश्य रखते हुए इन्द्रियों को अपने अपने विषयों से हटा कर अपने वश में करने का नाम दम है, और मन को सांसारिक भोगों के चिन्तन से हटाने का नाम शम है।

काशी के अस्सी बंदर घाट के एक तट पर एक महात्मा रहते थे और दूसरे तट पर एक वेश्या। वेश्या जब भी महात्मा को देखती तो उसे अपने कार्यो के प्रति संताप होता एवम ग्लानि आती की वो उन महात्मा के वचनों से अपने कृत्यों के वंचित है। जब कि महात्मा जी उसे देखते तो सोचते कि यदि मैं महात्मा न बनता तो मै भी वेश्या के संग सुख भोगता। यही शम एवम दम है इसलिए मन मे इंद्रियाओ के विषयों का स्मरण होने से मृत्यु के बाद महात्मा किसी वेश्या के भड़ुआ बने और वेश्या को उत्तमगति प्राप्त हुई।

सुख एवम दुख शरीर, मन, इन्द्रियों के अनुकूल परिस्थिति के प्राप्त होनेपर हृदयमें जो प्रसन्नता होती है, उस का नाम सुख है और प्रतिकूल परिस्थिति के प्राप्त होने पर हृदय में जो अप्रसन्नता होती है, उस का नाम,दुःख है। दुख भी दैहिक, दैविक एवम भौतिक तीन प्रकार का माना गया है।

भव एवम अभव सांसारिक वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति, भाव आदि के उत्पन्न होने का नाम भव है और इन सब के लीन होने का नाम अभाव है। गोयनका जी ने सर्ग काल मे समस्त जगत का उत्पन्न होना भव एवम प्रलय काल मे उस लीन होना अभव बताया है। वैसे अनुकूल मानसिक अनुभव को भव एवम प्रतिकूल एवम अवसाद से भाव को अभव कहा जाना चाहिए।

भय एवम अभय अपने आचरण, भाव आदि शास्त्र और लोकमर्यादा के विरुद्ध होने से अन्तःकरण में अपना अनिष्ट होने की जो एक आशङ्का होती है, उस को भय कहते हैं। मनुष्य के आचरण, भाव आदि अच्छे हैं, वह किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता, शास्त्र और सन्तों के सिद्धान्त से विरुद्ध कोई आचरण नहीं करता, तो उस के हृदय में अपना अनिष्ट होने की आशङ्का नहीं रहती अर्थात् उस को किसी से भय नहीं होता। इसी को अभय कहते हैं।

विशेष - दो श्लोक एक साथ हो तो उसे **युग्मक** कहते है, यदि तीन श्लोक एक साथ हो तो उसे **विशेषक** कहते है, चार श्लोक एक साथ होने से उसे **कलापक** बोलते है एवम चार से अधिक श्लोक एक साथ हो तो उस को **कूलक** बोलते है।

यह श्लोक 5 के साथ जुड़ा हुआ युग्मक श्लोक है अतः अन्य गुणों को अगले श्लोक में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.04।।

।। विभूति भाव - 1।। विशेष - 10.04 ।।

परमात्मा द्वारा अपनी विभूतियों के वर्णन से पहले अध्याय नवम के श्रद्धा, विश्वास, प्रेम के साथ स्मरण एवम समपर्ण की बात कही थी। पूर्व श्लोक में कहा कि मुझे जो मनुष्य अजन्मा, अनादि और सर्वलोको का महेश्वर जान लेता है, वह सब पापो से मुक्त हो कर मोक्ष को प्राप्त होता है एवम मुझे या मेरे प्रभाव को देवता भी नही जानते क्योंकि मैं अनादि, अनन्त काल से हूँ। अतः परमात्मा को जानने, समझने और स्मरण करने का मूल प्रारम्भ भाव से प्रारम्भ होता है।

शरीर के निर्माण में पांच कोश बताए हुए है, प्रकृति के पांच तत्व के शरीर का संचालन इन्ही पांच कोश अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय से शरीर के दुख सुख का अनुभव यदि होता है तो वह कौन है? यदि बुद्धि प्रकृति संसाधनों में सुख को खोजती है तो अच्छे भोजन से तृप्ति किसे प्राप्त होती है। परमात्मा के भजन में आनंद किसे होता होगा। अतः उस तत्व को जो शरीर के भावों और क्रियाओं को महसूस करता है, वह तत्व जो इन पांचों कोश में मनोमय कोश से प्रकृति के और आनंदमय कोश से परमात्मा से जुड़ता है, उसे ही ब्रह्म का अंश कहा गया है। और इस सभी कोश का संचालन मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोश करते है। जिस के कारण मन और बुद्धि में भावनाए, कामनाएं और इच्छाएं उत्पन्न होती है। यह संपूर्ण प्रक्रिया ही परमात्मा की विभूती है।

भाव शब्द का अर्थ है 'अवस्था', स्थिति या वृति और सांख्य शास्त्र में 'बुद्धि के भाव' एवम 'शरीर के भाव' ऐसा भेद किया गया है। सांख्य शास्त्री पुरुष को अकर्ता और बुद्धि को प्रकृति

का विकार मानते है, इसलिये वे कहते है, की लिंग शरीर को पशु पक्षी आदि के भिन्न भिन्न जन्म मिलने का कारण लिंग शरीर मे रहने वाली बुद्धि की ही विभिन्न अवस्था या भाव है।

वेदान्त का सिंद्धांत है कि प्रकृति और पुरुष के परे एक नित्य तत्व है, जिसे हम परब्रहम अर्थात परमात्मा के नाम से जानते है, उसी के मन मे सृष्टि के निर्माण की इच्छा अर्थात भाव उत्पन्न हुआ और यह सारा दृश्य जगत का निर्माण हुआ। अतः यह सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा के मायात्मक रूप में सभी पदार्थ है और परब्रहम का मानस भाव है।

यह भी सिंद्धांत है कि जड़ शरीर के साथ एक लिंग शरीर भी होता है, यह लिंग शरीर ही भाव से लिप्त होता है जिस का संचालन जड़ शरीर मे इन्द्रिय- मन एवम बुद्धि से होता है। समस्त कर्मो के फल इस लिंग शरीर से जुड़े रहते है, जिस से बंध कर जीवात्मा कर्मफलों के अनुसार अगली योनि में प्रविष्ट होती है। जीवात्मा स्वयम में अकर्ता, नित्य एवम साक्षी है किंतु अज्ञान एवम भ्रम से वह इस सूक्ष्म लिंग शरीर से बंधी है। जड़ अर्थात मृत्यु से इन्द्रिय,मन एवम बुद्धि भी समाप्त होने से पूर्व जन्म से सम्बन्ध खत्म हो जाता है और शरीर अपने कर्मफलों के अनुसार नए शरीर मे प्रविष्ट ही जाता है, जिस में उसे पुनः जड़ शरीर के साथ इन्द्रिय, मन और बुद्धि मिलती है। किंतु कर्मफल रूपी संस्कारो के चलते उसे जिस कुल या योनि में जन्म मिलता है, वह शीघ्र ही पूर्व जन्म के संस्कारों को भी प्राप्त कर लेता है। इसलिये परमात्मा ने भी कहा है कि एक जन्म में मोक्ष के लिये की हुई यात्रा, शरीर की मृत्यु के बाद भी नष्ट नही होती और अगले जन्म तक चलती है।

सांख्य कहता है कि यह भाव प्रधान सूक्ष्म शरीर प्रकृति और पुरुष से परे अन्य तत्व नही है। क्योंकि जीव अर्थात पुरुष उदासीन है इसलिये कर्म ही प्रकृति के सत-रज-तम गुणों का विकार है। लिंग शरीर मे बुद्धि तत्व प्रधान है अतः बुद्धि में यह अहंकार आदि विभिन्न भाव उत्पन्न होते है और सूक्ष्म शरीर मे फूलो की सुंगंध की तरह लिपट जाते है।

भाव की प्रधानता इसलिये है यह ही हमारे संचालन का माध्यम है। हम जो पढ़ते, लिखते, समझते और सुनते आदि है, वह इन भाव के द्वारा ही अनुभव करते है। जो जिस भाव मे रहता है, वह उसी भाव के अनुसार कर्म को प्रभावित भी होता है। भाव से हमारे जीवन को गति और स्वरूप मिलता है। हमारी दैनिक दिनचर्या से ले कर हमारा व्यापार- व्यवसाय , हमारा अध्यात्म, हमारा समाज, यहां तक जिसे हम अपना धर्म और आस्था मानते है, निर्धारित होता है। ज्ञानी ही भाव को नियंत्रित करता है। अज्ञानी भाव के अनुसार कर्म करता है। अगले श्लोक में कुछ और भाव पढ़ते है। परमात्मा विभिन्न विभूतियों में हमे किस प्रकार

समझ मे आते है यह हमारे भाव पर ही निर्भर है। इसलिये विभूतियों में प्रथम स्वरूप में परमात्मा हमे भाव के बारे में ही बतलाते है।

परमात्मा ने भी कहा है कि कुछ लोग मुझे व्यक्त और कुछ अव्यक्त स्वरूप में देखते है। गीता में अर्जुन के भाव और संजय एवम धृष्टराष्ट्र के भाव भिन्न भिन्न होने से उन्हें उपदेश भी भिन्न भिन्न अर्थो में समझ मे आये। यही स्थिति हमारी भी है, जिस भी भाव को ले कर हम गीता का अध्ययन करते है, गीता हमे उसी रूप में प्राप्त होती है।

सृष्टि की रचना परमात्मा के भाव का परिणाम है और प्रकृति की माया भी परमात्मा के नियम पर भाव के साथ कार्य कर रही है। यह सृष्टि प्रकृति से संचालित है किंतु जीव अपना सम्बन्ध परमात्मा से न जोड़ कर प्रकृति से जोड़ लेता है तो वह कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव से कर्मबन्धन में फस जाता है। किंतु जब वह अपना सम्बन्ध परमात्मा से जोड़ता है, तो उस के भाव परमात्मा के भाव होते है, वह प्रकृति के नियत कर्म करते हुए भी अकर्ता रहता है। अर्जुन को इसी भाव के साथ अपने कर्तव्य कर्म का आदेश देने का अर्थ यही था कि प्रकृति अर्थात नियति ने तुम्हे किसी कर्म के लिये तुम्हारे गुण धर्म के अनुसार यदि चुना है तो ज्ञान योग या भक्ति योग से कर्मयोग करते हुए, अपने कर्तव्य धर्म का पालन करो।

अष्टावक्रजी राजा जनक से कहते हैं कि समदर्शी धीर व्यक्ति के लिए सुख और दुःख में , नर और नारी में, सम्पत्ति और विपत्ति में कहीं कोई भेद नहीं है । आत्मज्ञानी समान दृष्टिवाला होता है । वह हमेशा , सर्वत्र एक ही आत्मा का अनुभव करता है । वह जीवनमुक्त है ।।

जब श्रद्धा, प्रेम, विश्वास और समर्पण के परमात्मा के भाव को मनुष्य जान लेता है तो उस के भाव के विकार प्रकृति के गुण सत-रज-तम से परे परमात्मा के भाव हो जाते है, तब क्रोध, क्रोध नही रहता, युद्घ, शूरवीरता, धर्म रक्षा, दान, दया, सुख-दुख, आदि सभी लोकसंग्रह के कर्म हो जाते है। उस का राग-द्वेष प्रकृति से परे परमात्मा का कार्य हो जाता है, यही चरित्र हम ने भगवान श्री कृष्ण द्वारा उदाहरण स्वरूप में जाना भी है। अतः परमात्मा की विभूतियों में भाव मे परमात्मा को ही सर्वप्रथम वर्णित किया गया है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 10.04 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.5॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥

"ahiṁsā samatā tuṣṭis
tapo,
dānaṁ yaśo 'yaśaḥ..।
bhavanti bhāvā bhūtānāṁ,
matta eva pṛthag-vidhāḥ"..।।

भावार्थ:

...अहिंसा का भाव, समानता का भाव, संतुष्ट होने का स्वभाव, तपस्या की शक्ति, दानशीलता का भाव और यश-अपयश की प्राप्ति में जो भी कारण होते हैं यह सभी मनुष्यों के अनेकों प्रकार के भाव मुझसे ही उत्पन्न होते हैं। (५)

Meaning:

Non-injury, equanimity, contentment, penance, charity, fame and infamy, these various states of living beings arise from me only.

Explanation:

Shri Krishna continues to describe Ishvara's subtle expressions in this shloka. He begins with the description of **"ahimsaa"** or non-injury. Non-injury typically is understood as refraining from physically hurting a living being. But more broadly, it means refraining from depriving someone else of happiness, knowledge and finitude. For instance, if we cheat someone or we insult someone, we are not practising non-injury.

Next is **"samataa"** or equanimity. The second chapter speaks elaborately on the quality of equanimity or balance as paramount to the performance of karma yoga. If external factors such as heat, cold, praise and censure destabilize our mind, it means that our ego is attached to those factors and disturbs the balance of our mind. Maintaining equanimity in such situations is a sign of healthy detachment and dispassion.

“Tushtihi” or contentment refers to **“prasaada buddhi”,** or the ability to accept everything in life, good or bad, joyful or sorrowful, as a gift from Ishvara. If we are constantly unhappy with what life gives us, we are failing to recognize the infinitude of our eternal essence, and are instead attached to our limited, finite ego.

“Tapaha” or penance refers to the energy that builds up in our body when we practice restraint of our sense organs. For example, if we refrain for talking for a day, that energy is conserved within our body and generates heat which is known as “tapas”.

“Daanam” or charity refers to donating or distributing our wealth so that we do not get into the practice of hoarding.

“Yasha” is the fame that comes through pursuit of dharma or lawful conduct, and **“ayashaha**” is the infamy that results through the pursuit of adharma or unlawful conduct.

Shree Krishna states that all these qualities manifest in individuals to the extent sanctioned by him alone. Hence, he is the source of all good and bad natures in living beings. This can be likened to the electric power supplied by the powerhouse being used by various gadgets. The same electric power passing through different gadgets creates different effects. It creates sound in one, light in the other, and heat in the third. Although the manifestations are different, their source is the same electric supply from the powerhouse. Similarly, the energy of God manifests in us positively or negatively according to our puruṣhārth (the actions we perform by exercising our freedom of choice) in the present and past lives.

Shri Krishna concludes this topic by asserting that all of these qualities are generated in us by none other than Ishvara. However, there is a set of rules that govern the creation of these qualities. It does not happen randomly or in an ad-hoc manner. It is our karma or actions that determine which

qualities or states will arise within us. If we constantly surround ourselves with good company, we will automatically imbibe good qualities and vice versa.

So far, Shri Krishna has described Ishvara's subtle expressions. We now will be being to see Ishvara's tangible, visible expressions starting from the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

श्लोक 4 के युग्मक 5 को आगे पढ़ते है।

अहिंसा अपने तन, मन और वचन से किसी भी देश, काल, परिस्थिति आदि में किसी भी प्राणी को किञ्चिन्मात्र भी दुःख न देने का नाम अहिंसा है। अहिंसा परमो धर्म भी कहा गया है क्योंकि वैर भाव का अभाव अहिंसा से ही होता है।

समता तरह तरह की अनुकूल और प्रतिकूल वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति आदि के प्राप्त होने पर भी अपने अन्तःकरण में कोई विषमता न आने का नाम समता है। समता में सुख-दुख, लाभ-हानि, जय- पराजय, मान- अपमान, मित्र शत्रु आदि जितने भी क्रिया, घटना तथा पदार्थ आदि विषमता के हेतु माने जाते है, उन सब मे राग-द्वेष रहित सम बुद्धि रहना ही समता है।

तुष्टि आवश्यकता ज्यादा रहने पर भी कम मिले तो उस में सन्तोष करना तथा और मिले - ऐसी इच्छा का न रहना तुष्टि है। तात्पर्य है कि मिले अथवा न मिले, कम मिले अथवा ज्यादा मिले आदि हर हालतमें प्रसन्न रहना तुष्टि है।

तप अपने कर्तव्य का पालन करते हुए जो कुछ कष्ट आ जाय, प्रतिकूल परिस्थिति आ जाय, उन सब को प्रसन्नतापूर्वक सहने का नाम तप है। एकादशीव्रत आदि करने का नाम भी तप है।

दान प्रत्युपकार और फल की किञ्चिन्मात्र भी इच्छा न रख कर प्रसन्नतापूर्वक अपनी शुद्ध कमाई का हिस्सा सत्पात्र को देने का नाम दान है।

यश - अपयश मनुष्य के अच्छे आचरणों, भावों और गुणों को लेकर संसार में जो नाम की प्रसिद्धि, प्रशंसा आदि होते हैं, उन का नाम यश है। मनुष्य के बुरे आचरणों, भावों और गुणों को लेकर संसार में जो नाम की निन्दा होती है, उस को अयश (अपयश) कहते हैं।

यह सब ईश्वरीय गुण है, इन का अभाव ही आसुरी गुण कहलाता है, आसुरी गुण कोई गुण नही, ईश्वरीय गुणों का अभाव है, इस लिये परमात्मा अपने को सभी गुणों में विद्यमान बताता है, जो जितना ईश्वरीय गुणों से युक्त है वो उतना ही परमात्मा के निकट है।

इस प्रकार प्राणियों के ये पृथक्पृथक् और अनेक तरह के भाव मेरे से ही होते हैं अर्थात् उन सबको सत्ता, स्फूर्ति, शक्ति, आधार और प्रकाश मुझ लोकमहेश्वर से ही मिलता है। तात्पर्य है कि तत्त्व से सब के मूल में मैं ही हूँ। प्रकृति के त्रियामी गुणों से इन सब भाव मे जो भी प्रभाव है वो सब परमात्मा ही है।

साधक संसार को कैसे देखे ऐसे देखे कि संसारमें जो कुछ क्रिया, पदार्थ, घटना आदि है, वह सब भगवान् का रूप है। चाहे उत्पत्ति हो, चाहे प्रलय हो चाहे अनुकूलता हो, चाहे प्रतिकूलता हो चाहे अमृत हो, चाहे मृत्यु हो चाहे स्वर्ग हो, चाहे नरक हो यह सब भगवान् की लीला है।

भगवान् श्रीकृष्ण इन दो श्लोकों में उन विविध गुणों को गिनाते हैं, जो मनुष्य के मन और बुद्धि में व्यक्त होते हैं।साधारणत, सृष्टि शब्द से केवल हम भौतिक जगत् ही समझते हैं। परन्तु उपर्युक्त समस्त गुण उसके व्यापक एवं सर्वग्राहक अर्थ को सूचित करते हैं। उनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जगत् शब्द के अर्थ में हमारे मानसिक और बौद्धिक जीवन भी सम्मिलित हैं। पुन सभी मनुष्यों और प्राणियों का वर्गीकरण इन्हीं गुणों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने गुण या स्वभाव के वशीभूत है। यथा मन तथा मनुष्य।

ऐसा माना जाता है यह समस्त भाव लिंगस्वरूप मे जीव के साथ जुड़ जाते है और प्रकृति और पांच महाभूतों के अतिरिक्त अठारह तत्वों के समुच्चय से लिंग शरीर का निर्माण होता है। यह नेत्रों से गोचर नही है। इस को हम ने चेतन एवम चेतन्य के रूप में पढा था। इस मे बुद्धि प्रधान तत्व है एवम इसी से अन्य भाव भी उत्पन्न होते है और सयुक्त रूप में हम इन्हें कर्म भी कहते है, यही प्रकृति के त्रियामी गुणों से मिल कर पशु, पक्षी, मनुष्य या वनस्पति की देह धारण करता है। इस मे जीव आत्मा निलिप्त एवम उदासीन है और जिस समय इस लिंग स्वरूप से मुक्त होता है तो परमात्मा से लीन होता है। यह समस्त परमात्मा ही है।

वेदान्त का मानना है प्रकृति और पुरुष से परे परमात्मा रूपी एक नित्य तत्व है, यह सृष्टि का निर्माण उस के संकल्प से उत्पन्न मन की इच्छा से हुआ इसलिये समस्त सृष्टि के मायात्मक सभी पदार्थ परब्रह्म के मानस भाव ही है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.05।।

।। विभूति भाव (2) ।। विशेष - गीता 10.05 ।।

इन्द्रिय- मन एवम बुद्धि ही किसी जीव के प्राकृतिक संसाधन है जो जीवात्मा को चेतन रखता है। यदि गति, ऊर्जा या कार्य करने की करने की क्षमता को जीव माना जाता तो जीव मोटर, मशीन और विद्युत के यंत्र होते।

प्रकृति अपने तीन गुणों से जीव को संचालित करती है और परमात्मा को यदि हम पावर सप्लाई समझे तो यह कह सकते है कि विद्युत तो सभी को समान रूप से मिलती है किंतु कार्य वह अपने भाव अर्थात प्रकृति के गुण से करता है जैसे बिजली से मोटर चलती है और बल्ब जलता है।

जीव में परमात्मा ने सृजन की शक्ति दी है, यही शक्ति जीव को कर्ता भाव से भी जोड़ती है एवम मोह, ममता और कामना-आसक्ति का भी कारक है। परमात्मा की योगमाया से प्रकृति के तीनों गुणों का प्रभाव यह रहता है कि जीव अज्ञान को ही ज्ञान मान कर जीवन व्यतीत करता है।

अतः क्या हम यह मान ले कि भाव की शून्यता ही ब्रह्म है। यदि यह सत्य है जो किसी सुंदर स्त्री या धन या भोजन को देख कर मन मे जो भाव उठता है, वह मिथ्या है। यही यदि सत्य है तो हमारे खजुराहो एवम कोणार्क के मंदिरो के बाहर गढ़ी हुई मुर्तिया में हम परमात्मा के भाव को किस प्रकार प्राप्त कर पाएंगे? क्या इस से जीवन नीरस और शुष्क सा भावजन्य नही हो जाएगा? ध्यान का अर्थ चिंतन करना ही है, ध्यान किसी लट्ठ की भांति ठूठ होने का नाम नही है। ध्यान उस पर ब्रह्म का चिंतन ही है, उस के भाव स्वरूप को समझने और उस मे लीन होने का ही चितंन है।

भगवान श्री कृष्ण की बाल लीला से ले कर महाभारत के गीता के उपदेश तक उन की लीलाओं का आनंद भागवद में वर्णित है। यह आनंद भाव जनित भक्ति का ही आनन्द है। जब प्रकृति के सत-रज-तम गुण से प्रकृति का आनन्द लेने की चेष्टा करते है, तो वह आनन्द का अस्तित्व भी क्षणिक होता है, किन्तु जब वही आनन्द परमात्मा के भाव के साथ किया जाय तो स्थायी हो जाता है।

प्रकृति नीरस नही है, खिलते और सुगंध बिखेरते फूल, झर झर बहते शोर मचाते हुए झरने, कल कल बहती नदियां और स्वच्छ आकाश के सौंदर्य में किस का मन प्रफुल्लित नही होता। बच्चों की मधुर मुस्कान किस का मन नहीं मोह लेती। मन पसंद भोजन किसे पसंद नहीं। नारी की रमणीयता किसे नहीं भटकाती। यह प्रकृति का सौंदर्य जीने के लिए, साहस और भोगने के लिए और अपना कर्तव्य कर्म करने के लिए ही तो है। भाव प्रधान व्यक्ति ही जीवन का आनंद ले सकता है। दुविधा वहीं उत्पन्न होती है, जब आनंद की जगह स्वार्थ, मद, अहंकार, काम, वासना, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या आदि दुर्गुण जीव को घेर लेते है। वह भूल जाता है कि वह स्थायी या अमर नही है। उसे भी प्रकृति के नियम से नष्ट होना ही है। जो शाश्वत है, वह परब्रह्म का अंश है, जिसे कुछ लोकसंग्रह के कर्म हेतु इस धरती पर भेजा है परंतु वह कर्म फल और बंधन के दल दल में धसता जा रहा है।

भगवान श्री कृष्ण भी ग्याहरवें अध्याय 33वे श्लोक में कहते है कि हे अर्जुन तू उठ खड़ा हो, मुफ्त में प्राप्त यश को प्राप्त कर, अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर, समृद्धि-सम्पन्न हो कर राज्य का भोग कर, क्योंकि जो कार्य होना है, वह मेरे द्वारा पहले से निर्धारित है, तू उस का निमित्त है। यही समर्पण है, यही समर्पण परमात्मा का भाव है। राजा जनक , राजा राम, स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने निष्काम कर्मयोग द्वारा राज करते हुए, शासन किया और सांसारिक जीवन जी कर उदाहरण प्रस्तुत किया। इसलिये त्याग का अर्थ ही परमात्मा के भाव से जुड़ कर, प्रकृति के भाव का त्याग है। जहां किसी भी भाव मे कामना, आसक्ति, लोभ, स्वार्थ, मोह, ममता या लोकसंग्रह का अभाव है, वह परमात्मा से भाव से अछूता है।

भगवान का कथन है जिस स्वभाव जन्य कर्म से बद्ध हो कर तू किसी कार्य को नही करने की इच्छा करता है, वही कार्य प्रकृति भाव मे पराधीन हो तू करने को विवश होगा। अर्थात भावजन्य कर्म प्रकृति ही निश्चित करती है, वह जो करवाना चाहती है, वही भाव प्रदान करती है। इस प्रकृति की माया से जनित भाव को परमात्मा के भाव से युक्त कर लेने से कर्तृत्व और भोक्तत्व से मुक्ति सम्भव है।

गीता कर्म प्रधान ग्रन्थ है, अतः अपने कर्तव्य कर्म में यदि कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव से मुक्त हो कर परमात्मा के भाव से हम यदि अपने को जोड़ ले, तो वही कार्य हमारे लिये परमात्मा की पूजा के समान हो जाएगा। जो होता है और जो होगा वह परमात्मा का ही भाव है, मैं उस का निमित्त हूँ, यह निमित्त होने के अहम को भी परमात्मा का भाव समझने के लिए ही, विभूतियों में भाव की अवस्था को सर्वप्रथम लिया गया है।

यही भाव जब हम किसी चर्चा करते समय, भजन कीर्तन के समय, भोजन करते हुए, या अपना कार्य करते हुए, परमात्मा के भाव से जोड़े तो यह समर्पण है, किन्तु ऐसा नही होता। विचार करे, गीता पढ़ते हुए, यह भाव की गीता पढ़ने और उसे आत्मसात करने की प्रेरणा में परमात्मा से प्राप्त हो, यह भाव उत्पन्न हुआ या नही।

गीता या किसी भी आत्मोन्नति का चिंतन करते हुए, यदि भाव प्रकृति का है, तो हम अहम में ज्ञान को बाटते ज्यादा है और आत्मसात कम करते है। प्रायः परमात्मा के भाव के अभाव में कोई भी सत्संग का हम स्थायी आनन्द नही ले पाते, यह तब तक ही रहता है, जब तक हम देखते या सुनते है।

कौन है, जिस ने किसी कार्य को करने, किसी को देखने या सुनने के समय अपने अंदर की आवाज को नहीं सुना हैं। विशेष तौर पर जब कोई कार्य अनुचित या धर्म के विरुद्ध हो, यह अंतरात्मा की आवाज आप के भाव को पढ़ती है, समझती है, मार्गदर्शन देती है, यही तो परमात्मा का भाव है जो सभी प्राणियों के हृदय में उत्पन्न होता रहता है। किंतु जब प्रकृति के गुण से जुड़े तो परिवर्तित हो कर शांत हो जाता है।

भाव की अवस्था गहन विषय है, विभूतियों में परमात्मा को देख पाना बिना भाव के संभव नही, गीता को समझ पाना भी भाव के अभाव में संभव नही, इसलिये परमात्मा के भाव के चिंतन को आगे बढ़ाते है। इसे आगे और विस्तृत रूप में पढ़ेंगे।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 10.05 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.6॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥

"maharṣayaḥ sapta pūrve,
catvāro manavas tathā..।
mad-bhāvā mānasā jātā,
yeṣāṁ loka imāḥ prajāḥ"..।।

भावार्थ:

सातों महान ऋषि और उनसे भी पहले उत्पन्न होने वाले चारों सनकादि कुमारों तथा स्वयंभू मनु आदि यह सभी मेरे मन की इच्छा-शक्ति से उत्पन्न हुए हैं, संसार के सभी लोकों के समस्त जीव इन्ही की ही सन्ताने है। (६)

Meaning:

The seven great sages and the four before them, and the Manus were contemplating me. They were born out of my mind, (they) of whom are the creatures in this world.

Explanation:

Now the creation of the external world is being talked about and before all the regular human being, animal etc. came, first the Lord created the sapta ṛīṣīs, as well as the sanakādi ṛīṣīs, and thereafter only all the other human being came; one set of ṛīṣīs indicating the grihastha ṛīṣīs; in pravṛtti mārga; other set of ṛīṣīs representing the nivṛtti mārga. So the sapta ṛīṣīs represent the grihastha parampara and sanakādi four ṛīṣīs represent the sanyāsi parampara; and out of these eleven; all the other beings came.

Previously, Shri Krishna spoke about Ishvara as the cause of several subtle expressions including non-injury, penance and so on. He now enumerates Ishvara's manifest, visible expressions. Per tradition, the entire universe was created by seven great sages and fourteen individuals known as "Manus". Shri Krishna asserts that these sages and Manus, the creators of all living and inert beings in this universe, were themselves created by Ishvara through his mind.

The Srimad Bhagavatam described the creation of the universe in great detail. Ishvara first created Lord Brahma and entrusted him with the responsibility of creating the universe. Lord Brahma then created the four child-sages Sanaka, Sanandana, Sanaatana and Sanatkumaara. When he asked them to populate the world, they refused, because they did not want to get tangled in any material pursuits. They took the vow of celibacy and roamed the world, constantly contemplating upon Ishvara.

Next, Lord Brahma created the saptarishis or the seven great sages Bhrigu, Marichi, Atri, Pulastya, Pulaha, Kratuhu and Vasishtha. He then created Manu was who was entrusted with further procreation and establishment of the moral code, which is known as Manusmriti. There are fourteen Manus that correspond to fourteen Manvantaras or periods of Manu.

Having enumerated the creators of his universe, Shri Krishna says that all those original individuals are expressions that were created from Ishvara's mind, just like we create whole new worlds in our dreams in a matter of seconds without any external materials. This shloka is similar to the biblical verse "Let there be light". The idea is the same - that Ishvara is the original cause of everything.

What is the result of knowing Ishvara's vibhootis or expressions? This is given in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

विभूति योग में 20 प्रकार के मानसिक भाव परमात्मा ही है, पढ़ने के बाद यह श्लोक सृष्टि की रचना परमात्मा द्वारा शुरू की गई, के बारे में बताया गया है। यहां अलग अलग 25 व्यक्तित्व को हम जानने की कोशिश करते है, जिन्हे इस प्रकृति की रचना का आधार भी कह सकते है, इसलिए इस गीता की अलग अलग मीमांसा लिखने वालों ने इस श्लोक की भी अलग ही व्याख्या की है।

विष्णु भगवान की नाभी से उत्पन्न ब्रह्मा द्वारा संपूर्ण सृष्टि की रचना की गई है, जिस में सर्वप्रथम मानस पुत्र चार सनक, सनंदन, सनत और सनातन नाम से चार कुमार हुए। इन्होंने सन्यासी धर्म का अपनाया जो मुक्ति का निर्वृति मार्ग कहा गया। ये चारों भगवत्स्वरूप हैं। सब से पहले प्रकट होने पर भी ये चारों सदा पाँच वर्ष की अवस्थावाले बालकरूप में ही रहते हैं। ये तीनों लोकोंमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का प्रचार करते हुए घूमते रहते हैं। इन की वाणी से सदा हरिः शरणम् का उच्चारण होता रहता है। ये भगवत्कथा के बहुत प्रेमी हैं। अतः इन चारों में से एक वक्ता और तीन श्रोता बनकर भगवत्कथा करते और सुनते रहते हैं।

जो दीर्घ आयुवाले मन्त्रों को प्रकट करने वाले ऐश्वर्यवान् दिव्य दृष्टि वाले गुण, विद्या आदि से वृद्ध धर्म का साक्षात् करनेवाले और गोत्रों के प्रवर्तक हैं - ऐसे सातों गुणों से युक्त वैवस्वत मन्वन्तर के ऋषि सप्तर्षि कहे जाते हैं। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ -- ये सातों ऋषि उपर्युक्त सातों ही गुणोंसे युक्त हैं। ये सातों ही वेदवेत्ता हैं, वेदों के आचार्य माने गये हैं, प्रवृत्ति धर्म का संचालन करनेवाले हैं, गोत्र चलाने वाले और प्रजापति के कार्य में नियुक्त किये गये हैं। इन्ही से प्रजा का विस्तार हुआ है एवम धर्म की व्यवस्था चलती है। क्योंकि इन्होंने गृहस्थ धर्म निभाया अतः इस को मोक्ष का प्रवृति मार्ग का द्योतक भी कह सकते है।

ब्रह्मा के एक कल्प में चौदह मन्वन्तर बताये गए है, प्रत्येक मन्वन्तर के मनु, देवता और सप्त ऋषि भी अलग अलग बताये गए है। अतः चाक्षुष मन्वन्तर वाले सप्त ऋषि भृगु, नभ, विवस्वान, सुधामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु को भी पहले का सप्त ऋषि कहा जा सकता है। किंतु गीता की रचना काल को देखते हुए वैवस्वत मन्वन्तर जो वर्तमान है, उसी के सप्त ऋषि के बारे में कहा गया होगा, यही मानते है।

विष्णु पुराण के अनुसार भृगु, एवम दक्ष को मिला कर ब्रह्मा जी नो मानस पुत्र हुए और इस मे नारद जी को जोड़ देने से मनुस्मृति में ब्रह्मा जी दस मानस पुत्र माने गए।

अड़गड़ानंद जी के अनुसार सप्तऋषि अर्थात योग की सात क्रमिक भूमिकाएं है जिन्हें हम शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमानसा, सत्वापति, असनसक्ति, पदार्थभावना एवम तुर्यगा कहते है।

अड़गड़ानंद जी के अनुसार इन को मन के संकल्प के रूप में मन, बुद्धि, चित्त एवम अहंकार का नाम से पहचान सकते है।

ब्रह्माजी के एक दिन(कल्प) में चौदह मनु होते हैं। ब्रह्माजीके वर्तमान कल्प के स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, **वैवस्वत,** सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि नामवाले चौदह मनु हैं । इन मे अभी वैवस्वत मनु अर्थात सातवां मनु चल रहा है और आगे सात मनु और आएंगे। ये सभी ब्रह्माजी की आज्ञा से सृष्टि के उत्पादक और प्रवर्तक हैं।मात्र सृष्टि भगवान् के संकल्प से पैदा होती है। परन्तु यहाँ सप्तर्षि आदि को भगवान् के मन से पैदा हुआ कहा है। इसका कारण यह है कि सृष्टि का विस्तार करनेवाले होने से सृष्टि में इन की प्रधानता है। दूसरा कारण यह है कि ये सभी ब्रह्माजी के मन से अर्थात् संकल्प से पैदा हुए हैं। स्वयं भगवान् ही सृष्टिरचना के लिये ब्रह्मारूप से प्रकट हुए हैं। ब्रह्मा स्वयं परमात्मा के संकल्प से उत्पन्न है। अतः सात महर्षि, चार सनकादि और चौदह मनु इन पचीसों को ब्रह्माजी के मानस पुत्र कहें अथवा भगवान् के मानस पुत्र कहें, एक ही बात है।

अड़गड़ानंद जी के अनुसार यह सब मेरे ही संकल्प अर्थात मेरे ही मन के भाव के अनुकूल है एवम समस्त संसार इन की प्रजा है, इसलिये यह संसार मेरा ही संकल्प है। विचारणीय बात यही है, सृष्टि की रचना परमात्मा का एक से अनेक होने का संकल्प है, अतः सृष्टि का प्रारम्भ भी ब्रह्मा के संकल्प से उत्पन्न मानस ऋषियों एवम पुत्रो से हुआ। यह संकल्प निंद्रा में सोए व्यक्ति जैसा ही है, इसलिये उसे माया, असत, अनित्य जैसे तत्वों से परिभाषित भी किया है। जिस दिन परब्रह्म का संकल्प समाप्त होगा, सारा जगत नींद से उठने से सपने का नष्ट होने जैसा ही होगा। यह प्रगाढ़ नींद में सोए व्यक्ति की भांति परब्रह्म के ब्रह्मांड की असत्य तत्व को वही जान सकता है, जो इस प्रकृति से परे अपने स्वरूप को पहचान पाया हो।

संसार में दो तरह की प्रजा है - स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न होनेवाली और शब्द से (दीक्षा, मन्त्र उपदेश आदि से) उत्पन्न होने वाली। संयोग से उत्पन्न होनेवाली प्रजा **बिन्दुज** कहलाती है और शब्द से उत्पन्न होनेवाली प्रजा **नादज** कहलाती है। बिन्दुज प्रजा पुत्र परम्परा से और नादज प्रजा शिष्य परम्परा से चलती है। सप्तर्षियों और चौदह मनुओं ने तो विवाह किया था अतः उन से उत्पन्न होने वाली प्रजा बिन्दुज है। परन्तु सनकादिकों ने विवाह किया ही नहीं अतः उनसे उपदेश प्राप्त कर के पारमार्थिक मार्ग में लगने वाली प्रजा,नादज है। निवृत्ति परायण होने वाले जितने सन्त महापुरुष पहले हुए हैं, अभी हैं और आगे होंगे, वे सब उपलक्षण से उन की ही नादज प्रजा हैं। यह सप्त ऋषि एवम चार सनकादि राजा हुए एवम शेष सभी प्रजा है।

चिनमयनंद जी अनुसार वे सप्तर्षि अध्यात्मशास्त्र की दृष्टि से महत् तत्त्व अहंकार और पंच तन्मात्राएं हैं। इन सब के संयुक्त रूप को ही जगत् कहते हैं। व्यक्तिगत दृष्टि से, सप्तर्षियों के रूपक का आशय समझना बहुत सरल है। हम जानते हैं कि जब हमारे मन में कोई संकल्प उठता है, तब वह स्वयं हमें किसी भी प्रकार से विचलित करने में समर्थ नहीं होता। परन्तु, किसी एक विषय के प्रति जब यह संकल्प केन्द्रीभूत होकर कामना का रूप ले लेता है, तब कामना में परिणित वही संकल्प अत्यन्त शक्तिशाली बनकर हमारी शान्ति और सन्तुलन को नष्ट कर देता है। ये संकल्प ही बाहर प्रक्षेपित होकर पंच विषयों का ग्रहण और उनके प्रति हमारी प्रतिक्रियायें व्यक्त कराते हैं। यह संकल्पधारा और इसका प्रक्षेपण ये दोनों मिलकर हमारे सुखदुख पूर्ण यशअपयश तथा प्रयत्न और प्राप्ति के छोटे से जगत् के निमित्त और उपादान कारण बन जाते हैं। भगवान् कहते हैं, ये सब मेरे मन से अर्थात् संकल्प से ही प्रकट हुए हैं। हममें से प्रत्येक (व्यष्टि) व्यक्ति में निहित सृजन शक्ति अथवा सृजन की प्रवृत्ति के माध्यम से व्यक्त चैतन्य ही व्यष्टि सृष्टि का निर्माता है। यह सृजन की प्रवृत्ति अन्तकरण के चार भागों में व्यक्त होती है तभी किसी प्रकार का निर्माण कार्य होता है। वे चार भाग हैं संकल्प (मन), निश्चय (बुद्धि), पूर्वज्ञान का स्मरण (चित्त) और कर्तृत्वाभिमान (अहंकार)। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारों को उपर्युक्त चार मानस पुत्रों के द्वारा इंगित किया गया है।इस प्रकार एक ही श्लोक में समष्टि और व्यष्टि की सृष्टि के कारण बताए गए हैं। समष्टि सृष्टि की उत्पत्ति एवं स्थिति के लिए महत् तत्त्व, अहंकार और पंच तन्मात्राएं कारण हैं, जबकि व्यष्टि सृष्टि का निर्माण मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की क्रियाओं से होता है।संक्षेप में, सप्तर्षि समष्टि सृष्टि के तथा चार मानस पुत्र व्यष्टि सृष्टि के निमित्त और उपादान कारण हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण कारण कार्य का एक मात्र कारण मै ही हूँ, किन्तु मै अपना कोई कारण नही रखता और मै उन के भाव -अभाव में ज्यो का त्यों ही रहता हूँ। यह एक दीर्घ विश्लेषण है अतः संक्षिप्त में ही पढ़ते है। किन्तु जो व्यक्त एवम व्यक्त प्रकृति से ले कर जड़-चेतन और जीव तत्व है उस कर मूल में परब्रह्म को ही देखना चाहिये, यही समभाव भी है। यही हम कल्पना करे कि दादा के दादा के दादा .. तो हमे समझ मे आना चाहिये, सभी प्राणी उस एक से उत्पन्न है।

श्लोक चार से छह तक का मानस एवम सूक्ष्म से सूक्ष्म बीज परमात्मा का प्रारंभिक सृजन को जानने के कारण एवम उद्देश्य हम अगले श्लोक में पढेंगे।

।। हरि ॐ तत सत।।10.06।।

।। अविभक्तम - विभकेत्तषु ।। विशेष - गीता 10.06 ।।

गीता के अठाहरवें अध्याय के 20वें श्लोक में भगवान श्री कृष्ण कहते है "सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ।। 18. 20।।" अर्थात जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतों में एक अविनाशी परमात्म- भाव को विभाग रहित समभाव से स्थित देखता है, उस ज्ञान को तो तू सात्विक जान।

अतिभौतिकवाद के सिद्धान्त के अनुसार केवल एक अव्यक्त प्रकृति से ही सारे व्यक्त पदार्थ गुणोत्कर्ष के अनुसार क्रम क्रम से निर्मित होते गए, जिसे हम आधुनिक काल मे डार्विन के मानव विकास वाद के सिंद्धांत के रूप में भी पढ़ते है। यही बात GOD Partical के विषय में कही गई है। सब क्षर- अक्षर या चर- अचर सृष्टि के संहार और उत्पति का विचार करने पर सांख्य मत के अनुसार पुरुष और प्रकृति दो ही स्वतन्त्र और अनादि मूल तत्व रह जाते है और पुरुष को अपने सारे क्लेशो की निवृत्ति कर लेने तथा मोक्षानन्द प्राप्त कर लेने के लिये प्रकृति से अपना भिन्नत्व अर्थात कैवल्य जान कर त्रिगुणातीत होना चाहिये। किंतु जहां प्रकृति को एक बताया गया है, वहां सांख्य के अनुसार प्रत्येक जीव अर्थात पुरुष असंख्य है। फिर मुक्ति का आशय क्या कहा जा सकता है?

किन्तु वेदान्त इस के आगे यह मानता है कि प्रकृति और पुरुष दोनों पिंड ब्रह्मांड की जड़ में ऐसा कोई मूल श्रेष्ठ तत्व है, जिस से मिलने के बाद कुछ और नही रहता। अतः प्रकृति के विकास का अतिभौतिकवाद का सिंद्धान्त इस मूलतत्व के अन्वेषण का विषय नही रह जाता।

क्योंकि सांख्य पुरुष असंख्य एवम प्रकृति को मूल तत्व मानता है, तो प्रश्न यही है पुरुष और प्रकृति का आपस का सम्बंध भी क्या है। सांख्य के अनुसार पुरुष निर्गुण भले ही हो किन्तु असंख्य होने से यह भी नही माना जा सकता कि असंख्य पुरुषों का लाभ जिस बात में है, उसे जान कर प्रत्येक पुरुष के साथ तदनुसार वर्ताव करने की क्षमता प्रकृति में होगी। अतः सात्विक ज्ञान दृष्टि से यही युक्तिसंगत होगा कि उस एकीकरण की ज्ञान क्रिया का अंत तक निरपवाद उपयोग किया जावे और प्रकृति और असंख्य पुरुषो का एक ही परम् तत्व में

अविभक्त रूप से समावेश किया जावे। इसलिए एक ही अविभक्त तत्त्व से सम्पूर्ण सृष्टि में जीव और जगत उत्पन्न हुए है।

हैकल का मानना है कि मूल प्रकृति के गुणों में वृद्धि होते होते उसी प्रकृति में अपने आप को देखने की और स्वयम अपने विषय मे विचार करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, अतः दृष्टा और दृश्य एक ही प्रकृति है। किंतु कोई अपने ही कंधे की सवारी नही लर्सकता, इसलिए सांख्य वादी दृष्टा और दृश्य जो अलग अलग तत्व मानते है। उन का मत है प्रकृति का विज्ञान अतिभौतिकवाद और विज्ञान के अनुसार प्रमाणिक भी है किंतु दृष्टा का विषय विज्ञान का न हो कर ज्ञान का है, जिसे तर्क से सिद्ध न करते हुए, अनुभव से एवम शुद्ध एवम शांत बुद्धि में जो स्फूर्ति मिलती है, उसी से जाना जा सकता है। अतः परब्रह्म के विषय मे जो कुछ भी गीता में है वह वेद एवम उपनिषद से है और वेद और उपनिषद में जो कुछ है वह हमारे ऋषि मुनियों के इन्द्रियातीत, एकाग्र मन और शुद्ध और शांत बुद्धि की तीव्रता से प्राप्त अनुभव के आधार पर है।

यह अव्यक्त एवम अभिन्न परब्रह्म में प्रकृति के व्यक्त विभिन्न स्वरूप का मूल अहंकार माना गया है। प्रकृति और पुरुष भी भिन्न भिन्न होने के बावजूद एक ही अव्यक्त परब्रह्म तत्व का अंश होने से एक-दूसरे के फायदे और विकास के लिये कार्य करते रहते है।

अतः परब्रह्म का गीता का ज्ञान अर्थात विभूति के मूल में अतिभौतिकवाद के विकास का सिंद्धान्त वैज्ञानिक एवम आध्यात्मिक कारणों से व्यक्त ब्रह्माड के विकास के सिंद्धान्त को ही बतलाता है। वैदिक धर्म के नियम सत्यता की कसौटी में प्रमाणिक एवम किसी भी नई विचारधारा को अंगीकृत करने में कोई परहेज न रखने के कारण सम्पूर्ण जगत में अनुसंधान का भी विषय भी है, जो किसी अन्य मत या धर्म मे उस की कट्टरता या मतान्धनता के कारण संभव नही।

विकास के सिंद्धात को हम कुछ आगे भी पढ़ेंगे, किन्तु विभूति के इस श्लोक में परब्रह्म जहां हर भाव में उपलब्ध है, वहाँ वह अव्यक्त से ले कर व्यक्त ब्रह्मांड के मूल से भी परे का है। अर्थात जो भी आज व्यक्त स्वरूप संसार या ब्रह्मांड हम देखते है, उस के मूल में यही परब्रह्म है, इस विभूति को समझना होगा।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 10.6 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.7॥

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥

"etāṁ vibhūtiṁ yogaṁ ca,
mama yo vetti tattvataḥ..।
so 'vikalpena yogena,
yujyate nātra saṁśayaḥ"..।।

भावार्थ:

जो मनुष्य मेरी इस विभूतिको और योगको तत्त्वसे जानता है अर्थात् दृढ़तापूर्वक मानता है एवम इस विशेष ऎश्वर्य-पूर्ण योग-शक्ति को तत्त्व सहित जानता है, वह अविचल भक्तियोगसे युक्त हो जाता है; इसमें कुछ भी संशय नहीं है। (७)

Meaning:

He who understands this, my manifestation and yoga in its essence; he becomes engaged with unperturbed yoga, without a doubt.

Explanation:

What is the result of hearing about Ishvara's expressions? Shri Krishna says that one who is able to perceive Ishvara as manifesting through expressions becomes established in "avikampena yoga" or a constant, unshakeable connection with Ishvara.

The word vibhūti refers to the great śhaktis (powers) of God manifesting in the universe. The word yogam refers to God's connection with these wonderful powers. In this verse, Shree Krishna explains that when we become aware of the magnificence of the Supreme Lord and become convinced about his glory, we naturally become inclined to engage in his devotion.

Vibhooti refers to the multiple or pluralistic manifestation of Ishvara, the presence of Ishvara in all forms present in the universe. Yoga, also known

as yoga- maaya, is the power that makes this pluralistic manifestation possible. Shri Krishna says that one who knows this vibhooti and yoga as arising from Ishvara is constantly united with Ishvara.

Knowledge of the greatness of God nourishes the love of the devotees and enhances their devotion. There is a direct relationship between knowledge and love.

When we meet a person, as formal introduction we say "Hello!". But as soon as we come to know that the person, we meet is great personalty, say Narendra Modi and we know his quality with respect, our expression and heart change with joy, respect and happiness and immediately we welcome him or vice versa. Hence, knowledge increase the connection and helps in devotion and love means unperturbed bhakti yog.

The key here is to develop a vision that goes into the essence of any object or person or situation instead of getting distracted by the form, just like a scrap metal dealer's vision goes straight into the metal, and not the shape.

How do we develop this vision? Let us bring back the concept of material cause and intelligent cause that we saw earlier. A pot is created by two aspects: the material cause which is clay, and the intelligent cause which is the potter. So, for instance, when Shri Krishna said that the seven sages were created by Ishvara, it means that Ishvara is both the "stuff" and the "sculptor". He is both the material and intelligent cause of those sages. The Mundaka Upanishad illustrates this concept with the example of a spider who creates a web from his own body, using no other external raw material. The spider becomes the material cause and the intelligent cause of the web.

So, if our thoughts are made of Ishvara, objects are made of Ishvara, situations are made of Ishvara, if we develop this vision, what will happen to us? We will get established in an unshakeable, unwavering connection with

Ishvara. In other words, if we know that Ishvara is present in everything, we will never be disconnected from Ishvara, just like our cell phones are never disconnected from their network no matter which part of the country we visit. We will be able to encounter every situation in life with poise and equanimity, without being shaken up, because everything is ultimately Ishvara.

This state of unwavering yoga is elaborated upon in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व के अध्याय में हम ने निष्काम कर्मयोग, सांख्ययोग, ध्यान योग एवम कर्मसन्यास योग पढ़ा। उस के पश्चात राजगुह्य ज्ञान को समझने के लिये हमें श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और पूर्ण समर्पण के साथ अनुसुवये होने को कहा गया। यह सब ज्ञान हमारे मन-बुद्धि के अज्ञान के विकार को समाप्त करने के लिये आवश्यक प्रथम कदम है। किसी भक्त के क्या गुण होने चाहिए, यह हम आगे भी पढ़ेंगे। किन्तु परमात्मा को समझनेवाला वही है, जिस का अज्ञान मिट गया हो। ज्ञान स्वयं में प्रकाशवान है, गीता या किसी धर्मग्रंथ का अध्ययन ज्ञान की प्राप्ति के लिये नही किया जाता वरन अपने अज्ञान को मिटाने के लिये किया जाता है। परमात्मा का यही कहना है, जिस का अज्ञान मिट गया है, वही उन की विभूतियों को समझ सकता है, उस के भाव परमात्मा के भाव होते है, उस के कर्म परमात्मा के कर्म होते है। वह जीव सृष्टि यज्ञ चक्र में सूर्य की भांति उदय हो कर इस संसार को प्रकाशित करता है और अस्त हो जाता है।

जीव योग से परमात्मा से जुड़ता है किंतु इस प्रकृति कि योगमाया में वह किस प्रकार परमात्मा को पाए, देखे, सुने, विश्वास करे, प्रेम करे और श्रद्धा रखे। क्योंकि जब हम अनजान व्यक्ति से मिलते है तो हमारे विचार और भावनाएं अलग अलग होती है। किंतु जैसे जैसे हमे उस के बारे में जानकारी मिलती है, हमारी श्रद्धा, विश्वास और प्रेम में परिवर्तन होता है।

यदि आपका मित्र आपको चमकते काले पत्थर की गोली दिखाता है तब तुम्हें इसके महत्त्व की जानकारी नहीं होती और इसलिए आप के भीतर उस काले पत्थर के प्रति किसी प्रकार का लगाव उत्पन्न नहीं होता। लेकिन जब आपका मित्र आप को बताता है कि यह 'शालीग्राम' है तथा इसे किसी सिद्ध संत ने उसे उपहार के रूप में दिया है। 'शालीग्राम' एक विशेष प्रकार

का प्राचीन पत्थर है जो भगवान विष्णु का प्रतिरूप है जब आप को उस काले पत्थर की विशेषता का ज्ञान हो जाता है तब आप के लिए उस काले पत्थर का महत्त्व बढ़ जाता है। यदि फिर आप का मित्र आप को यह कहता है कि क्या आप जानते हैं कि पांच सौ वर्ष पूर्व महान संत स्वामी रामानन्द इस पत्थर का प्रयोग उपासना के लिए करते थे? जैसे ही आप को यह विशेष जानकारी प्राप्त होती है तब आप का उस काले पत्थर के प्रति श्रद्धा भाव और अधिक बढ़ जाता है। प्रत्येक समय पत्थर के संबंध में प्राप्त हो रही जानकारी से आपके भीतर उस काले पत्थर के प्रति श्रद्धा में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इसी प्रकार से भगवान का वास्तविक ज्ञान उनके प्रति हमारी श्रद्धा भक्ति बढ़ाता है। इस प्रकार भगवान की अनन्त ब्रह्माण्डों में व्याप्त अद्भुत शक्तियों का वर्णन करने के पश्चात श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे भक्त और पुण्य आत्माएँ जो इस ज्ञान में स्थित हो जाती हैं, वे आत्माएँ वास्तव में अविचल भक्ति के माध्यम से भगवान में एकनिष्ठ हो जाते हैं।'

श्रद्धा और विश्वास का आधार ज्ञान है, उपरोक्त उदाहरण में यदि हम पत्थर को शालिग्राम समझ कर श्रद्धा और भक्ति से तभी भर सकते है, जब हमे शालिग्राम के विष्णु स्वरूप और उन के गुण की जान कारी अर्थात विभूति का पता हो और यदि हमे रामानंद स्वामी के विषय में ज्ञान हो तो उन से पूजित शालिग्राम के प्रति और भी नत मस्तक हो जाएंगे।

प्रेम, श्रद्धा और विश्वास में स्मरण और समर्पण यदि मात्र श्रद्धा और विश्वास का हो तो वह बिखर भी सकता है किंतु यदि ज्ञान से युक्त हो तो वह अविचल भक्तियोग से युक्त हो जाता है।

इसलिए भगवान कहते है एक वही व्यक्ति योग में स्थित हो कर दृढ़ता से उन के प्रति आस्था और विश्वास के साथ श्रद्धा, प्रेम और समर्पण कर सकता है, जो उन को उन की विभूतियों के स्वरूप में उन्हें जानता हो।

कोई रंग काला है या लाल है, इसे वही बालक समझ सकता है, जिस को बताया और समझाया गया हो। जिस ने उस ज्ञान को आत्मसात कर लिया हो। जिस ने रंग को पहचानना शुरू कर दिया हो अर्थात ज्ञान का होना, ज्ञान को उपयोग में लाना और ज्ञान से कार्य करना ही योग है।

विभूति नाम भगवान् के ऐश्वर्य का है और योग नाम भगवान् की अलौकिक विलक्षण शक्ति, अनन्त सामर्थ्य का है। तात्पर्य यह हुआ कि भगवान् की शक्ति का नाम योग है और उस योग से प्रकट होने वाली विशेषताओं का नाम विभूति है। चौथे से छठे श्लोक तक कही हुई

भाव और व्यक्ति के रूप में जितनी विभूतियाँ हैं, वे तो भगवान् के सामर्थ्य से, प्रभाव से प्रकट हुई विशेषताएँ हैं।

जब मनुष्य भोगबुद्धि से भोग भोगता है, भोगों से सुख लेता है, तब अपनी शक्ति का ह्रास और भोग्य वस्तु का विनाश होता है। इस प्रकार दोनों तरफ से हानि होती है। परन्तु जब वह भोगों को भोगबुद्धि से नहीं भोगता अर्थात् उस के भीतर भोग भोगने की किञ्चिन्मात्र भी लालसा उत्पन्न नहीं होती, तब उसकी शक्ति का ह्रास नहीं होता। उसकी शक्ति, सामर्थ्य निरन्तर बनी रहती है। वास्तव में भोगों के भोगने में सुख नहीं है। सुख है,भोगों के संयम में।यह संयम दो तरह का होता है (1) दूसरों पर शासन रूप संयम और (2) अपने पर शासन रूप संयम। दूसरों पर शासन रूप संयम का तात्पर्य है, दूसरों का दुःख मिट जाय और वे सुखी हो जायँ। इस भाव से दूसरों को उन्मार्ग से बचा कर सन्मार्ग पर लगाना। अपने पर शासनरूप संयम का तात्पर्य है,अपने स्वार्थ तथा अभिमान का त्याग करना और स्वयं किञ्चिन्मात्र भी सुख न भोगना। इन्हीं दोनों संयमों का नाम योग अथवा प्रभाव है। ऐसा योग अथवा प्रभाव सर्वोपरि परमात्मा में स्वतःस्वाभाविक होता है। दूसरों में यह साधन साध्य होता है।

जो मनुष्य परमात्मा के योग स्वरूप को तत्व से जान लेता है कि ' सब कुछ परमात्मा द्वारा ही सिद्ध होता है परमात्मा में कुछ नही होता। ' वह तत्ववेत्ता पुरुष परमात्मा में अचल योग प्राप्त कर लेता है। वास्तव में योग तो नित्य एवम सिद्ध है, अज्ञान जन्य भेद दृष्टि कर के जो वियोगाभास हो रहा है, ज्ञान द्वारा केवल उस की निवृत्ति हो जाती है, जिस से नित्य सिद्ध योग में अचल स्थिति होती है। इसे हम दीपक की लौ के समान मान सकते है जो हवा के रुकने पर स्थिर एवम एकनिष्ठ हो जाती है।

परमात्मा पर अचल विश्वास प्रह्लाद के समान होता है जो उस को अपने पिता भी द्वारा दिये गए कष्टों में भी विचलित नही करता एवम न ही पिता को दोषी मानता है, उस की परमात्मा के प्रति भक्ति अविचल थी।

इसलिये परमात्मा ने जो श्लोक 4 से 6 तक भाव से भौतिक संसार की उत्पत्ति तक विभूतियां बताई है वो सब ब्रह्मांड की उत्पत्ति, स्थिति और प्रवृति ही विभूति स्वरूप है, यह ही परमात्मा का निरंकुश ऐष्वर्य एवम स्वतंत्रता की विभूतियां है एवम जो परमात्मा के सौकुमार्य, सौशीलय, वात्सल्य आदि गुणों से भक्ति द्वारा योग करता है वो ही योग युक्त है,

ब्रज की गोपियां इस योग को जानती थी, इस लिये परमात्मा भी उन के भक्ति एवम प्रेम में चुल्लू भर छाछ के लिये नृत्य करते थे।

यहाँ जो विभूतियों का वर्णन किया गया है, इसका तात्पर्य इन में परिपूर्णरूप से व्यापक परमात्मा के ऐश्वर्य से है। विभूतियों के रूप में प्रकट होने वाला मात्र ऐश्वर्य परमात्मा का है। वह ऐश्वर्य प्रकट हुआ है परमात्मा की योगशक्ति से। संसार में क्रिया और पदार्थ निरन्तर परिवर्तनशील हैं। इन में जो कुछ विशेषता दीखती है, वह स्थायीरूप से व्यापक परमात्मा की ही है। इसलिये इस जगत में जो भी वस्तु शक्ति सम्पन्न प्रतीत हो, जिस किसी में जहाँ कहीं विलक्षणता दिखायी दे, वह सम्पूर्ण जगत या विलक्षणता भगवान् की योगशक्ति से प्रकट हुए ऐश्वर्य (विभूति) की ही है, न कि उस वस्तु की। इस प्रकार योग और विभूति परमात्मा की हुई तथा उस योग और विभूति को तत्त्व से जानने का तात्पर्य यह हुआ कि उस में विलक्षणता परमात्मा की है। अतः द्रष्टा की दृष्टि केवल उस परमात्मा की तरफ ही जानी चाहिये। यही इन को तत्त्व से जानना अर्थात् मानना है। संसार मे होने वाला हर कार्य परमात्मा की लीला है। परमात्मा ही जगत के कर्ता हर्ता, सर्वशक्तिमान, सर्वेश्वर, सर्वाधार, पराम दयालु, सब के सुहृदय एवम सर्वांतयामि मानना- यही भगवान की विभूति एवम योग को जानना है।

यहाँ जानने का अर्थ बौद्धिक ज्ञान से नही है। जिज्ञासु भक्त भी परमात्मा को जानने का प्रयत्न करता है। जानना का अर्थ है, एकमेव की परमात्मा ही इस जगत का मूल है, उसी से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई है, वह ही हर प्राणी और जड़-चेतन में विद्यमान है, इस को हृदय से मानना और अनुभव करना। वाचिक ज्ञान तो व्हाट्सएप्प पर नित्य ही आता है किंतु आचरण में किसी किसी के होता है। यह बुद्धि का विकार है कि जब हम गीता या धार्मिक ग्रन्थ पढ़ते है तो उस के ज्ञान को बुद्धि में धारण कर लेते है, किन्तु मन एवम हृदय में नही उतारते। इसी प्रकार अर्थार्थी एवम आप्त भक्त भी परमात्मा को अपनी कामना एवम सांसारिक सुखों एवं दुखो के लिए भजते है। जब तक हम पूर्ण श्रद्धा, विश्वास और प्रेम के साथ परमात्मा को समर्पित नही होते, हमारा अहम, कामना और आसक्ति भी बना कर रखते है। तबतक परमात्मा का ज्ञान जो हमे प्राप्त होता है, वह पुस्तकीय ज्ञान मात्र होता है, इसलिये अविचल भक्तियोग से युक्त नही होता। इस के सूरदास, तुलसी, रविदास, मीरा, गुरु तेगबहादुर जी और हनुमान आदि द्वारा अविचल भक्ति को समझने की जरूरत है।

गीता में अध्याय 7 से भक्तियोग का वर्णन है, भक्ति का अर्थ के परमात्मा के स्वरूप में ही कामना और आसक्ति रखना और सांसारिक कामना एवम आसक्ति का त्याग कर देना। इस से हृदय की सरलता आती है, किन्तु कर्मो के त्याग की बात नही की गई है। जब कामना और आसक्ति परमात्मा की तरफ हो जाये और राग का अभाव होगा तो सारे कार्य स्वयमेव ही निष्काम हो जाते है।

विभूति और योग को तत्त्व से जानने वाला अविचल भक्ति से युक्त हो जाता है। अतः विभूति और योगको तत्त्व से जानना क्या है इसका विवेचन आगे के श्लोक मे पढ़ते हैं।

।। हरि ॐ तत सत।।10.07।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.8॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

"ahaṁ sarvasya prabhavo,
mattaḥ sarvaṁ pravartate..।
iti matvā bhajante māṁ,
budhā bhāva-samanvitāḥ"..।।

भावार्थ:

मैं ही संपूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूँ और मुझसे ही सम्पूर्ण जगत की क्रियाशीलता है, इस प्रकार मानकर विद्वान मनुष्य अत्यन्त भक्ति-भाव से मेरा ही निरंतर स्मरण करते हैं। (८)

Meaning:

I am the cause of everything, everything is set in motion by me. Realizing this, wise individuals filled with this attitude worship me.

Explanation:

“Avikampena yoga”, the unwavering, unshakeable yoga, is defined by Shri Krishna as knowing that Ishvara is the cause of everything, and that

everything originates from Ishvara. Those who have established themselves in this yoga are “budhaa”, they are wise. They only worship or contemplate upon Ishvara, remaining unaffected by the ups and downs in life.

So, Lord being the cause of the universe, the Lord has the potentiality to manifest as pots, etc. Just as the seed has the potentiality to manifest as the tree; which is called śaktiḥ to evolve as the universe. This power of manifestation; this śakti is called yōgaḥ; yōgaḥ śaktiḥ this is called or māya śaktiḥ it is called. Thus Lord has got this māya. So what is the definition of māya? The potential power is māya; and any potential is always in dormant form.

And later, when the potential comes to manifestation; the manifest form is always pratakṣam means what? Visible; When the seed's potential has become kinetic; In science we talk about potential energy and kinetic energy; potential is hidden; kinetic is activated; it is actuallised; when the seed has the potential; you do not see; when it has become a tree, that yōga has become what? Visible. And the visible version is called vibhūthiḥ; the unmanifest power is called yōgaḥ; the manifest version of the same power is called vibhūthiḥ.

Thus, parabrahm is the Supreme Lord of both the material and spiritual creations. “He does not directly involve himself in the works of creating, maintaining, and dissolving the material universes.”

He expands himself as **Karanodakshayi Vishnu, who is also called Maha Vishnu.** Maha Vishnu is also known as Pratham Puruṣh (first expansion of God in the material realm).

He then expands himself to reside at the bottom of each universe as **Garbhodakshayi Vishnu**, who is called Dwitīya Puruṣh (second expansion of God in the material realm).

From Garbhodakshayi Vishnu, Brahma is born. He guides the process of creation—creating the various gross and subtle elements of the universe, the laws of nature, the galaxies and planetary systems.

Garbhodakashayi Vishnu further expands himself as **Kshirodakshayi Vishnu**, and resides at the top of each universe, in a place called Kṣhīra Sāgar. Kshirodakshayi Vishnu is also known as Tṛitīya Puruṣh (third expansion of God in the material realm). He resides at the top of the universe, but he also resides as the Supreme soul, in the heart of all living beings in the universe, noting their karmas, keeping an account, and giving the results at the appropriate time. He is thus known as the maintainer of the universe.

Imagine an adult and a child walking inside a haunted house within an amusement park. Though both of them see and hear the same things, they have different reactions. The child thinks that the ghosts and the eerie noises are real and becomes afraid. The adult knows that everything inside is fake, it is unreal. So enjoys the thrill of the haunted house without being afraid.

The difference between the adult and the child is that the adult has knowledge about the cause of the ghosts and the noises. Similarly, Shri Krishna says that one who knows Ishvara as the cause of everything, and as the inner controller of everything, will develop an extremely positive attitude towards life. He will take failures as learning opportunities, not as triggers for depression. He will never question why something bad happened to him, knowing that it is a result of his prior actions.

One who has developed such an outlook towards life will worship Ishvara at all times. This is indicated by the worlds “maam bhajante”. He will experience sorrow only if he forgets that Ishvara is the cause of everything. When one has understood that Ishvara, as the cause of everything, also is

the ultimate goal, then they become totally immersed in Ishvara, as described in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

भगवान के ही योगबल से यह सृष्टि चक्र चल रहा है; उन्ही की शासन-शक्ति से सूर्य, चंद्रमा, तारागण और पृथ्वी आदि नियम पूर्वक घूम रहे है; उन्ही के शासन से समस्त प्राणी अपने अपने कर्मानुसार अच्छी बुरी योनियों में जन्म धारण करके अपने अपने कर्मो का फल भोग रहे है- इस प्रकार से परमात्मा को सब का नियंता और प्रवर्तक समझना एवम श्रद्धा एवम भक्ति युक्त बुद्धिमानी से भजन करना ही परमात्मा को सम्पूर्ण जगत का प्रभव समझना है। बुद्धिमान संसार परायण न रह कर केवल भगवतप्रयाणं रहते है।

एक कुम्भकार कुम्भ बनाने के लिए सर्वप्रथम घट के निर्माण के उपयुक्त लचीली मिट्टी तैयार करता है। तत्पश्चात् उस मिट्टी के गोले को चक्र पर रखकर घटाकृति में परिवर्तित करता है। तीसरी अवस्था में घट को सुखाकर उसे चमकीला किया जाता है और चौथी अवस्था में उस तैयार घट को पकाकर उस पर रंग लगाया जाता है। घट निर्माण की इस क्रिया में मिट्टी निश्चय ही कह सकती है कि वह घट का प्रभव स्थान है। चार अवस्थाओं में घट का जो विकास होता है, उस का भी अधिष्ठान मिट्टी ही थी, न कि अन्य कोई वस्तु। यह बात सर्वकालीन घटों के सम्बन्ध में सत्य है। किसी भी घट की उत्पत्ति, वृद्धि और विकास उस के उपादान कारण भूत मिट्टी के बिना नहीं हो सकता। जल में तरंग, लहरे, गति, भंवर और भी न जाने क्या कुछ होता है किंतु इन सब का आश्रय जल ही होता है। इसी प्रकार एक ही चैतन्यस्वरूप परमात्मा, ईश्वर और जीव के रूप में प्रतीत होता है। जिस पुरुष ने विवेक के द्वारा व्यष्टि और समष्टि के इस सूक्ष्म भेद को समझ लिया है, वही पुरुष अपने मन को बाह्य जगत् से निवृत्त करके इन दोनों के अधिष्ठान स्वरूप आत्मा में स्थिर कर सकता है।

चैतन्य महाप्रभु कहते हैं, " श्री कृष्ण के रूप में परब्रह्म ही सृष्टि के सृजन, पालन और संहार के कार्य के लिए प्रत्यक्ष रूप से स्वयं को सम्मिलित नहीं करते।" भगवान श्रीकृष्ण का मुख्य कार्य अपने दिव्य धाम 'गौलोक' में मुक्त पुण्य आत्माओं के साथ अपनी अनन्त प्रेमामयी लीलाओं में लीन होना है। संसार की सृष्टि के प्रयोजनार्थ वे स्वयं का विस्तार **कारणोदकशायी विष्णु** के रूप में करते हैं जिन्हें **महाविष्णु** कहा जाता है फिर महाविष्णु भगवान के इस रूप में अनन्त प्राकृतिक ब्रह्माण्डों से निर्मित भौतिक जगत पर शासन करते

हैं। महाविष्णु को सर्वप्रथम पुरुष अर्थात भौतिक क्षेत्र में भगवान के सर्वप्रथम विस्तार के रूप में जाना जाता है। वे कारण नामक सागर के दिव्य जल में निवास करते हैं और अपने दिव्य शरीर के रोमों से अनन्त भौतिक ब्रह्माण्डों को प्रकट करते हैं। तत्पश्चात वे प्रत्येक ब्रह्माण्ड के तल पर रहने वाले **गर्भोदकशायी विष्णु** के रूप में अपना विस्तार करते हैं और जिन्हें द्वितीय पुरुष अर्थात भौतिक जगत में भगवान का द्वितीय विस्तार कहा जाता है।

गर्भोदकशायी विष्णु से ब्रह्मा का जन्म हुआ। उनके मार्गदर्शन में ब्रह्माण्ड के विभिन्न स्थूल और सूक्ष्म तत्त्वों एवं पदार्थों का निर्माण, प्राकृतिक नियमों का निर्माण, आकाश गंगाओं और ग्रह की सूक्ष्म और स्थूल प्रणालियों का निर्माण और उन में निवास करने वाले जीवों आदि को उत्पन्न करने की प्रक्रिया का सृजन किया जाता है। प्रायः ब्रह्मा के नाम का उल्लेख ब्रह्माण्ड के सृजनकर्ता के रूप में लिया जाता है। वास्तव में वे सृष्टि के दूसरे क्रम के सृजनकर्ता हैं। गर्भोदकशायी विष्णु आगे फिर **क्षीरोदक्षयी विष्णु** के रूप में अपना विस्तार करते हैं और प्रत्येक ब्रह्माण्ड के ऊपर क्षीरसागर नामक स्थान पर रहते हैं। क्षीरोदक्षयी विष्णु को तृतीय पुरूष अर्थात भौतिक जगत में भगवान का तीसरा विस्तार कहा गया है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के शीर्ष पर रहने के साथ-साथ वह परमात्मा के रूप में ब्रह्माण्ड के सभी जीवों के हृदय में भी वास करते हैं और उनके कर्मों का लेखा-जोखा रखते हैं और उपयुक्त समय पर उन्हें उनके कर्मों के अनुसार फल प्रदान करते हैं इसलिए उन्हें सभी ब्रह्माण्डों का पालक और संचालक कहा जाता है।

"अनन्त ब्रह्माण्डों में से प्रत्येक ब्रह्माण्ड के शंकर, ब्रह्मा और विष्णु, महाविष्णु के श्वास भीतर लेने पर उनके शरीर के रोमों से प्रकट होते हैं और श्वास बाहर छोड़ने पर पुनः उनमें विलीन हो जाते हैं। मैं, उन श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ जिनके महाविष्णु विस्तार हैं।" शंकराचार्य कृत पंचदशी में परब्रह्म से ब्रह्म और ब्रह्म से परमात्मा की उत्पत्ति हुई। परमात्मा ही योगमाया और प्रकृति के इस जगत का संचालन करता है।

मानस, नादज, बिन्दुज, उद्भिज्ज, जरायुज, अण्डज, स्वेदज अर्थात् जडचेतन, स्थावरजङ्गम यावन्मात्र जितने प्राणी होते हैं, उन सब की उत्पत्ति के मूल में परमपिता परमेश्वरके रूप में मैं ही हूँ। संसार में उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, पालन, संरक्षण आदि जितनी भी चेष्टाएँ होती हैं, जितने भी कार्य होते हैं, वे सब मेरे से ही होते हैं। मूल में उन को सत्तास्फूर्ति आदि जो कुछ मिलता है, वह सब मेरे से ही मिलता है। जैसे बिजली की शक्ति से सब कार्य होते हैं, ऐसे ही संसार में जितनी क्रियाएँ होती हैं, उन सबका मूल कारण मैं ही हूँ। साधककी दृष्टि

प्राणिमात्र के भाव, आचरण, क्रिया आदि की तरफ न जाकर उन सब के मूल में स्थित भगवान् की तरफ ही जानी चाहिये। कार्य, कारण, भाव, क्रिया, वस्तु, पदार्थ, व्यक्ति आदि के मूल में जो तत्त्व है, उस की तरफ ही भक्तों की दृष्टि रहनी चाहिये। इस बात को जान लें अथवा मान लें, तो भगवान् के साथ अविकम्प (कभी विचलित न किया जानेवाला) योग अर्थात् सम्बन्ध हो जायगा।

ज्ञान योग में तत्वविद जिस प्रकार संसार मे हर जगह परमात्मा को देखता है वैसे ही भक्ति योग में भक्त संसार की हर क्रिया को परमात्मा की लीला समझ कर भजता है। श्रीमद भागवत पुराण में परमात्मा की लीलाओं का ही वर्णन है, भक्त भगवान की हर लीला में परमात्मा को देखता है एवम भजता है। अन्य जो परमात्मा को न देखते हुए उन की लीला पर ध्यान देते है, उस को रचते है, स्वांग रखते है, वो परमात्मा को न भजते हुए संसार को भजते है।

इस प्रकार जब उन की महत्त्वबुद्धि केवल भगवान् में हो जाती है तो फिर उनका आकर्षण, श्रद्धा, विश्वास प्रेम आदि सब भगवान् में ही हो जाते हैं। भगवान् का ही आश्रय लेने से उन में समता, निर्विकारता, निःशोकता, निश्चिन्तता, निर्भयता आदि स्वतःस्वाभाविक ही आ जाते हैं। कारण कि जहाँ देव (परमात्मा) होते हैं, वहाँ दैवीसम्पत्ति स्वाभाविक ही आ जाती है।

प्रेम या भक्ति का मापदण्ड है पुरुष की अपनी प्रिय वस्तु के साथ तादात्म्य करने की क्षमता। संक्षेपत, प्रेम की परिपूर्णता इस तादात्म्य की पूर्णता में है। जब एक भक्त स्वयं यह अनुभव कर लेता है कि एक परमात्मा ही समष्टि और व्यष्टि की अन्तकरण की उपाधियों के माध्यम से मानो ईश्वर और जीव बन गया है।

परमात्मा को भजने वाले कष्ट भी परमात्मा की देन समझते है। गुरु तेगबहादुर पर औरंगजेब जब धर्म परिवर्तन कराने के लिये अत्याचार कर रहा था, तो उस ने उन्हें गर्म तवे पर बिठाया, गर्म पानी- तेल भी डाला तो गुरु के स्मरण में परमात्मा को समर्पण था कि तेरी यह क्रिया भी कितनी मीठी एवम आनंद की है। ऐसा ही उदाहरण भक्ति का मीरा एवम भक्त प्रह्लाद का भी है।

परमात्मा की विभूतियों को समझने के लिये मन-बुद्धि की अवस्था क्या हो, यह इस श्लोक से समझना होगा, जब सृष्टि की रचना परमात्मा के संकल्प से हुई, तो यह सम्पूर्ण सृष्टि उन से अलग नही है, यह पढ़ने, लिखने, देखने और करने वाला वही एक परमात्मा ही है। जब कोई कहता है कि इस संसार मे दुख क्यों है, कोई अकस्मात मृत्यु या दुर्घटना को क्यों

प्राप्त होता है, तो यह उस की विभेद दृष्टिकोण है। हरि खेलत, हरि खिलावत, हरि नाचत, हरि नचावत....। परमात्मा ने स्वयं को सम्पूर्ण जगत का पिता कहा है, उन्होंने कहा है जड़-चेतन सभी मे वह ही विद्यमान है, अतः विभूति में जिसे परमात्मा इस सर्वभूत में विद्यमान का ज्ञान होगया वहाँ अन्य कोई नही होगा, यही परब्रह्म के साथ उस का योग कहलायेगा। यही अनन्य भक्ति का समर्पण होगा।

जग ये दोउ खेलत होरी ।माया ब्रह्म बिलास करत हैं, एक से एक बरजोरी ।। माया ब्रह्म बिलास करत हैं, एक से एक बरजोरी ।।

सचिदानंद सरुप अखंडित, ब्यापक है सब ठौरी । हिये नैन से परख परी जेहि, जोति समाय रहो री ।।

जोबन जोर नैन सर मारत, ठहर सकै को कोरी । मदन प्रचंड उठै चमकारी, काया करी चित चोरी ।।

निरगुन रूप अमान अखंडित, जा में गुन बिसरो री । माया सक्ति अनंद कियो है, सबहि में अगर भरो री ।।

कारन सूछम स्थूल देंह धरि, भक्ति हेत तृन तोरी । धर्मनि बिना दरस गुरू मूरत, कस भव पार भयो री ।।

संक्षेप में बीज में वृक्ष बनने की शक्ति होती है किंतु वह वृक्ष नहीं है। परंतु जैसे ही धरती में बीज बोते है तो वह उग कर वृक्ष बनता है। इसलिए वृक्ष निर्गुण आकार में बीज में ही है और सगुण आकार में प्रकट स्वरूप में। इसलिए जगत में जो कुछ विद्यमान है वह निर्गुण आकार के बीज स्वरूप परब्रह्म से उत्पन्न हो कर सगुण है। और सगुण की निर्गुण की विभूति होती है। जिसे हम देख सकते है। बीज में शक्ति है वृक्ष होने की और वही सकती माया अर्थात विभिन्न तत्व से वृक्ष बनती है। परब्रह्म निर्गुणाकार शक्ति स्वरूप है, जब वह अपने गुणों का विस्तार करता है जो जगत का निर्माण होता है और जब वह पुनः अपने स्वरूप में आता है तो प्रलय होता है। यह संपूर्ण जगत परब्रह्म के अंश का विस्तार है, जो हम देखते है वे उस की विभूतियां है।

अब आगे भक्तों का भजन किस रीति से होता है - यह पढ़ते हैं।

।। हरि ॐ तत सत।।10.08।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.9॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

"mac-cittā mad-gata-prāṇā,
bodhayantaḥ parasparam..।
kathayantaś ca māṁ nityaṁ,
tuṣyanti ca ramanti ca"..।।

भावार्थ:

जिन मनुष्यों के चित्त मुझमें स्थिर रहते हैं और जिन्होने अपना जीवन मुझको ही समर्पित कर दिया हैं, वह भक्तजन आपस में एक दूसरे को मेरा अनुभव कराते हैं, वह भक्त मेरा ही गुणगान करते हुए निरन्तर संतुष्ट रहकर मुझमें ही आनन्द की प्राप्ति करते हैं। (९)

Meaning:

Their mind absorbed in me, their life force absorbed in me, educating each other and conversing with each other about me daily, they find contentment and delight.

Explanation:

Having described the state of avikampa yoga or the yoga of unwavering devotion, Shri Krishna now describes the state of the unwavering devotee. He says that their minds are always absorbed in contemplating Ishvara and their entire lives are submitted in extolling the virtues of Ishvara. This gives them an eternal source of joy and contentment.

The nature of the mind is to become absorbed in what it likes most. Devotees of the Lord become absorbed in remembering him because they develop deep adoration for him. His devotion becomes the basis of their life, from which they derive meaning, purpose, and the strength to live. They feel it as essential to remember God as a fish feels it essential to have water.

The Swiss are known for running their trains with near-perfect precision. If the train has to leave the platform at 9:30 am, it will leave the station not one second earlier or later. So whenever we have to board a train in Switzerland, there will never be a doubt in our mind as to whether the train will be on time or not. Our faith in the precision of their train system is unshakeable.

So thus, for a bhaktha; God vision is not at a particular time; but at all the time; and therefore maccittāḥ; their mind is always fixed on Me; they cannot lose sight of Me; and madgataprāṇāḥ; prāṇāḥ means sense organs; their sense organs also fixed on Me.

Similarly, when we our faith in Ishvara becomes firm, we do not go running towards other sources of joy in the world. We recognize that the universe operates under Ishvara's laws, and that any pleasant or unpleasant situations that we encounter are a result of our prior actions. They are not random or arbitrary. Our likes and dislikes will slowly thin down. We will take every situation as a learning experience and keep our focus on Ishvara.

Shri Krishna says that when devotees gain such a strong faith and conviction in Ishvara, they do not think about anything else. Like cricket fans who eat, sleep, breathe and talk about cricket, the devotees converse about Ishvara, educate each other about Ishvara and dedicate their mind and senses to Ishvara.

Why do they do this? They only find contentment and joy in Ishvara since they do not need to run towards material objects for happiness. They revel in Ishvara. This is the difference between an ordinary seeker and a serious seeker. An ordinary seeker is interested in Ishvara "also", whereas a serious seeker is interested in Ishvara "only".

When such tremendous devotion is poured into Ishvara, the result should be something extraordinary. What is it? This is taken up next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

प्रातः काल रघुवीर छवि चितै चतुर चित्त मेरे।

होंहि विवेक - विलोचन निर्मल सुफल सुशीतल तेरे।।

तुलसी दास जी यह पंक्तियां इस श्लोक के भाव को दर्शाती है कि भक्त को हमेशा परमात्मा के नाम, रूप, गुण एवम धाम इन सभी को हृदय में भर कर एकनिष्ठ हो कर निरंतर समर्पण भाव से स्मरण करना चाहिए। यह स्मरण समर्पण भाव से अहम एवम कामना को त्याग कर होना चाहिए।

भगवान् से ही सब उत्पन्न हुए हैं और भगवान् से ही सब की चेष्टा हो रही है अर्थात् सब के मूल में परमात्मा है - यह बात जिन को दृढ़ता से और निःसन्देहपूर्वक जँच गयी है, उन के लिये कुछ भी करना, जानना और पाना बाकी नहीं रहता। बस, उन का एक ही काम रहता है - सब प्रकार से भगवान् में ही लगे रहना। यही बात इस श्लोक में बतायी गयी है। वे मेरे में चित्तवाले हैं। एक स्वयं का भगवान् में लगना होता है और एक चित्त को भगवान् में लगाना होता है। जहाँ मैं भगवान् का हूँ ऐसे स्वयं भगवान् में लग जाता है, वहाँ चित्त, बुद्धि आदि सब स्वतः भगवान् में लग जाते हैं। कारण कि कर्ता (स्वयं) के लगनेपर करण (मन, बुद्धि आदि) अलग थोड़े ही रहेंगे वे भी लग जायँगे। करणों के लगने पर तो कर्ता अलग रह सकता है, पर कर्ता के लगने पर करण अलग नहीं रह सकते। जहाँ कर्ता रहेगा, वहीं करण भी रहेंगे। कारण कि करण कर्ता के ही अधीन होते हैं। कर्ता स्वयं जहाँ लगता है, करण भी वहीँ लगते हैं। जैसे, कोई मनुष्य परमात्म प्राप्ति के लिये सच्चे हृदय से साधक बन जाता है, तो साधन में उसका मन स्वतः लगता है।

जब मन सुगठित और एकाग्र होता है, तभी साधक उस मन के द्वारा परमात्मा का ध्यान सफलतापूर्वक कर सकता है। ध्येय से भिन्न विषय का विचार उठने पर यह एकाग्रता भंग हो जाती है। एक बार निश्चयात्मक रूप से यह जान लेने पर कि ईश्वर और जीव का वास्तविक स्वरूप एक चैतन्य आत्मा ही है, मन में किसी भी प्रकार की वृत्ति उठने पर भी सत्य के साधक को इस आत्मा का भान बनाये रखने में कोई कठिनाई नहीं होती।

भक्त के प्राण मेरे ही अर्पण हो गये हैं। प्राणों में दो बाते हैं जीना और चेष्टा। उन भक्तों का जीना भी भगवान् के ही लिये है और शरीर की सम्पूर्ण चेष्टाएँ (क्रियाएँ) भी भगवान् के लिये ही हैं। शरीर की जितनी क्रियाएँ होती हैं, उनमें प्राणों की ही मुख्यता होती है। अतः उन

भक्तों की यज्ञ अनुष्ठान आदि शास्त्रीय भजनध्यान, कथाकीर्तन आदि भगवत् सम्बन्धी खानापीना आदि शारीरिक खेती व्यापार आदि जीविका सम्बन्धी सेवा आदि सामाजिक आदिआदि जितनी क्रियाएँ होती हैं, वे सब भगवान् के लिये ही होती हैं।

जब मन, चित्त और प्राण परमात्मा को अर्पण हो गए तो मच्चित्ता एवम मदतप्राण की स्थिति हो गई। इस स्थिति में समस्त कर्म एवम चेष्टाएँ परमात्मा को ही समर्पित हो जाती है। परमात्मा के प्रति अनन्य भक्ति का आधार श्रद्धा, प्रेम और विश्वास के साथ स्मरण और समर्पण है, किन्तु यह उस के अव्यक्त स्वरूप की अपेक्षा नामरूप व्यक्त स्वरूप से ही सम्भव हो पाता है। इसलिये विभूतियां परमात्मा के व्यक्त एवम नाम रूप की द्योतक है, जिस के माध्यम से मनुष्य भक्ति मार्ग से परमात्मा में असीम प्रेम से समर्पित होता है। बिना नाम और रूप के कोई किस को भजे या मन से स्मरण करें।

अष्टावक्र जी राजा जनक से कहते हैं कि आत्मज्ञान की मुख्य बाधा मन ही है । कर्म , मोह , स्वप्न एवं जनता जडता का भाव मन से ही होता है । अतः जिसका मन गल गया है ; उसके कर्म , मोह , स्वप्न एवं जडता सब समाप्त हो गये हैं । ऐसा व्यक्ति पूर्ण चेतन तथा जागृत अवस्था में सदा स्थित रहता है । यह अवस्था अनिर्वचनीय है, जिसको कैवल्य अवस्था कहते हैं ।।

जैसे दीपक के नीचे अँधेरा रहता है, पर दो दीपक एक दूसरे के सामने रख दें तो दोनों दीपकों के नीचे का अँधेरा दूर हो जाता है। ऐसे ही जब दो भगवद्भक्त एक साथ मिलते हैं और आपसमें भगवत्सम्बन्धी बातें चल पड़ती हैं, तब किसी के मन में किसी, तरह का भगवत् सम्बन्धी विलक्षण पैदा होता है तो वह उसे प्रकट कर देता है तथा दूसरे के मन में और तरह का भाव पैदा होता है तो वह भी उसे प्रकट कर देता है। इस प्रकार आदान प्रदान होने से उन में नये नये भाव प्रकट होते रहते हैं। यह साधक कभी श्रोता तो कभी वक्ता बन कर परमात्मा की चर्चा करते रहते है, जिस से इन को संतुष्टि एवम बौद्धिक विकास भी मिलता है।

भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ आश्वासन देते हैं कि पूर्णत्व का साधक जब विचार मार्ग पर अग्रसर होता है तब उसी समय उसे सन्तोष और रमण का अनुभव होता है। सन्तोष और आनन्द से मन में ऐसा सुन्दर वातावरण निर्मित होता है? जो आध्यात्मिक प्रगति के लिए अत्यन्त अनुकूल बनकर साधक की सफलता निश्चित कर देता है। सदैव असन्तुष्ट, शोक मनाने वाले

मानसिक स्तब्धता और बौद्धिक दरिद्रता का चित्र प्रस्तुत करने वाले साधक कदापि अपने इस परम आनन्दस्वरूप में प्रवेश नहीं कर सकते हैं।

व्यवहार में लक्ष्य तय करने के बाद उस पर एकनिष्ठ हो परस्पर सहयोग एवम सहकार्य करने से मन मे आनन्द होता है, अहम का टकराव न होने से वातावरण भी आनन्दित रहता है और उद्देश्य की पूर्ति भी पारस्परिक विचारों के आदान प्रदान से अच्छे एवम सुदृढ़ पूर्ण होती है। कामना एवम अहम को त्याग कर निस्वार्थ भाव से किया हर कार्य भगवान का भजन है, विभूति है, फिर चाहे आप आफिस में बैठ कर काम करे, दुकान में माल ख़रीदे-बेचे, सीमा की सुरक्षा में लगे या अनुसंधान में, विद्यार्थी द्वारा अपने अध्ययन को करना आदि आदि यह सब परमात्मा का भजन है, उस का निरंतर स्मरण एवम समर्पण है, जरूरत है आप के प्रयास में जनहित ही, सहकार्य की, निस्वार्थ भाव की, लगन की, मेहनत की अर्थात अपनी समस्त इंद्रियाओ, प्राण से परमात्मा के कार्यो में जुड़ने की। परमात्मा का कथन है कि इस प्रकार कार्य करने से वातावरण भी रमणीय होता है और मन मे आनन्द भी। तभी भगवान ने अर्जुन से कहा था कि मुझे स्मरण कर और युद्ध कर। भजन कीर्तन ढ़ोल बजाना या गला फाड़ कर गाना ही मात्र भगवान का स्मरण नही है, यह तो एक चित्त हो कर परमात्मा के कार्य मे जुट जाना है। प्रकृति का हर कार्य जो निष्काम और लोकसंग्रह का हो, वह परमात्मा का है, इसलिये अटल विश्वास के साथ कार्य कर के जो भी, जिस प्रकार का कार्य हो उसे पूर्ण श्रद्धा एवम विश्वास के साथ स्वीकार करते हुए अपने कार्य को करते रहना। यही परमात्मा का भजन है उस को शुकराना कभी नही भूलना चाहिए। हर बौद्धिक संवाद, सांत्वना, प्रेम से बोला शब्द परमात्मा का भजन है जिस से किसी को कष्ट न देने की भावना हो और जनहित से किया हर कार्य परमात्मा का कार्य है।

इसरो परमात्मा के भजन का उदाहरण है, जहां चंद्रयान भेजने वाले अध्यक्ष सिवान पहले तिरुपति बाला जी के दर्शन करते है और मिशन चंद्रयान एक के असफल होने पर भी यही कहा गया कि अगली बार हम इस से बेहतर करेंगे। युद्ध भूमि में गीता अर्जुन को कर्म मन के विकार से मुक्त हो करते रहने के लिये सुनाई थी। जिस ने अपने चित्त और प्राण परमात्मा को समर्पित कर दिए और इस भांति के लोगो के समूह में कार्य करना शुरू किया, वहाँ असंतोष, उद्विन्ता, स्वार्थ, कामना, आसक्ति को कोई स्थान नही रहता। यही स्वस्थ समाज की निशानी भी है।

परमात्मा से जुड़ने के दो भाव है आत्मिक भाव जिस में आप परमात्मा के प्रति निस्वार्थ और निष्काम भाव से समर्पित हो कर, प्रकृति के निमित्त हो कर अपने कर्तव्य कर्म को करते है और अन्य भाव शाब्दिक भाव है जिस में आप स्वार्थ, लोभ या मोह के प्राकृतिक भाव में परमात्मा को स्मरण करते हुए अपने कर्म को करते है। दोनो ही भजन या कीर्तन करे किंतु दोनो के भाव और कर्म में अंतर है। प्रथम में कर्म फल का बंधन नहीं है और द्वितीय में कर्म फल का बंधन है। इसलिए राम मंदिर के प्राण प्रतिष्ठा में आत्मिक भाव से समर्पित सैलाब पूरे देश ने महसूस किया, वही शाब्दिक भाव का समर्पण भी कुछ लोगों से उच्च कोटि के आध्यात्मिक शब्दों में हम ने सुना। **यह आत्मिक और शाब्दिक भाव हमारा अपना है, कोई इसको जांच नही सकता और न ही उसे इस का अधिकार है। क्योंकि जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।**

भक्तों के द्वारा होने वाले भजन का प्रकार बताकर अब आगे के दो श्लोकों में भगवान् उन पर विशेष कृपा करने की क्या बात बताते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.09।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.10॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"teṣāṁ satata- yuktānāṁ,
bhajatāṁ prīti- pūrvakam..।
dadāmi buddhi-yogaṁ taṁ,
yena mām upayānti te"..।।

भावार्थ:

जो सदैव अपने मन को मुझ में स्थित रखते हैं और प्रेम-पूर्वक निरन्तर मेरा स्मरण करते हैं, उन भक्तों को मैं वह बुद्धि प्रदान करता हूँ, जिस से वह मुझ को ही प्राप्त होते हैं। (१०)

Meaning:

Those who are constantly engaged (in me) and worship with devotion, I endow them with the yoga of intellect by which they attain me.

Explanation:

Divine knowledge of God is not attained by the flight of our intellect. No matter how powerful a mental machine we may possess, we have to admit the fact that our intellect is made from the material energy. Hence, our thoughts, understanding, and wisdom are confined to the material realm; God and his divine realm remain entirely beyond the scope of our corporeal intellect.

Earlier we saw that dedicated, serious devotees of Ishvara find joy only in conversing and immersing themselves in Ishvara. Such a high degree of "preetipurvaka bhajan" or worship with joy and devotion can only yield a wonderful result. Those who display such ardent devotion as termed "sataya yuktaanam" by Shri Krishna because they are constantly connected to Ishvara. He says that Ishvara rewards such devotees with "buddhi yoga", a superior form of intellect and understanding.

The Yajur Veda states: "Without bathing oneself in the nectar emanating from the lotus feet of God, no one can know him." Thus, true knowledge of God is not a result of intellectual gymnastics but a consequence of divine grace. Shree Krishna also mentions in this verse that he does not choose the recipient of his grace in a whimsical manner. Rather, he bestows it upon those who unite their minds with him in devotion.

Typically, we would have expected Ishvara to reward his ardent devotees with material prosperity. This is a given, since we have already heard Shri Krishna say that Ishvara will carry the material burden of his devotees in the previous chapter. But that is a lower form of blessing or reward. The highest type of blessing that can be given to a devotee is not material, it is intellectual. No object, wealth, social status or possession can stand in front of the knowledge of the true nature of things.

What is the result of this intellectual understanding? It is the ability to see Ishvara in everything, and everything in Ishvara. If someone tells us that the necklace we actually had lost is around our neck, we do not have to do anything or go anywhere in order to find it. We know where to look for it. Similarly, this vision given to us by Ishvara enables us to see him everywhere and in everything. It is the vision of equanimity mentioned in the sixth chapter.

So then, what is the main obstacle that Ishvara removes with this knowledge? Shri Krishna explains in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

हमारी बुद्धि की उड़ान भगवान के दिव्य ज्ञान को नहीं पा सकती। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि हमारा मानसिक तंत्र कितना शक्तिशाली है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारी बुद्धि प्राकृत शक्ति से निर्मित है। इसलिए हमारे विचार, ज्ञान और विवेक भौतिक जगत तक ही सीमित है भगवान और उनका दिव्य संसार हमारी लौकिक बुद्धि की परिधि से पूर्णरूप से परे है। **वेदों में इसे प्रभावशाली ढंग से घोषित किया गया है। "यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।।" (केनोपनिषद्-2.3) "वे जो यह सोचते हैं कि वे भगवान को अपनी बुद्धि से समझ सकते हैं उन्हें भगवान का ज्ञान नहीं हो सकता। वे जो यह सोचते हैं कि वह उनकी समझ से परे है, केवल वही वास्तव में भगवान को जान पाते हैं।"**

बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णन है। "स एष नेति नेत्यात्मागृह्योः।" (बृहदारण्यकोपनिषद - 3.9.26) "कोई भगवान को अपनी बुद्धि के अनुसार अपने स्वयं के प्रयत्नों द्वारा कभी नहीं समझ सकता।"

रामचरितमानस में भी ऐसा वर्णन किया गया है। " राम अतय बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी ।।" "भगवान राम हमारी बुद्धि, मन और वाणी की परिधि से परे हैं।"

भगवान भाव का भूखा है इसलिये जो मनुष्य एक निष्ठ हो कर भगवान को अविचल विश्वास, श्रद्धा एवम प्रेम के समर्पित हो कर स्मरण करता है, उस का समस्त भार भी

परमात्मा ही उठाता है। इसलिए जो भक्त सतत युक्त हो कर प्रीति पूर्वक भगवान को स्मरण करता उस का योगक्षेम वहन भगवान स्वयं करते है।

जिस प्रकार कर्मयोग में एक बार निष्काम भाव से कर्म की जिज्ञासा उत्पन्न होने से परमात्मा उसे पूर्ण सिद्धि की ओर खींच लेता है वैसे ही भक्तिमार्ग में लगे मनुष्य की समत्व बुद्धि को उन्नत करने का काम भी परमात्मा ही करता है। ज्ञान की दृष्टि से अर्थात कर्म विपाक प्रक्रिया के अनुसार कहा जाता है कि यह कर्तृत्व आत्मा की स्वतंत्रता से मिलता है। पर आत्मा भी तो परमात्मा का ही अंश है, भक्ति मार्ग में भी इस फल या बुद्धि को परमेश्वर ही प्रत्येक मनुष्य को उस के पूर्व कर्मो के अनुसार देता है।

जब तक सबसे श्रेष्ठ आनन्ददायक वस्तु या लक्ष्य को नहीं पाया गया है जिसमें हमारा मन पूर्णतया रम सके, तब तक बाह्य विषयों, भावनाओं तथा विचारों के जगत् के साथ हुए तादात्म्य से हमारी सफलतापूर्वक निवृत्ति नहीं हो सकती। आनन्दस्वरूप आत्मा में ध्यानाकर्षण करने की ऐसी सार्मथ्य है और इसलिए, जिस मात्रा या सीमा तक इस आत्मस्वरूप में मन स्थित होता है, उसी मात्रा में वह दुखदायी मिथ्या बंधनों की पकड़ से मुक्त हो जाता है। इस वेदान्तिक सत्य का भगवान् श्रीकृष्ण इस वाक्य में वर्णन करते हैं। प्रीतिपूर्वक भजनेवालोंको यानी प्रेमपूर्वक मेरा भजन करनेवालों को, मैं वह बुद्धियोग देता हूँ। मेरे तत्व के यथार्थ ज्ञान का नाम बुद्धि है, उस से युक्त होना ही बुद्धियोग है। वह ऐसा बुद्धियोग मैं (उनको) देता हूँ कि जिस पूर्णज्ञानरूप बुद्धियोग से वे मुझ आत्मरूप परमेश्वर को आत्मरूप से समझ लेते हैं। वे कौन हैं जो मच्चित्ताः आदि ऊपर कहे हुए प्रकारों से मेरा भजन करते हैं।

तुलसीदास जी ने लोमेश मुनि के आशीर्वाद द्वारा यह वर्णन किया है " सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान। कामरूप इच्छा मरन ग्यान विराग निधान ।।"

भक्ति अर्थात उपासना का अर्थ है जो साधक को साध्य के पास बैठा दे। जो परमात्मा के पास आते है उनके अंदर समता आती है जिस से जन्म मरण के चक्र में वे नहीं पड़ते। अतः निष्ठा, श्रद्धा, प्रेम अविचल भगवत, भागवत एवम आचार्य पर एक समान रहनी चाहिए।

भक्त न ज्ञान चाहते हैं, न वैराग्य। जब वे पारमार्थिक ज्ञान, वैराग्य आदि भी नहीं चाहते, तो फिर सांसारिक भोग तथा अष्टसिद्धि और नवनिधि चाह ही कैसे सकते हैं उनकी दृष्टि इन वस्तुओं की तरफ जाती ही नहीं। उन के हृदय में सिद्धि आदि का कोई आदर नहीं होता, कोई मूल्य नहीं होता। वे तो केवल भगवान को अपना मानते हुए प्रेमपूर्वक स्वाभाविक ही

भगवान के भजन में लगे रहते हैं। उन का, किसी भी वस्तु, व्यक्ति आदि से किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उन का भजन, भक्ति यही है कि हरदम भगवान् में लगे रहना है। भगवान् की प्रीति में वे इतने मस्त रहते हैं कि उन के भीतर स्वप्न में भी भगवान के सिवाय अन्य किसी की इच्छा जाग्रत् नहीं होती। किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति आदि के संयोगवियोग से अन्तःकरण में कोई हलचल न हो अर्थात् संसारके पदार्थ मिलें या न मिलें, नफा हो या नुकसान हो, आदर हो या निरादर हो, स्तुति हो या निन्दा हो, स्वास्थ्य ठीक रहे या न रहे आदि तरहतरह की और एक दूसरे से विरुद्ध विभिन्न परिस्थितियाँ आनेपर भी उन में एकरूप (सम) रह सकें ऐसा बुद्धियोग अर्थात् समता मैं उन भक्तोंको देता हूँ।

व्यवहार में जो अपने कर्म को कर्तव्य भाव से करता है उस की सफलता का दायित्व परमात्मा लेता है। मनुष्य जितना अधिक अपने कर्तव्य कर्म से ऊंचा उठता है उतनी ही विन्रमता भी उस मे आती है, सम भाव भी आता है और ज्ञान भी बढ़ता है।

प्रवृति और निवृति मोक्ष के दो ही मार्ग है, प्रवृति में कर्म को निष्काम भाव से करते हुए विरक्ति अर्थात भोक्तत्व एवम कर्तृत्व भाव से मुक्त होना है और निवृति में भी भी कर्म को कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव से मुक्त हो कर करना है। इस के ध्यान, धारणा और सयंम की आवश्यकता होती है और जीव योग और अनुशासन से बुद्धि द्वारा इन्द्रिय-मन-बुद्धि को नियंत्रित कर के इसे प्राप्त करता है। भक्ति योग में श्रद्धा-प्रेम और विश्वास से जब कोई व्यक्ति परमात्मा के स्मरण करता है, तो उस के समर्पित भाव के कारण उस का कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव समाप्त होने लगता है, यह ब्रह्ममैक्य की स्थिति परमात्मा द्वारा ही ज्ञान के प्रदान करने से प्राप्त होती है। यही ज्ञान कर्मयोगी एवम सांख्य योगी भी बुद्धि के योग से प्राप्त करता ह, यही ज्ञान भक्ति योगी श्रद्धा प्रेम और विश्वास के साथ स्मरण और समर्पण से प्राप्त करता है। इस से यह स्पष्ट हो जाता है की सांख्य योग अर्थात सन्यास मार्ग, कर्मयोग अर्थात निष्काम कर्मयोग, ध्यान मार्ग अर्थात बुद्धियोग एवम श्रद्धा और प्रेम से परमात्मा के स्मरण का भक्ति मार्ग सभी एक ही परमात्मा को प्राप्त होने के विभिन्न मार्ग है। अतः सभी मार्ग अलग अलग होते हुए भी एक ही लक्ष्य को प्राप्त होते है, यह समन्वयता का ज्ञान भी गीता द्वारा हमे प्राप्त होता है।

व्यवहार में जीव अपने सांसारिक जिम्मेदारियों में उलझा है तो उस के लिए सन्यासी होना कठिन है। प्रकृति की योग माया से वह पूर्णतः निष्काम और निर्लिप्त नहीं हो पाता किंतु

परमात्मा को निरंतर स्मरण करते रहने से उस के अंदर वैराग्य का भाव बनना शुरू हो ही जाता है। यदि यह भाव सतत और प्रीति पूर्वक हो, भाव के भूखे भगवान से कृपा कभी भी किसी भी स्वरूप में बरस सकती है, इसलिए जुड़े रहना ही आवश्यक तत्व है।

ज्ञान द्वारा परमात्मा अपने भक्त पर किस प्रकार अनुग्रह करते है, यह अगले श्लोक में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.10।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.1 1॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

"teṣām evānukampārtham,
aham ajñāna-jaṁ tamaḥ..।
nāśayāmy ātma-bhāva-stho,
jñāna-dīpena bhāsvatā"..।।

भावार्थ:

हे अर्जुन! उन भक्तों पर विशेष कृपा करने के लिये उनके हृदय में स्थित आत्मा के द्वारा उनके अज्ञान रूपी अंधकार को ज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश से दूर करता हूँ। (११)

Meaning:

For those, only out of compassion, I dispel darkness residing in their hearts, born of ignorance, by lighting the brilliant lamp of knowledge.

Explanation:

Shri Krishna paints a beautiful picture to illustrate Ishvara's grace that was explained in the previous shloka. Like a lamp that is lit to dispel darkness, Ishvara, out of sheer compassion, ignites the yoga of intellect which removes ignorance from the hearts of serious devotees.

The renowned Shankaracharya has elaborated upon this illustration in his Gita commentary. His illustration is comprised of the lamp with a lamp holder, wick, and oil. The lamp holder is the quality of vairagya or dispassion, the wick is brahmacharya or continence and the oil is prasaada buddhi or the willingness to accept everything in life as Ishvara's blessing. The lamp is nourished by a gentle breeze in the form of constant devotion to Ishvara but can be extinguished by an impure mind containing strong likes and dislikes. If the physics teacher has to light the lamp of physics knowledge, there is only one method; consistent, systematic teaching and for student to do active listening, thinking and implementing i.e. shrawan, Manan and nididhyaasan.

At present, our senses, mind, and intellect are all material, while God is divine. Hence, we are unable to see him, hear him, know him, or be united with him. When God bestows his grace, he confers his divine Yogmaya energy upon the soul. It is also called śhuddha sattva (divine mode of goodness), which is distinct from the sattva guṇa (mode of goodness) of Maya. When we receive that śhuddha sattva energy, our sense, mind, and intellect become divine. To put it simply, by his grace, God bestows his divine senses, divine mind, and divine intellect to the soul. Equipped with these divine instruments, the soul is able to see God, hear God, know God, and be united with God. Hence, the Vedānt Darśhan states: "Only by God's grace does one gain divine knowledge."

With these two shlokas, Shri Krishna summarizes the path of the bhakti marga or devotional means to attain Ishvara. In bhakti, Ishvara's grace is emphasized rather than individual effort. In the Indian tradition this is pictorially depicted by comparing a monkey with a cat. In "markatanyaaya", the method of the monkey, a baby monkey has to hang on to its mother

with its own effort. But in “marjalanyaaya”, the method of the cat, a kitten does not have to do anything because its mother holds her by its neck.

Likewise, Ishvara takes care of his devotees. He will ensure that their material needs are taken care of. But more importantly, he will ensure that all our ignorance is destroyed and that we are educated spiritually. This is in contrast with other paths to Ishvara that require significant self effort. There is no need to roll any beads or sit in any postures. All that is required is surrender.

With these words, Shri Krishna stopped speaking and Arjuna, excited by the topic, started praising him.

।। हिंदी समीक्षा ।।

उन भक्तों के हृदय में कुछ भी सांसारिक इच्छा नहीं होती। इतना ही नहीं, उन के भीतर मुझे छोड़ कर मुक्ति तक की भी इच्छा नहीं होती। अभिप्राय है कि वे न तो सांसारिक चीजें चाहते हैं और न पारमार्थिक चीजें (मुक्ति, तत्त्वबोध आदि) ही चाहते हैं। वे तो केवल प्रेम से मेरा भजन ही करते हैं। उन के इस निष्कामभाव और प्रेमपूर्वक भजन करने को देख कर मेरा हृदय द्रवित हो जाता है। मैं चाहता हूँ कि मेरे द्वारा उन की कुछ सेवा बन जाय, वे मेरे से कुछ ले लें। परन्तु वे मेरे से कुछ लेते नहीं तो द्रवित हृदय होने के कारण केवल उन पर कृपा करने के लिये कृपा परवश हो कर मैं उन के अज्ञानजन्य अन्धकार को दूर कर देता हूँ। मेरे द्रवित हृदय होने का कारण यह है कि मेरे भक्तों में किसी प्रकार की किञ्चिन्मात्र भी कमी न रहे।

ज्ञानी मनुष्य का सामर्थ्य धारण, ध्यान और समाधि तक और श्रद्धा, विश्वास और प्रेम से स्मरण और समर्पित भक्त के सामर्थ्य भक्ति अपने को भगवान के प्रति बिना किसी कामना और आसक्ति से समर्पण तक है। अतः परमात्मा का ज्ञान उसे ही होता है, जिस पर परमात्मा की कृपा हो। किन्तु ज्ञानी अपने इन्द्रिय- मन- बुद्धि से वेद और शास्त्रों के अध्ययन और योग एवम समाधि से अपने को उस उच्च स्तर तक ले जाता है जहां वह ब्रह्म के जान सके। किन्तु यह सभी के लिये संभव नही, अतः भक्त अपने अनुशासन से अपनी कामना, आसक्ति और अहम को परमात्मा में प्रेम, श्रद्धा और विश्वास के साथ समर्पित कर देता है कि उसे मोक्ष की भी कामना नही रहती तो उस की मुक्ति के भार

परमात्मा उठाता है और उस के अज्ञान को दूर कर के उसे प्रकाशवान बना देता है। प्रत्येक जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है। प्रकृति के संयोग से भ्रमित ही कर कर्ता भाव एवम भोक्ता भाव मे रहता है। अतः प्रकाशवान यदि किसी वस्तु , धूल, मिट्टी से ढक जाए तो उस के इस अज्ञान को हटाना मात्र ही ज्ञान है। जब अर्जुन ने भगवान के दिव्य स्वरूप के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की थी तब भी भगवान ने कहा कि प्रकृति की दृष्टि से तुम मुझे नही देख सकते, इस के लिये मैं तुम्हे दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ। इसलिये प्रकृति द्वारा प्रदत्त इंद्रिया, मन एवम बुद्धि में परमात्मा को देख पाना या समझ पाना संम्भव नही यह तो तभी संभव है जब परमात्मा स्वयं कृपा कर के ज्ञान दे और दर्शन दे।

प्रकाशमान ज्ञान दीपक के द्वारा उन प्राणियों के अज्ञानजन्य अन्धकार का नाश कर देता हूँ। तात्पर्य है कि जिस अज्ञान के कारण मैं कौन हूँ और मेरा स्वरूप क्या है ऐसा जो अनजानपना रहता है, उस अज्ञान का मैं नाश कर देता हूँ अर्थात् तत्त्वबोध करा देता हूँ। जिस तत्त्वबोध की महिमा शास्त्रों में गायी गयी है, उस के लिये उन को श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि साधन नहीं करने पड़ते, कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता, प्रत्युत मैं स्वयं उनको तत्त्वबोध करा देता हूँ।

कभी कभी कोई वस्तु विद्यमान होते हुए भी हमारी दृष्टि के लिए आच्छादित रहती है, क्योंकि उसे देखने के लिए कुछ अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। ध्वनि सुनने के लिए उस में आवश्यक स्पन्दन होने चाहिए तथा यह भी आवश्यक है कि वे ध्वनि तरंगे हमारे कानों तक पहुँचे। इसी प्रकार, अपेक्षित प्रकाश के अभाव में वस्तु के समक्ष होने पर भी उस का नेत्रों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। यदि हम अन्धकार में मेज पर पड़ी अपना कुंजी (चाभी) को टटोल कर खोज रहे हों और उसी समय कोई व्यक्ति स्विच दबाकर कमरे को प्रकाशित कर देता है, तो हमें अपनी कुंजी दिखाई पड़ती है। हम कह सकते हैं कि उस व्यक्ति के इस दयापूर्ण कार्य ने हमें कुंजी की प्राप्ति करायी, परन्तु यह कहना सर्वथा असंगत होगा कि प्रकाश ने उस कुंजी को उत्पन्न किया।इस दृष्टान्त के द्वारा वेदान्त में यह ज्ञान कराया जाता है कि आत्मा तो सदा हमारे हृदय में ही विद्यमान है, किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण यथार्थ अनुभव के लिए उपलब्ध नहीं है। उन प्रतिकूल तत्त्वों की निवृत्ति होने पर वह आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप से अनुभव किया जा सकता है। आत्मा को आच्छादित करने वाला वह आवरण है अज्ञानजनित अंधकार। स्मरण रहे कि इस अज्ञान अवस्था में भी आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप से विद्यमान रहता है, परन्तु हमारे साक्षात् अनुभव के लिए उपलब्ध नहीं होता। जो साधक बुद्धियोग में दृढ़ स्थिति प्राप्त कर लेते हैं,

वे आत्मा के अपरोक्ष ज्ञान के पात्र बन जाते हैं। बुद्धियोग की साधना अवस्था में ध्याता और ध्येय में भेद होता है, जिसे सविकल्प समाधि कहते हैं। इस श्लोक में यह कहा गया है कि इस सविकल्प अवस्था से वह साधक, मानो किसी ईश्वरीय कृपा से पूर्ण निर्विकल्प समाधि की स्थिति में स्थानान्तरित किया जाता है। वस्तुत, सविकल्प समाधि की स्थिति तक ही साधक अपने पुरुषार्थ के द्वारा पहुँच सकता है। यह बुद्धियोग भी मानो किसी अन्य स्थान से प्राप्त होता है, तात्पर्य यह है कि वह कोई सावधानीपूर्वक किये गये किसी प्रयत्न का फल नहीं, वरन् सहज स्वाभाविक आंशिक दैवी प्रेरणा है। अहंकार और शुद्ध आत्मा के मध्य का सघन कुहासा जब विरल हो जाता है, तब इस दैवी प्रेरणा का अनुभव होता है। जब यह कोहरा पूर्णतया नष्ट हो जाता है, तब पूर्ण आत्म साक्षात्कार अपने स्वयंप्रकाश स्वरूप में होता है।एक अन्धेरे कमरे में मेज पर रेडियम के डायल की एक घड़ी रखी हुई है, जिस पर कागज, पुस्तक आदि पड़े हुए होने से वह दिखाई नहीं देती। जब कोई व्यक्ति अन्धेरे में ही उसे खोजता हुआ उन कागजों को हटा देता है, तो वह घड़ी स्वयं ही चमकती हुई दिखाई पड़ती है। उसकी चमक ही उसकी परिचायक होती है। सनातन सत्य भी अज्ञान से आवृत्त हुआ अभाव रूप प्रतीत हो सकता है, किन्तु अज्ञान की निवृत्ति होने पर, वह स्वयं अपने प्रकाश से ही प्रकाशित होता है, और उसे जानने के लिए अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती। जब अज्ञान का अन्धकार, प्रकाशमय ज्ञान के दीपक से नष्ट हो जाता है तब आत्मा अपने एकमेव अद्वितीय, सर्वव्यापी और परिपूर्ण स्वरूप में स्वत प्रकट होता है। अपने भक्तों के हृदय में स्थित स्वयं भगवान् इस आत्मा के प्रकटीकरण की क्रिया को उनके ऊपर अनुग्रह करने के भाव से सम्पन्न करते हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि यह अनुग्रह स्वयं के ऊपर ही है। जब मैं चलतेचलते थक जाता हूँ तब मैं किसी स्थान पर बैठ जाता हूँ केवल अपने ही प्रति अनुकम्पा के कारण। इस अनुकम्पा के लिए उचित मूल्य चुकाये बिना साधक को सीधे ही इस की प्राप्ति नहीं हो सकती। दिन के समय, मेरे कमरे की खिड़कियां खोल देने पर, सूर्य प्रकाश अनुकम्पावशात् मेरे लिए कमरे को प्रकाशित करता है। जैसा कि हम जानते हैं कि जब तक वे खिड़कियां खुली रहती हैं, तब तक सूर्य को यह स्वतन्त्रता नहीं है कि वह अपनी दया का द्वार बन्द कर ले। उसी प्रकार उसकी दया तब तक प्रकट भी नहीं होगी, जब तक मैं अपने कमरे की खिड़कियां नहीं खोल देता हूँ। संक्षेपत, सूर्य प्रकाश का आह्वान उसी क्षण होता है, जब उसके मार्ग का अवरोधक दूर हो जाता है।इसी प्रकार, प्रारम्भिक साधनाओं के अभ्यास से साधक बुद्धियोग का पात्र बनता है। तत्पश्चात् इस के निरन्तर प्रयत्नपूर्वक किये गये अभ्यास से वह अज्ञान तथा तज्जनित विक्षेपों के आवरण को सर्वथा नष्ट कर देता है। तत्काल ही आत्मा अपने स्वयं के प्रकाश में ही प्रकाश स्वरूप से प्रकाशित होता है। मेघों

को चीरकर जाती हुई विद्युत् को देखने के लिए किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती।

जीवन के सर्वोच्च व्यवसाय अथवा लक्ष्य चित्तशुद्धि और आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति के लिए दिये गये उपदेश का खण्ड यहाँ पर समाप्त हो जाता है, तथापि अर्जुन को इससे सन्तोष नहीं होता और इसलिए वह अपनी शंका को व्यक्त करते हुए भगवान् से सहायता के लिए अनुरोध करता है, जिससे कि साक्षात् अनुभव के द्वारा वह स्वयं सत्य की पुष्टि कर सके।भगवान् के मुख से उनकी विभूति और योग के विषय में श्रवण कर, अर्जुन अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है। इसे हम अब हम आगे पढ़ते है।

।।हरि ॐ तत सत।। 10.11।।

।। प्रेम और भक्ति ।। विशेष - गीता 10.11 ।।

इन दो श्लोक 10.10 और 10.11 में ह्रदय में भरे प्रेम की पराकाष्ठा है। जिस श्रद्धा एवम विश्वास के साथ भक्त परमात्मा की समर्पित भाव से भजते है उसे ही प्रेम कहते है। जहां कुछ पाना नही है, कुछ चाहना या कामना नहीं। बस स्मरण एवम समर्पण।

अगर भक्ति संसारिक वस्तुओं की इच्छा के लिए की जा रही हो तो वो भक्ति ही नहीं है| वो तो एक व्यापार है। लेकिन अगर भक्ति प्रभु प्रेम के लिए की जा रही हो तो वो सर्वोत्तम है। जब भक्ति में प्रेमरस सम्मिलित होता है तभी वो परिपूर्ण होती है। अगर मन में प्रभु के लिये प्रेम है तो हमारे कदम अपने आप ही भक्ति मार्ग की ओर बढ़ जाते हैं । इसलिए सच्ची भक्ति और प्रेम का सीधा सम्बन्ध है।

भक्ति अगर प्रेम रहित हो तो वो भक्ति नहीं समय व्यतीत करने का एकमात्र जरिया बन जाता है। ध्रुव ने भक्ति की तो प्रभु को सामने देखकर कुछ मांगने की आवश्यकता ही नहीं रह गयी। प्रभु को देखकर वो जिस उद्देश्य से भक्ति करने चला था वो ही भूल गया । केवल प्रभु प्रेम की लालसा मन मैं रह गयी थी। भक्ति और प्रेम मिलकर ज्ञान उत्पन्न करती है और जन्म मरण रुपी सांसारिक चक्र से मुक्ति दिलाती है।

कबीर जी ने भी कहा है - प्रेम प्रेम सब कोई कहे ,प्रेम न चिन्हे कोई, जा मार्ग हरी जी मिले,प्रेम कहाये सोइ।

भक्ति प्रेम की चरम सीमा है। 'सा त्वस्मिन परम प्रेम रूपा' -अवतार के लिए परम प्रेम ही भक्ति है। आप भगवान पे अधिकार नहीं कर सकते। साधारण प्रेम सम्बन्धों में आप किसी से प्यार करते हो और बदले में वैसा ही चाहते हो। आप भगवान पर अधिकार का दावा नहीं कर सकते। उस अनंत चेतना के लिए प्रेम भक्ति है।

संत नारद कहते है,"योग चित्त वृत्ति निरोध" अर्थात योग का मतलब है जो आपके मन की प्रवृतियों को शांत करे। 'तथा द्रश्तु स्वरूपे अवस्तनम 'अर्थात योग व्यक्ति का वह कौशल है जिस से वह दृश्य की बजाय द्रष्टा में स्थिर रहता है' - भीतर गहरे जा कर द्रष्टा में स्थिर रहना। ऐसे विचार से ध्यान लगने लगता है। तब समाधि आरम्भ होती है। आप का मन पूरी तरह से शांत हो जाता है। एक क्षण के लिए आप पूरी तरह अस्तित्वहीन और शून्यता का अनुभव करते हो।

आत्मा वैसे तो निराकार और स्वतंत्र बंधन मुक्त ही है, किंतु मन के कारण वह आबद्ध हो जाती है। भगवान तो मृत्यु के पूर्व ही मुक्ति देते हैं, प्रभु प्रेम में ह्रदय का द्रवित होना ही तो मुक्ति है। प्रभु प्रेम में संसार को भूलना ही तो मुक्ति है, मन मरा की मुक्ति मिल गई। मृत्यु के बाद ही नहीं मृत्यु के पूर्व भी मुक्ति मिल सकती है, जो मृत्यु के पहले ही मुक्ति नहीं पा सकता है, उसे मृत्यु के बाद मुक्ति मिलना बड़ा कठिन है।

जब भगवान् के नाम, रूप, लीला का स्मरण होते ही आँखों से अश्रुपात तथा शरीर में रोमांच होने लगे, वाणी गदगद हो जाये, कंठ अवरुद्ध हो जाये तो उसे प्रेम की दशा समझनी चाहिए ।।

ऐसे प्रेमी भक्तों को (उन के न चाहने पर भी और उन के लिये कुछ भी बाकी न रहने पर भी) भगवान् समता और तत्त्वबोध देते हैं। यह सब देने पर भी भगवान् उन भक्तों के ऋणी ही बने रहते हैं। भागवत में भगवान् ने गोपियों के लिये कहा है कि मेरे साथ सर्वथा निर्दोष (अनिन्द्य) सम्बन्ध जोड़नेवाली गोपियों का मेरे पर जो एहसान है, ऋण है, उसको मैं देवताओं के समान लम्बी आयु पाकर भी नहीं चुका सकता। कारण कि बड़े बड़े ऋषिमुनि, त्यागी आदि भी घर की जिस अपनापन रूप की बेड़ियों को सुगमता से नहीं तोड़ पाते, उन को उन्होंने तोड़ डाला है । भक्त भगवान् के भजन में इतने तल्लीन रहते हैं कि उन को यह पता ही नहीं रहता कि हमारे में समता आयी है, हमें स्वरूप का बोध हुआ है। अगर कभी पता लग भी जाता है तो वे आश्चर्य करते हैं कि ये समता और बोध कहाँ से आये वे अपन में कोई विशेषता न दीखे इस के लिये भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे नाथ आप समता,

बोध ही नहीं, दुनियाके उद्धार का अधिकार भी दे दें, तो भी मेरे को कुछ मालूम नहीं होना चाहिये कि मेरे में यह विशेषता है मैं केवल आप के भजन चिन्तन में ही लगा रहूँ।

राधा इस प्रेम का प्रतीक है, परमात्मा उस के ऋणी है, इसलिये परमात्मा के नाम से ज्यादा राधा का स्मरण किया जाता।

प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, स्मरण और समर्पण ऐसे दैवीय गुण जब प्राकृतिक व्यक्ति से जुड़ जाते है तो मानवीय कमजोरियों काम, वासना, लोभ, स्वार्थ, राग के कारण मलीन हो जाते है। माँ की ममता चाहे अत्यंत उच्च कोटि की हो, किन्तु वह उस के जन्मे शिशु के प्रति ही होती है, पति-पत्नी का प्रेम कितना भी समर्पित भाव का हो, वह शारीरिक आवश्यकताओं से जुड़ा होता है। मित्र का प्रेम, देश का प्रेम, समाज और धर्म के प्रति प्रेम किसी न किसी सामाजिक दायित्व या कारण से जुड़ा होता है, जिस के कारण जैसे ही वह कारण समाप्त होता है, प्रेम भी समाप्त हो जाता है।

आज के युग में जब प्रेम को मनुष्य के प्रेम से देखा जाता है तो कृष्ण और राधा के ऐसे अनेक चित्रण सामने आते है, जो परमात्मा के प्रति प्रेम, श्रद्धा और विश्वास का प्रतीक नही हो सकते। मानवीय प्रेम से ओत-प्रोत हो कर जब भजन या कीर्तन होता है, वह शुद्ध, सात्विक एवम आत्मीय न हो कर कुछ न कुछ मात्रा में प्राकृतिक ही होता है।

पति के रूप में मीरा का कृष्ण के प्रति प्रेम, राधा एवम गोपियों के रूप में कृष्ण के प्रति प्रेम, कीर्तन-भजन में नाम स्मरण के रूप में चैतन्य महाप्रभु और सूरदास का प्रेम, स्वामी के रूप में हनुमान जी का प्रेम, सखा के रूप में अर्जुन का प्रेम आदि ऐसे अनेक उदाहरण है, जिस में प्रत्युत्तर में किसी को किसी भी प्रकार की कोई कामना या इच्छा नही थी। यह प्रेम अहम से ऊपर, सुध-बुध खो देने की सीमा तक था। कोई अपना आस्तित्व ही नही। यही समर्पण की वह सीमा है, जहां परमात्मा को विवश हो कर अपने जीव का योगक्षेम वहन भी करना पड़ता है और उस को बुद्धि एवम ज्ञान से प्रकाशित भी करना पड़ता है। वह भक्त परमात्मा में लीन होने का अधिकारी एवम ज्ञान योग में कठिन योगाभ्यास, धारणा, ध्यान और समाधि से प्राप्त ब्रह्मसन्ध के बराबर का ज्ञानी हो जाता है।

कुछ लोगो ने इस प्रेम को नर और नारी के प्रेम से जोड़ने की चेष्ठा की है किंतु यह प्रेम वो है ही नही। जीव परमात्मा का अंश है और परमात्मा का अंश जब पूर्ण परमात्मा स्वरूप हो, निश्छल, बुद्धियुक्त या समभाव तो उस का गुण ही है, यही प्रेम है। जो राधा के प्रेम को नर-नारी के स्वरूप में देखते है वो स्वयं विभेद में है। यही इन दो श्लोक में प्रेम का सार है।

प्रेम आत्मिक बिना को रिश्ता बनाये निस्वार्थ और समर्पण का नाम है, यही जब सांसारिक हो तो योगमाया है, जो सांसारिक प्रेम में परमात्मा को खोजते है, वह योगमाया से प्रभावित लोग है।

जब मन मे छल-कपट, लोभ- स्वार्थ, काम- क्रोध आदि भी हो, किन्तु इन के प्रति वितृष्णा उत्पन्न होने मात्र से, कोई यदि भजन- कीर्तन, नाम जप आदि शुरू कर देता है, तो परमात्मा अनुकंपा कर के उस का योगक्षेम वहन करते है और शनैः शनैः उस के हृदय से आसुरी वृतियों को नष्ट भी करते हुए उस को ज्ञान देते है, अंगुलीमार और बाल्मीकि इस के उदाहरण है। किंतु जब कोई कपट को धारण कर के भक्ति करता है तो उस की मुक्ति के लिये परमात्मा ही उसे वह मार्ग दिखाते है, जिस से वह अपनी आसुरी वृतियों में सफल न हो सके।

भक्तियोग के इस मार्ग को गीता में सम्मलित करने का अभिप्राय यही है कि कर्म करते हुए भी हम अपने अहम, कामना और आसक्ति से दूर हो कर परमात्मा द्वारा निर्देशित कर्म को समझकर करे। भक्ति योग कही पर भी कर्म को न करने के लिये प्रेरित नही करता, इसलिये अर्जुन के युद्ध से विमुख हो कर सन्यास लेने की बात को, भक्ति योग से भी सन्यास की भांति समर्पित हो कर कर्म करने के प्रेरित किया गया है और अर्जुन को अपने स्वजनों से प्रेम था, उस का यही प्रेम, यानी मोह, कर्तव्य पालन करने में, उस की कमजोरी बन कर उभरा। प्रेम का सही स्वरुप अर्थात मानवीय और आध्यात्मिक मोह को भक्तियोग द्वारा यही बताया गया है, कि प्रेम कर्तव्य पालन में कमजोरी का नाम नही है, यह कमजोरी तभी है जब स्वार्थ, कामना और आसक्ति के साथ हो, निस्वार्थ प्रेम परमात्मा भी स्वीकार करता है। वह भक्त को ज्ञान से प्रकाशित करता है, जिस से वह अपने कर्मो को सहज रूप से भोग सके और आगे निष्काम कर्म करता हुआ, कर्मफलों से मुक्त हो कर मोक्ष को प्राप्त हो। यही भक्तियोग में प्रेम है। जीव और परमात्मा का आपसी संबंध भी यही है। यही जन सामान्य के लिये मुक्ति का मार्ग है।

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता विशेष 10.11 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.12॥

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।

पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥

"arjuna uvāca,
paraṁ brahma paraṁ dhāma,
pavitraṁ paramaṁ bhavān..।
puruṣaṁ śāśvataṁ divyam,
ādi-devam ajaṁ vibhum"..।।

भावार्थ:

अर्जुन ने कहा - हे कृष्ण! आप परमेश्वर हैं, आप परब्रह्म हैं, आप परम-आश्रय दाता हैं, आप परम-शुद्ध चेतना हैं, आप शाश्वत-पुरुष हैं, आप दिव्य हैं, आप अजन्मा हैं, आप समस्त देवताओं के भी आदिदेव और आप ही सर्वत्र व्याप्त हैं। (१२)

Meaning:

Arjuna said:

You are the supreme absolute, the supreme abode, supremely pure. You are the divine eternal person, the original deity who is beyond birth, all-pervading.

Explanation:

Over the course of the previous chapters and last four verses, Arjun is convinced entirely about the supreme position of Shree Krishna and emphatically vents the deep conviction and understands that Shri Krishna as an avatara, a divine manifestation of Ishvara. He now feels within himself the real nature of Ishvara. When great authorities testify knowledge, its credibility gets established. The great saints are the authorities for spiritual knowledge. Thus, Arjun quotes the saints who have proclaimed Shree Krishna as the Supreme Divine Personality and the cause of all causes.

Arjuna spoke of Ishvara as “parama brahman” which is the absolute reality, the eternal essence that was spoken of in the second chapter. He understood that Ishvara’s real nature is beyond time and space, it is that

which is the support of time and space. Ishvara is"parama dhaaman", the supreme goal, the ultimate abode of all beings. Ishvara is also the supreme purifier, as he destroys all traces of impurities in the form of ignorance.

The word "purusha" literally means, one who fills the body. Ishvara is the "divyam shaashvatam purusha", the divine eternal person who comprises the entire universe, just like all of the cells in our body are termed as "body" in aggregate. Ishvara is divine because he is beyond the realm of impermanence caused by maaya. He is "ajam", beyond birth, but is the cause of everyone else's birth. He is "vibhum" which is all-pervading, he alone appears as everything.

Like the Vishnu Sahasranaam that enumerates a thousand names of Ishvara, this shloka can be used as a prayer to meditate upon Ishvara's glories. Now, did only Arjuna think that this was the real nature of Ishvara or did others as well? Arjuna takes this up in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यह श्लोक युग्म श्लोक है, अतः अगले श्लोक के साथ पूर्ण होगा। परमात्मा द्वारा बताई गई विभूति को और योग के अभी तक के ज्ञान को सुनकर अर्जुन पुर्णतयः प्रभावित और कृष्ण के प्रति समर्पित हो कर उसे ही सगुण ब्रह्म के रूप में स्वीकार करते हुए, बोलते है, "आप परम ब्रह्म परमात्मा, परमधाम, परमतेज और परमपावन हैं तथा आप नित्य और दिव्य पुरुष हैं अर्थात् देवलोक में रहनेवाले अलौकिक पुरुष हैं एवं आप सब देवों से पहले होनेवाले आदिदेव, अजन्मा और व्यापक हैं।"

श्रुति ब्रह्म के विषय मे कहती है "जिस में ये प्राणी उत्पन्न होते है उत्पन्न हो कर जीवन धारण करते है और मर कर जिस में लय होते है- उस को जानने की इच्छा करो, वह ही ब्रह्म है। स्मृति कहती है कि आप अपने तेज से अंधकार को नष्ट कर देते है। आप का तेज इतना है कि सहस्त्र सूर्य एक साथ उदित हो, तो भी आप के समान प्रकाश शायद ही हो"

अर्जुन वैदिक साहित्य और शास्त्र ज्ञान से शाब्दिक भाव में परिचित था। वह यहाँ कहता है कि प्राचीन ऋषियों ने अनन्त सनातन सत्य को जिन शब्दों के द्वारा सूचित किया है, उससे

वह परिचित है, जैसे परं ब्रह्म, परं धाम, परम पवित्र आदि। परन्तु उस ने अब तक यही समझा था कि ये सब परम सत्य के गुण हैं। इसलिए, जब वह भगवान् को इन्हीं शब्दों का प्रयोग स्वयं के लिए करते हुए सुनता है, तब वह कुन्तीपुत्र आश्चर्यचकित रह जाता है। उसे समझ में नहीं आता कि वह अपने रथ सारथि श्रीकृष्ण को विश्व के आदिकारण के रूप में किस प्रकार जाने व्यावहारिक बुद्धि का व्यक्ति होने के नाते अर्जुन को श्रीकृष्ण के स्वरूप को समझने के लिए अधिक तथ्यों की जानकारी की आवश्यकता थी। किन्तु अपना मित्र, सखा और रिश्तेदार समझने वाले कृष्ण का यह स्वरूप उस के लिये अत्यंत आश्चर्य चकित करने वाला था। उस की भावना कृष्ण के प्रति बदल कर आदर और सम्मान की हो गई थी और उस की उत्सुकता भगवान श्री कृष्ण के वास्तविक सगुण से निर्गुण निराकार स्वरूप को समझने और जानने की बढ़ गई थी।

हम देखेंगे कि उस की मांग को पूर्ण करने हेतु इसी अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने परब्रह्म के स्वरूप और विभूतियो की पर्याप्त सूचनाएं और तथ्य प्रस्तुत किये हैं। परन्तु, अर्जुन को सन्तुष्ट करने के स्थान पर वह जानकारी उस की उत्सुकता को द्विगुणित कर देती है और वह बाध्य होकर भगवान् से उन के विश्वरूप को दिखाने की मांग आगे प्रस्तुत करता है भक्तवत्सल करुणासागर भगवान् श्रीकृष्ण अगले अध्याय में अपने विश्वरूप को दर्शाकर अर्जुन को कृतार्थ कर देते हैं।

यद्यपि अर्जुन ने इस के पूर्व भी परम पुरुष आदि शब्दों को ऋषियों से सुना था, किन्तु उसे वे अर्थहीन और निष्प्रयोजन ही प्रतीत हुए थे। उसका आश्चर्य इन शब्दों में स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है कि आप भी मेरे प्रति ऐसा ही कहते हैं। यहाँ उनके कुछ आश्चर्यचकित एवं भ्रमित होने का अवसर इसलिए था कि वह समझ नहीं पाया कि उस के समकालीन श्रीकृष्ण जो उसके समक्ष खड़े थे, जिन्हें वह कई वर्षों से जानता था और जो उसके सम्बन्धी भी थे किस प्रकार अनन्त, परम, जन्मरहित और सर्वव्यापी हो सकते हैं। अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण को अपने चर्म चक्षुओं से देखता है और इसलिए उसे उनका केवल शरीर ही दिखाई देता है। सम्पूर्ण गीता में श्रीकृष्ण स्वयं को आत्मस्वरूप में ही प्रकट करते हैं और न कि समाज के एक सदस्य के रूप में। गीता के उपदेष्टा श्रीकृष्ण परमात्मा हैं, वसुदेव के पुत्र या गोपियों के प्रियतम नहीं। श्रीकृष्ण को सदैव मित्र या प्रेमी अथवा एक विश्वसनीय बुद्धिमान्, कूटनीतिज्ञ के रूप में देखते रहने से अर्जुन आत्मस्वरूप श्रीकृष्ण को पहचान नहीं पाया। यही उसके आश्चर्य और भ्रम का कारण था।

व्यावहारीरिक दृष्टिकोण से जब तक हम किसी से मिल कर बात चीत नही करते, हमे उस व्यक्ति की शख्सियत नही मालूम होती। हम उस व्यक्ति के बारे में सुनी सुनाई धारण ले कर चलते है। जो व्यक्ति ज्ञान की गहराई तक गहरा है वो सहज हर व्यक्ति को ज्ञान नही देता जब तक सुनने वाला उस को श्रद्धा एवम प्रेम से न सुने।

किसी समर्थ और महान व्यक्तित्व की स्तुति करने से सहज एक आत्मज्ञान की उपलब्धि होती है, जो हमारे मनोबल को बढ़ाने में सहायक होती है। परमात्मा की स्तुति करने का प्रयोजन यही है कि हम अपने उस ब्रह्म स्वरूप को पहचाने जिस के हम अंश है और अपने व्यक्तित्व को और ऊपर उठाएं।

आगे के श्लोक से अर्जुन परमात्मा के रूप में कृष्ण को देखना शुरू कर देता है इसलिये अब उस की भाषा एवम अहम मित्र, सखा, गुरु या रिश्तेदार की भाषा मे न हो कर परमात्मा की स्तुति की भाषा मे परिवर्तित हो गई। यह समर्पण और भक्ति की भाषा है। जिसे हम आगे पढ़ेगे एवम फिर परमात्मा की विभिन्न विभूतियों को जानेंगे।

तुलसीदास जी यह पंक्तियां " हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मै जाना।।" परमात्मा के भक्ति मार्ग की पराकाष्ठा को बतलाती है। क्योंकि यह युग्म श्लोक है, अतः स्तुति में अर्जुन आगे क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.12।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.13॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥

"āhus tvām ṛṣayaḥ sarve,
devarṣir nāradas tathā..।
asito devalo vyāsaḥ,
svayaṁ caiva bravīṣi me"..।।

भावार्थ:

हे कृष्ण! जो अब आप स्वयं मुझे बता रहे हैं यह तो सभी ऋषिगण असित, देवल और व्यास तथा देवर्षि नारद भी कहते हैं। (१३)

Meaning:

All the great sages and royal sages such as Naarada, Asita, Devala and Vyaasa speak this, and also you have said it to me.

Explanation:

Further praising Ishvara, Arjuna added that several eminent individuals, over the course of history, have also praised Ishvara.

The great saints are the authorities for spiritual knowledge and Rishi means a gyaani one who has great knowledge of his subject. Thus, Arjun quotes the saints, such as **Narad, Asit, Deval, and Vyas**, who have proclaimed Shree Krishna as the Supreme Divine Personality and the cause of all causes. In the Bheeshma Parva of the Mahabharat, there is a poem in which many sages eulogize Shree Krishna.

Sage Narad says: “Shree Krishna is the creator of all the worlds and the knower of all feelings. He is the Lord of the celestial gods, who administer the universe.” (Verse 68.2)

Sage Markandeya states: “Lord Krishna is the goal of all religious sacrifices and the essence of austerities. He is the present, past, and future of everything.” (Verse 68.3)

Sage Bhrigu says: “He is the God of gods and the first original form of Lord Vishnu.” (Verse 68.4)

Sage Ved Vyas states: “O Lord Krishna, You are the Lord of the Vasus. You have conferred power on Indra and the other celestial gods.” (Verse 68.5)

Sage Angira says: “Lord Krishna is the creator of all beings. All the three worlds exist in his stomach. He is the Supreme Personality of Godhead.” (Verse 68.6)

Elsewhere in the Mahabharat, Sage Asit and Deval declare: “Shree Krishna is the creator of Brahma, who is the creator of the three worlds." (Mahabharat Vana Parva 12.50)

Arjuna listed the names of the renowned sages Naarada, Asita, Devala and Vyaasa in this regard.

The Srimad Bhagavatam speaks of Naarada as the son of a maid- servant who served several priests. He grew up in an environment of spirituality and decided to seek the absolute truth in a forest after his mother passed away. His meditation bore fruit when he had a vision of Ishvara. After his death, he was reborn as the sage Naarada that many of us are familiar with. Naarada was learned in all the arts and sciences. He could travel anywhere in the universe and talk to any deity that he wished.

Another sage mentioned here is Devalaha who was the son of a great sage named Asita, who was born as a result of Asita’s prayer to Lord Shiva. It is said that Devalaha was cursed by a celestial maiden named Rambha for not agreeing to marry her. He was reborn as Sage Ashtavakra, who is famous for writing the Ashtavakra Gita. And of course, Sage Krishna Dvaipayana Vyaasa is the author of the great Indian epic Mahabhaarata.

Quoting these great authorities, Arjun says that now Shree Krishna is himself reconfirming their statements by declaring that he is the supreme cause of all creation. So therefore, Arjuna accepted the authority of Shri Krishna to convey the true nature of Ishvara. But did he have any doubts or objections?

।। हिंदी समीक्षा ।।

महान संत अध्यात्मिक ज्ञान के प्राधिकारी होते हैं इसलिए अर्जुन ने नारद, असित, देवल और व्यास जैसे महान संतो के नाम का उल्लेख करता है जिन के द्वारा श्रीकृष्ण के परम दिव्य स्वरूप की और सभी कारणों का परम कारण होने की पुष्टि की गयी है।

महाभारत के भीष्म पर्व में उल्लिखित कविता में कई संतों ने भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की है। संत नारद मुनि कहते हैं-"श्रीकृष्ण समस्त संसारों के सृजनकर्ता हैं और सबके भीतर के विचारों को जानते हैं। वे ब्रह्माण्ड पर शासन करने वाले समस्त स्वर्ग के देवताओं के भगवान हैं।" (श्लोक 68.2)।

ऋषि मार्केन्डेय ने वर्णन किया है-"भगवान श्रीकृष्ण सभी धार्मिक यज्ञों का लक्ष्य और तपस्याओं का सार तत्त्व हैं। वे सभी का वर्तमान, भूतकाल, और भविष्य हैं" (श्लोक 68.3)।

भृगु ऋषि कहते है-“वे सभी ईश्वरों के परमेश्वर और भगवान विष्णु का प्रथम मूल रूप हैं" (श्लोक 68.4)।

वेदव्यास ने उल्लेख किया है-“हे भगवान श्रीकृष्ण! आप सभी वसुओं के भगवान हैं। आप ने ही इन्द्र और अन्य स्वर्ग के देवताओं को शक्तियों से सम्पन्न किया है" (श्लोक 68.5)।

अंगीरा ऋषि कहते हैं, "भगवान श्रीकृष्ण सभी जीवों के सृजक हैं। सभी तीनों लोक उनके उदर में रहते हैं। वे सभी देवों का परमस्वरूप हैं" (श्लोक 68.6)।

इसके अतिरिक्त महाभारत में असित और देवल ऋषि यह वर्णन करते हैं, “श्रीकृष्ण तीन लोकों की रचना करने वाले ब्रह्मा के जन्मदाता हैं" (महाभारत का वन पर्व 12.50)।

पूर्व श्लोक में परम् शब्द के साथ परमात्मा को ब्रह्म, धाम एवम पवित्र कहा। अर्जुन भी ज्ञानी था इसलिये उस ने परमात्मा के बारे में अनेक ज्ञान की बाते ऋषिगण से सुनी थी कि परमात्मा सनातन, दिव्य पुरुष, देवो के देव आदिदेव, अजन्मा एवम सर्वव्यापी है। उस ने यह सब बातें देवऋषि नारद, आसित देवल एवम महर्षि व्यास से परमात्मा के बारे में सुना था किंतु आज स्वयं को परमात्मा स्वरूप बताते हुए कृष्ण भगवान से सुन रहा था, इसलिये उस ने वही बांते पुनः कहते हुए कहा कि उन के द्वारा किया हुआ वर्णन उस समय मेरी समझ मे सही नही आ रहा था किंतु आज आप की कृपा से मै समझ पा रहा हूँ। इसलिए इन महान प्राधिकारी सिद्ध महापुरुषों का उल्लेख करते हुए अर्जुन यह कहता है कि भगवान स्वयं अब यह घोषित करते हुए कहते है कि वे संपूर्ण सृष्टि के परम कारण हैं। इस प्रकार वे अपने कथनों की पुनः पुष्टि कर रहे हैं। ऋषि शब्द से अभिप्राय वन में आश्रम बना कर और

दाढ़ी बढ़ा कर रहने वाले सन्यासी से होता है किंतु सत्य यही है कि ऋषि अपने अपने विषय में विशिष्ठ ज्ञान रखने वाले लोग ऋषि कहलाते है।

अंधे व्यक्ति को दिन में सूर्य के प्रकाश में उस की रश्मि एवम ताप का आनंद तो मिल सकता है किंतु सूर्य का ज्ञान नहीं। वैसे ही यदि हम अपने पूर्वाग्रह से ग्रसित हो कर भजन, कीर्तन या गुरु वाणी सुनते है तो उस के आनंद को तो अनुभव कर सकते है किंतु उस को गहराई तक जा कर समझ नही सकते। जब तक ह्रदय निर्मलता से, श्रद्धा एवम विश्वास से, प्रेम से एवम समर्पण भाव से परमात्मा में न हो तो अच्छी बातें सिर्फ मन को छू पाती है किंतु समझ या हाथ मे नही लगती। जब तक हम उन को पढ़ते या सुनते है, तभी तक उस का आनंद लेते है, फिर वैसे के वैसे। यही कारण है भागवत कथा में जो ज्ञान शुकदेव जी द्वारा परीक्षित हो हुआ, वो आज के युग मे कहने, सुनने वालों में बहुत कम लोगो को होता है किंतु उन को पूरी कथा याद रहती है एवम कथा का आनंद भी कथा के समय प्राप्त भी होता है।

व्यक्त्वि विकास में यह श्लोक इसलिये महत्वपूर्ण है कि अर्जुन उन सब बातों का ज्ञाता था जो परमात्मा ने उस से कही, यह वह महर्षि व्यास आदि से सुन एवम पढ़ भी चुका था किंतु उस ने कभी इन को मनन या अपनाया नहीं। इसलिये युद्ध भूमि में वो भय एवम मोह से ग्रस्त हुआ और कर्तव्य भूल कर अपना साहस भी भूल गया। ज्ञान जब तक श्रद्धा, विश्वास, प्रेम एवम समर्पण से नही प्राप्त किया जाता, वो व्यक्ति के पूर्वाग्रह में ही सिर्फ बाते बन कर रह जाता है। यही कारण है कि परमात्मा को समझ पाना उन की अनुकंपा के बिना संभव नही और ज्ञान को समझ पाना उस के अध्ययन, मनन एवम धारण के बिना संभव नही। बिना पूर्वाग्रह को छोड़े यह सब कर्म कांड बन कर रह जाता है।

अतः अर्जुन कहते है कि यद्यपि उन व्यास इत्यादि ऋषियों की वाणी तत्वरूप रत्नों की खान ही थी और मै उस मे चिन्तामाणियो को अंधकार में कंकर समझ रहा था, वो आप के कारण क्योंकि आप ही सूर्य के समान है, जिस के प्रकाश में मुझे यह सब समझ मे आ रहा है।

हम कह सकते है कि हमारे जीवन मे अनेक ज्ञाता, विद्वान और सब से ऊपर मात-पिता हमे अनेक ज्ञान की बाते कहते है। कुछ बाते हमे अच्छी भी लगती है किंतु आत्मसात नही होती, एवम समझ के परे भी होती है। किंतु विशिष्ट परिस्थितियों में वही बाते जब हम किसी और से सुनते है तो वह हमारे सीधे दिल मे उतर जाती है और तब हमें याद भी आता है कि स्कूल के दिनों में शिक्षक और बचपन मे माँ- पिता जी भी यही बाते हमे बताते थे। किन्तु

अज्ञान और अहम के कारण हम उस की सुन कर भी अनसुना करते है, यद्यपि वह बाते अच्छी तो लगती है किंतु हमारे चरित्र का हिस्सा नही बनती। भगवान श्री कृष्ण बचपन से अर्जुन के संग है किंतु युद्ध भूमि में आत्मविश्वास खो चुके अर्जुन ने जब परब्रह्म स्वरूप परमात्मा की बाते भगवान श्री कृष्ण के मुख से सुनी तो उस के मन मे कृष्ण के प्रति सखा का भाव समाप्त हो गया और वह हृदय की गहराइयों में उस व्यक्तित्व के प्रति नतमस्तक हो गया, वह समझ गया कि जिसे वह अपने जैसा मनुष्य समझ रहा था, वह कोई और नही, देवऋषि नारद, असित, देवल और व्यास जैसे महान ऋषियों द्वारा जिन की स्तुति करते सुना करता था, वह साक्षात परब्रह्म उस के समक्ष आज मानव रूप में उस का सारथी बन कर खड़ा है। उस का अहम समाप्त हो कर पूर्ण रूप से शरणागत का हो गया और उस को परब्रह्म के स्वरूप को और अधिक जानने की अभिलाषा भी अधिक हो गई।

यही स्थिति हमारी भी हो सकती है जब पता चले जिसे संसार के बड़े लोग अपना आदर्श मानते है, वह व्यक्ति हमारे साथ सामान्य व्यवहार के साथ रहता है, किन्तु यह समझ तभी आती है जब हम उसे हम हमारे संकट के समय हमारे लिये कार्य करते देखते है और अपने अहम को त्याग कर के विन्रमता से समझते है। हमारा अहम अर्थात मिथ्या अभिमान हमे हमारे आसपास के सौभाग्य स्वरूप मिले, उच्च कोटि के लोगो के प्राप्त हो सकने वाले अनुग्रह से दूर कर देता है, जिस से हमारा व्यक्तित्व जितना विकसित होना चाहिये, हो नही पाता।

ईश्वर की कृपा के बिना पत्ता भी नही हिलता, फिर सत्संग मिल जाये तो उस को श्रद्धा, विश्वास और प्रेम की बजाए अहम, समाजिक संतुष्टि और व्यवहार की तरह उपभोग करने से जो ज्ञान मिलता है, वह वही होता है जो अर्जुन को देवऋषि नारद, आसित, देवल और महृषि व्यास आदि श्रेष्ठजनो से सुन कर भी नही मिला। किन्तु जब साक्षात ब्रह्म स्वरूप से अंगुलिमार या बाल्मीकि जी को ज्ञान मिलता है, तो वह व्यक्ति विशेष की दिशा ही बदल देता है। कौन जाने परमात्मा कब और किस स्वरूप में हमारे सामने खड़ा हो, जब तक हमारे अंदर उस के प्रति श्रद्धा, विश्वास और प्रेम के साथ अहम को त्याग कर स्मरण और समर्पण न हो।

आगे श्लोक अर्जुन में स्थित एक जिज्ञासु साधक के भाव को स्पष्ट करते हुए और क्या कहते है, हम पढ़ते है। किन्तु अध्याय नवम के अनुसार जब तक गीता अध्ययन में श्रद्धा,

विश्वास और प्रेम का अभाव होगा, यह बातें भी हमे पूर्व में अर्जुन की भांति अच्छी तो लगेगी किन्तु आत्मसात नही होंगी।

।। हरि ॐ तत सत।।10.13।।

।। नारद, असिता, देवल और व्यास - संक्षिप्त परिचय ।।गीता विशेष 10.13 ।।

अर्जुन ने चार विद्वानों के मुख से परब्रह्म के बारे में सुना था, कहा है। यह चार कौन लोग है जिन का इस मे जिक्र हुआ है। क्योंकि इन मे एक महृषि व्यास जी भी है जिन्होंने महाभारत और उस मे गीता की रचना भी की है। किंतु यह सब नाम ही नही पद भी है, इसलिये जब विभूतियों को हम पढ़ेंगे, तब यह जानना और आवश्यक होगा कि जब कण कण में परमात्मा है तो विशिष्ट विभूतियों से वह अपने को क्यों प्रकट कर रहे है। इस का कारण यही है कि संसार मे करोड़ो लोग जन्म लेते है और मर जाते है। प्रत्येक व्यक्ति का एक औरा या व्यक्तित्व होता है। जो उस व्यक्ति से ले कर पर संसार मे विस्तृत होता है। जिस का व्यक्तित्व जितना महान होगा उस का औरा भी उतना ही बढ़ा होगा। अभी हम उन चार ज्ञानियो के बारे में जानने की चेष्टा करते है, जिन से अर्जुन ने परब्रह्म के बारे में सुना था।

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास महाभारत ग्रंथ के रचयिता थे। कृष्णद्वैपायन वेदव्यास महर्षि पराशर और सत्यवती के पुत्र थे| महाभारत ग्रंथ का लेखन भगवान् गणेश ने महर्षि वेदव्यास से सुन सुनकर किया था। वेदव्यास महाभारत के रचयिता ही नहीं, बल्कि उन घटनाओं के साक्षी भी रहे हैं, जो क्रमानुसार घटित हुई हैं। अपने आश्रम से हस्तिनापुर की समस्त गतिविधियों की सूचना उन तक तो पहुंचती थी। वे उन घटनाओं पर अपना परामर्श भी देते थे। जब-जब अंतर्द्वंद्व और संकट की स्थिति आती थी, माता सत्यवती उन से विचार-विमर्श के लिए कभी आश्रम पहुंचती, तो कभी हस्तिनापुर के राजभवन में आमंत्रित करती थी। प्रत्येक द्वापर युग में विष्णु व्यास के रूप में अवतरित होकर वेदों के विभाग प्रस्तुत करते हैं। पहले द्वापर में स्वयं ब्रह्मा वेदव्यास हुए, दूसरे में प्रजापति, तीसरे द्वापर में शुक्राचार्य, चौथे में बृहस्पति वेदव्यास हुए। इसी प्रकार सूर्य, मृत्यु, इन्द्र, धनजंय, कृष्ण द्वैपायन अश्वत्थामा आदि अट्ठाईस वेदव्यास हुए। इस प्रकार अट्ठाईस बार वेदों का विभाजन किया गया। ऐसा माना जाता है कि "वेद व्यास" नाम वास्तविक नाम के बजाय एक शीर्षक है क्योंकि कृष्ण द्वैपायन ने चार वेदों को संकलित किया था।

देवर्षि (संस्कृत : देवर्षि) का अर्थ है - 'दिव्य ऋषि'; यह ऋषियों की तीन श्रेणियों में से एक है , अन्य दो हैं - ब्रह्मऋषि (ब्रह्मर्षि) और राजर्षि (राजर्षि)। राजर्षि वे क्षत्रिय राजा थे जिन्होंने ऋषि का दर्जा प्राप्त किया; एक ऋषि और एक ब्रह्मर्षि के बीच का अंतर तप और सिद्धि की डिग्री और उन के जीवन काल का था।

वायु पुराण हमें बताता है कि मूल - ऋष, जिस से ऋषि (ऋषि) शब्द निकला है, का उपयोग गति (ज्ञान), सत्य और तपस्या सुनने के अर्थ में किया जाता है और एक के निशान देता है देवर्षि । देवऋषि को भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान होता है एवम सभी प्रकार से ये सत्य ही बोलते है। इस के अतिरिक्त यह अपने बल पर संसार से सम्बन्ध रख सकते है और सिद्धियों से सब लोको में बिना किसी बाधा के विचरण कर सकते है।

वायु पुराण में कहा गया है कि आकाशीय क्षेत्रों में रहने वाले संतों को धन्य देवर्षियों के रूप में जाना जाना चाहिए , और वे भी जो अतीत, वर्तमान और भविष्य के अपने ज्ञान और सत्य के सख्त पालन से प्रतिष्ठित हैं; वे मंत्र के प्रकटकर्ता हैं और उन की सिद्धियों ('अलौकिक शक्तियों') के आधार पर हर जगह अप्रतिबंधित पहुंच है।

धर्म के दो पुत्र, नर और नारायण ; क्रतु के पुत्र, सामूहिक रूप से वलाखिल्य के रूप में जाने जाते हैं; पुलहा का पुत्र कर्दम; पर्वत, नारद और कश्यप के दो पुत्र , असित और वत्सर, देवर्षि कहलाते हैं क्योंकि वे आकाशीय अर्थात देवताओ पर भी नियंत्रण कर सकते हैं।

हिन्दू मान्यताओं के अनुसार **नारद मुनि** का जन्म सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की गोद से हुआ था। ब्रह्मवैवर्तपुराण के मतानुसार ये ब्रह्मा के कंठ से उत्पन्न हुए थे।

देवर्षि नारद को महर्षि व्यास, महर्षि वाल्मीकि और महाज्ञानी शुकदेव का गुरु माना जाता है। कहते हैं कि दक्ष प्रजापति के 10 हजार पुत्रों को नारदजी ने संसार से निवृत्ति की शिक्षा दी। देवताओं के ऋषि होने के कारण नारद मुनि को देवर्षि कहा जाता है। प्रसिद्ध मैत्रायणी संहिता में नारद को आचार्य के रूप में सम्मानित किया गया है। कुछ स्थानों पर नारद का वर्णन बृहस्पति के शिष्य के रूप में भी मिलता है। अथर्ववेद में भी अनेक बार नारद नाम के ऋषि का उल्लेख है। भगवान सत्यनारायण की कथा में भी उनका उल्लेख है।

नारद मुनि ने भृगु कन्या लक्ष्मी का विवाह विष्णु के साथ करवाया। इन्द्र को समझा बुझाकर उर्वशी का पुरुरवा के साथ परिणय सूत्र कराया। महादेव द्वारा जलंधर का विनाश करवाया। कंस को आकाशवाणी का अर्थ समझाया। वाल्मीकि को रामायण की रचना करने की प्रेरणा

दी। व्यासजी से भागवत की रचना करवाई। इन्द्र, चन्द्र, विष्णु, शंकर, युधिष्ठिर, राम, कृष्ण आदि को उपदेश देकर कर्तव्याभिमुख किया।

कहते हैं कि ब्रह्मा से ही इन्होंने संगीत की शिक्षा ली थी। भगवान विष्णु ने नारद को माया के विविध रूप समझाए थे। नारद अनेक कलाओं और विद्याओं में में निपुण हैं। कई शास्त्र इन्हें विष्णु का अवतार भी मानते हैं और इस नाते नारदजी त्रिकालदर्शी हैं। ये वेदांतप्रिय, योगनिष्ठ, संगीत शास्त्री, औषधि ज्ञाता, शास्त्रों के आचार्य और भक्ति रस के प्रमुख माने जाते हैं। देवर्षि नारद को श्रुति-स्मृति, इतिहास, पुराण, व्याकरण, वेदांग, संगीत, खगोल-भूगोल, ज्योतिष और योग जैसे कई शास्त्रों का प्रकांड विद्वान माना जाता है।

नारद मुनि भागवत मार्ग प्रशस्त करने वाले देवर्षि हैं और 'पांचरात्र' इनके द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथ है। वैसे 25 हजार श्लोकों वाला प्रसिद्ध नारद पुराण भी इन्हीं द्वारा रचा गया है। इसके अलावा 'नारद संहिता' संगीत का एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। 'नारद के भक्ति सूत्र' में वे भगवत भक्ति की महिमा का वर्णन करते हैं। इसके अलावा बृहन्नारदीय उपपुराण-संहिता-(स्मृतिग्रंथ), नारद-परिव्राज कोपनिषद और नारदीय-शिक्षा के साथ ही अनेक स्तोत्र भी उपलब्ध होते हैं।

नारद विष्णु के भक्त माने जाते हैं और इन्हें अमर होने का वरदान प्राप्त है। भगवान विष्णु की कृपा से ये सभी युगों और तीनों लोकों में कहीं भी प्रकट हो सकते हैं। यह भी माना जाता है कि लघिमा शक्ति के बल पर वे आकाश में गमन किया करते थे। लघिमा अर्थात लघु और लघु अर्थात हलकी रुई जैसे पदार्थ की धारणा से आकाश में गमन करना। एक थ्योरी टाइम ट्रेवल की भी है। प्राचीनकाल में सनतकुमार, नारद, अश्विन कुमार आदि कई हिन्दू देवता टाइम ट्रैवल करते थे। वेद और पुराणों में ऐसी कई घटनाओं का जिक्र है।

देवर्षि नारद को दुनिया का प्रथम पत्रकार या पहले संवाददाता होने के गौरव प्राप्त हैं, क्योंकि देवर्षि नारद ने इस लोक से उस लोक में परिक्रमा करते हुए संवादों के आदान- प्रदान द्वारा पत्रकारिता का प्रारंभ किया था। इस प्रकार देवर्षि नारद पत्रकारिता के प्रथम पुरुष/पुरोधा पुरुष/पितृ पुरुष हैं। वे इधर से उधर भटकते या भ्रमण करते ही रहते हैं।

नारद हमेशा अपनी वीणा की मधुर तान से विष्णुजी का गुणगान करते रहते हैं। वे अपने मुख से हमेशा नारायण- नारायण का जप करते हुए विचरण करते रहते हैं। नारद हमेशा अपने आराध्य विष्णु के भक्तों की मदद भी करते हैं। मान्यता है कि नारद ने ही भक्त प्रह्लाद, भक्त अम्बरीष और ध्रुव जैसे भक्तों को उपदेश देकर भक्तिमार्ग में प्रवृत्त किया था।

असित एक सिद्ध महात्मा जो भीष्म की मृत्यु के समय उन से मिलने गये थे। असित युधिष्ठिर के यज्ञ में भी निमंत्रित थे। स्यमंतपंचक में यह श्रीकृष्ण से मिले थे। द्वारका छोड़ पिंडारक जानेवाले ऋषियों में से यह भी एक थे।श्रीकृष्ण के कुरुक्षेत्र वाले यज्ञ में यह पुरोहित थे। असित को सरस्वती नदी का एक स्थान अति प्रिय था। कश्यप के पुत्र एक गोत्रकार ऋषि जिनका विवाह हिमवान की पुत्री एकपर्णा से हुआ था। ये ब्रह्मवादी तथा मंत्रद्रष्टा थे। यह देवल के पिता थे जो एकपर्णा के मानसपुत्र थे। एक पहाड़ जहाँ असित ऋषि का आश्रम था। यहाँ श्राद्ध करने का अनंत फल कहा गया है।

आसिता उस ऋषि का नाम जिस से पृथ्वी ने संसार के राजाओं के अज्ञानता का रहस्य कहा था और ऋषि ने यह संवाद राजा जनक से कहा था।

ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि के पुत्र कश्यप ऋषि हुए। कश्यप जी के पुत्र **असित के पुत्र देवल** ऋषि थे। ये वेदों के मंत्रद्रष्टा माने गये हैं।

देवल नाम के दो ऋषि प्रसिद्ध हुए हैं। हरिवंश पुराण के अनुसार एक देवल प्रत्यूषवसु के पुत्र हुए और दूसरे असित के पुत्र थे। ये दूसरे देवल अप्सरा रंभा के शाप से 'अष्टावक्र' हो गए थे। 'गीता' के अनुसार यही देवल धर्मशास्त्र के प्रवक्ता थे।

आज भी देवल स्मृति उपलब्ध है, पर इसका निर्माणकाल बहुत बाद का है।

देवल वेदव्यास के शिष्य थे। धार्मिक अथवा देवता की पूजा कर के जीविका अर्जित करने वाले व्यक्ति को भी 'देवल' कहते हैं। 'र' और 'ल' में अभेद होने से देवर को भी देवल कहते हैं।

देवल ऋषि ने देवल स्मृति की रचना की है। यह स्मृति सिन्ध पर मुसलमानी आक्रमण के कारण उत्पन्न धर्म परिवर्तन की समस्या के निवार्णार्थ लिखी गई थी। इस का रचनाकाल ७वीं शताब्दी से लेकर १०वीं शताब्दी के बीच होने का अनुमान है। कुछ इतिहासकारों द्वारा इसे प्रतिहार शासक मिहिर भोज के कालखंड का बताया है। इसमें केवल ९६ श्लोक हैं। अनुमान है की सिंध प्रदेश के मुसलमानों के हाथ में चले जाने के बाद जब पश्चिमोतर भारत की जनता धड़ल्ले से मुस्लमान बनायीं जाने लगी, तब उसे हिन्दू समाज में वापस आने की सुविधा देने के लिए इस स्मृति की रचना की गई।

मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में धर्म-भ्रष्ट मनुष्य को पुनः लेने के कोई प्रवंध न था।याज्ञवल्क्य पर लिखी गई 'मिताक्षरा', 'अपरार्क', 'स्मृतिचन्द्रिका' आदि ग्रंथों में देवल का उल्लेख किया गया है। उसी प्रकार देवल स्मृति के काफी उद्धरण 'मिताक्षरा' में लिये गये हैं। 'स्मृतिचन्द्रिका' में देवल स्मृति से ब्रह्मचारी के कर्तव्य, ४८ वर्षो तक पाला जानेवाला ब्रह्मचर्य, पत्नी के कर्तव्य आदि के संबंध मे उद्धरण लिये गये हैं।

'देवल स्मृति' नामक ९० श्लोकों का ग्रंथ आनंदाश्रम में छपा है। उस ग्रंथ में केवल प्रायश्चित्तविधि बताया गया है। किंतु वह ग्रंथ मूल स्वरुप में अन्य स्मृतियों से लिये गये श्लोकों का संग्रह माना जाता है। इसका रचनाकाल भी काफी अर्वाचीन होगा क्योंकि इस स्मृति के १७-२२ श्लोक तथा ३०-३१ श्लोक विष्णु के हैं, ऐसा अपरार्क में बताया गया है। अपरार्क तथा स्मृतिचन्द्रिका में 'देव स्मृति' से दायविभाग, स्त्रीधन पर रहनेवाली स्त्री की सत्ता आदि के बारे में उद्धरण लिये गये हैं। इससे प्रतीत होता है कि, स्मृतिकार देवल, बृहस्पति, कात्यायन आदि स्मृतिकारों का समकालीन रहे होंगे।

देवल, असित, देवऋषि नारद और व्यास अपने काल मे परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को जानने वाले परमज्ञानी महर्षि थे, जिन्हें देवऋषि भी कह सकते है। इसलिये अर्जुन ने उन का उदाहरण दिया। जो उत्तम में सर्वोत्तम है, उस से ज्ञान प्राप्त अर्जुन को परमात्मा की विभूतियों की अनुभूति युद्ध मे स्वयं परमात्मा से उसी ज्ञान से हुई, जिसे उस ने पहले भी सुना था। यही परमात्मा की भाव की प्रधानता की विभूति का महत्व है।

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता विशेष 10.13 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.14॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः॥

"sarvam etad ṛtaṁ manye,
yan māṁ vadasi keśava..।
na hi te bhagavan vyaktiṁ,
vidur devā na dānavāḥ"..।।

भावार्थ:

हे केशव! जो यह सब कुछ आप मुझे बता रहे हैं, उसे मैं पूर्ण-सत्य रूप से स्वीकार करता हूँ, हे प्रभु! आपके स्वरूप को न तो देवतागण और न ही असुरगण जान सकते हैं। (१४)

Meaning:

What you are speaking to me, O Keshava, I acknowledge all this to be true. For O Lord, neither the deities nor the demons know your manifestation.

Explanation:

Since the start of the Gita, we have seen Arjuna speak whenever he has a doubt or needs further clarification. With this shloka, Arjuna acknowledges that he has completely understood the true nature of Ishvara since the knowledge is coming from the source, from Ishvara himself.

It is interesting to note the use of the name "Keshava" to refer to Shri Krishna. "Ka" represents Lord Brahma and "Isha" represents Lord Shiva. So Keshava is the one who harmonizes the powers of creation and destruction. In other words, Ishvara creates, sustains, and dissolves the universe of names and forms.

Arjun praised; Whatever glory has been enumerated, I accept all of them as truth; valid truth, authentic, reliable information they are. I accept as complete truth. Because you are saying so; and you will never bluff; you are never unreliable. You are pramāṇikāḥ and therefore I accept all of them; and I cannot cross- check your teaching with the other local people because, the local people will never know your glories completely, because they all have got their own limitations. And therefore, Arjuna says, nobody else knows this fact; you alone are the knower:

He addresses Shree Krishna as **Bhagavān,** or the Supreme Lord. The word Bhagavān is defined in Devī Bhāgavat Purāṇ in the following manner: "Bhagavān is he who possesses these six opulence's to the **infinite extent– strength, knowledge, beauty, fame, opulence, and renunciation."** The

devatās (celestial gods), dānavas (demons), mānavas (human beings) all have finite abilities to understand. They cannot comprehend the full identity of Bhagavān.

Since Ishvara is the origin of everything, Arjuna says that no deity, human or demon can claim to know Ishvara in totality because Ishvara came before any of them. Another interpretation of this statement is that no sense organ such as the eye or ear can claim to know Ishvara. Unlike worldly knowledge about objects, the knowledge of Ishvara can only be known as a subject. Tulsidas says this poetically in the Tulsi Ramayana: **“Jaanat tumahi tumahi hui jaayi”.** One who knows you becomes you. All sense of individuality, the sense of I, the subject, goes away when one merges into Ishvara.

So then if no deity, human or demon can know Ishvara, who can? Arjuna gives the answer in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

"क" नाम ब्रह्मा का है, "अ" नाम विष्णु का है, "ईश" नाम शंकर का है और "व" नाम वपु अर्थात् स्वरूप का है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शंकर जिस के स्वरूप हैं,उस को केशव कहते हैं। इस के अतिरिक्त केशव शब्द का अर्थ है जिनके केश सुन्दर हैं अथवा केशि नामक असुर का वध करने वाले।

अर्जुन का यहाँ केशव सम्बोधन देने का तात्पर्य है कि आप ही, संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले हैं। सातवें से नवें अध्याय तक मेरे प्रति आप जो कुछ कहते आये हैं वह सब मैं सत्य मानता हूँ और अभी दसवें अध्याय में आप ने जो विभूति तथा योग का वर्णन किया है, वह सब भी मैं सत्य मानता हूँ। तात्पर्य है कि आप ही सबके उत्पादक और संचालक हैं। आप से भिन्न कोई भी ऐसा नहीं हो सकता। आप ही सर्वोपरि हैं। इस प्रकार सब के मूल में आप ही हैं इस में मेरे को कोई सन्देह नहीं है। आप मुझे असत्य कथन भी नही करेंगे और आप के अतिरिक्त और कोई भी आप को जान भी नही सकता। भक्तिमार्ग में श्रद्धा के साथ विश्वास की मुख्यता है।

तुलसीकृत रामचरित मानस की यह चौपाई भी अर्जुन के समान ही वंदना है;

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥ तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।

"वही आपको जानता है, जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है। हे रघुनंदन! हे भक्तों के हृदय को शीतल करने वाले चंदन! आपकी ही कृपा से भक्त आपको जान पाते हैं॥"

भगवान् ने पहले श्लोक में अर्जुन को परम वचन सुनने के लिये आज्ञा दी थी, उसी परम वचन को अर्जुन यहाँ सत्य कह कर उस पर विश्वास प्रकट करते हैं।

अर्जुन यहाँ केशव के अतिरिक्त भगवन कह कर भी संबोधित किया। भगवान शब्द की परिभाषा को देवी भागवत पुराण में सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है:

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रीयः। ज्ञानवैराग्योश्चैव सन्नाम भगवान्नीह ।।

"भगवान छः अनन्त ऐश्वर्यों के स्वामी है- शक्ति, ज्ञान, सौंदर्य, कीर्ति, ऐश्वर्य और वैराग्य"। जिन्हें जानने एवं समझने के लिए दानव और मानव सभी आत्माओं की बुद्धि बहुत ही सीमित है। वे आत्माएं कभी भी भगवान की दिव्य लीलाओं और उनके पूर्ण व्यक्तित्व को नहीं समझ सकते।

अर्जुन परमात्मा द्वारा अभी तक दिए हुए सांख्य, कर्मयोग, बुद्धि एवम ध्यान योग तथा भक्ति योग के साथ उन की बताई विभूतियों और स्वरूप को सत्य तो मानता है, किन्तु उस की बुद्धि अभी भी असन्तुष्ट ही है। ज्ञानपिपासा के वशीभूत अर्जुन का असन्तुष्ट व्यक्तित्व मानो कराहता है । यह ज्ञानपिपासा दूसरी पंक्ति में प्रतिध्वनित होती है जहाँ वह कहता है आप अनादि, अनन्त एवम अजन्मा है इसलिये आप के व्यक्तित्व को न देवता जानते है और न दानव। दानव माया से विभिन्न रूप धारण करने की शक्ति रखते है और देवता इन्द्रियातीत विषय को प्रत्यक्ष करने की शक्ति, किन्तु संसार की रचना, पालन एवम संहार करने वाले परमात्मा की योगमाया एवम उन की लीलाओं को कोई नही जान सकता।

दानव दनु के पुत्र थे, जो प्राय स्वर्ग पर आक्रमण करते रहते थे, यज्ञयागादि में बाधा पहुँचाते थे और आसुरी जीवन जीते थे। इसके विपरीत, पुराणों के वर्णनानुसार, देवतागण स्वर्ग के निवासी हैं जो मर्त्य मानवों की अपेक्षा शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक क्षमताओं में अधिक शक्तिशाली होते हैं। वैयक्तिक दृष्टि से, देव और दानव हमारे मन की क्रमश शुभ और अशुभ प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। जब अर्जुन कहता है कि आत्मा के स्वरूप का निर्धारण न तो सूक्ष्म

और शुभ के दर्शन के समान हो सकता है और न ही दानवी प्रवृत्ति के समान, तब उस की निराशा स्पष्ट झलकती है। न तो हमारी दैवी प्रवृत्तियां सत्य का आलिंगन कर सकती हैं और न ही दानवी गुण उस को युद्ध के लिए आह्वान कर के शत्रु रूप में हमारे सामने ला सकते हैं। जगत् में हम वस्तुओं या व्यक्तियों को केवल दो रूप में मिलते हैं प्रिय और अप्रिय अथवा मित्र और शत्रु के रूप में। आत्मा के व्यक्तित्व की पहचान इन दोनों ही प्रकारों से नहीं हो सकती, क्योंकि वह योग और विभूति की अभिव्यक्तियों में द्रष्टा है। परमात्मा को परमात्मा ही व्यक्त या समझा सकता या उस की अनुकंपा से कोई जान सकता है।

अतः जब परमात्मा ही साक्षात अपने को व्यक्त कर रहा हो, तो अर्जुन भी अपनी जिज्ञासा को स्तुति के माध्यम से प्रस्तुत करता है, इसलिये उस के वचन परमात्मा से वो सब जानने के लिये जो कोई अन्य नही बता सकता।

यह समझने की बात है कि कभी जीवन मे भाग्यवश कोई ज्ञानी व्यक्ति मिल जाये जिस का आप के प्रति स्नेह हो और जो आप को समझता हो तो अर्जुन की भांति ही जिज्ञासु हो कर ज्ञान अर्चित करना ही चाहिए ताकि आप की शंका का समाधान हो जाये। प्रायः ज्ञानी पुरुष के श्रद्धा एवम विश्वास में हम इतना झुक जाते है कि हम यह भी आशा करने लग जाते है कि वो स्वयं ही हमारी शंकाओं के समाधान देगा और हम अपनी शंकाओं का समाधान नहीं मांगते, यह हमारी सब से बड़ी भूल और अज्ञानता होती है। अर्जुन एक योग्य शिष्य के नाते हर समय प्रश्न उचित रूप में रख कर अपनी शंकाओं को मिटा देना चाहता है, जिस से ज्ञान के साथ उस का आत्मविस्वास भी उस ज्ञान में बढे। प्रश्न पूछ कर अपनी जिज्ञासा को समाप्त करना ही बुद्धिमानी है।

अर्जुन का यह जिज्ञासा गीता द्वारा उन सब बातों का जवाब है कि संसार मे प्रकृति किस प्रकार न्याय करती है, जिसे हम अपनी भौतिक बुद्धि से नही समझ सकते। अक्सर किसी को हम निर्दोष मानते हुए उस पर कोई अनहोनी होते देखते है तो परमात्मा को कोसते है, उस की न्याय व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लगाते है। कभी कभी यह प्रश्न भी रहता है कि मेरे साथ ऐसा क्यों होता है? गीता में इसे भी समझने के लिये पुनः यही दोहराना पढ़ रहा है कि भक्तियोग बिना श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और समर्पण के ज्ञान या बुद्धि से पढ़ने पर समझ मे नही आ सकता। ज्ञान से हमे जानकारी होती है किंतु वह हमारा व्यक्तित्व बन जाए और आत्मसात हो जाए, उस के लिए ही भक्ति अर्थात श्रद्धा और प्रेम से समर्पण चाहिए। गीता का आगे का अध्ययन में हम अर्जुन की जिज्ञासा से परमात्मा की विभूतियों, प्रकृति और

योगमाया को समझने की चेष्टा करते है। आप को अपनी श्रद्धा, विश्वास और प्रेम को जगाये रखना है, क्योंकि जिन के हृदय में स्वार्थ और अहंकार की मलिनता है, उन्हें गीता समझ मे भी नही आ सकती।

यदि सत्य को कोई नहीं जान सकता है, तो फिर अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से उस का वर्णन करने का अनुरोध क्यों करता है उन में ऐसा कौन सा विशेष गुण है, जिस के कारण वे उस वस्तु का वर्णन करने में समर्थ हैं, जिसे अन्य कोई जान भी नहीं पाता है यह हम आगे के श्लोकों में पढेंगे।

।। हरि ॐ तत सत।।10.14।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.15॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते॥

"svayam evātmanātmānaṁ,
vettha tvaṁ puruṣottama..।
bhūta-bhāvana bhūteśa,
deva-deva jagat-pate"..।।

भावार्थ:

हे पुरूषोत्तम! हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी! हे समस्त देवताओं के देव! हे समस्त प्राणीयों को उत्पन्न करने वाले! हे सभी प्राणीयों के ईश्वर! एकमात्र आप ही अपने आपको जानते हैं या फ़िर वह ही जान पाता है जिसकी अन्तर-आत्मा में प्रकट होकर आप अपना ज्ञान कराते हैं। (१५)

Meaning:

Only you yourself know of your true nature, O foremost among all, creator of all beings, lord of all beings and nourisher of this universe.

Explanation:

Previously, Arjuna said that Ishvara cannot be completely understood through our eyes and ears. But being eager to still know Ishvara, he began using several words to describe Ishvara in this shloka. He also acknowledges that only Ishvara can know Ishvara, since there was nothing prior to Ishvara. Ishvara is self- evident, just like we do not need another source of light to see the sun.

wherein Krishna divides the entire universe into three; kṣara puruṣa; akṣara puruṣa and uttama puruṣa; kṣara puruṣa means manifest matter; or matter, Akṣara puruṣa is unmanifest matter or energy, and Uttama puruṣa is the consciousness principle; Thus, the whole universe consists of only three; matter in tangible form; matter in intangible form, and the consciousness which is different from both tangible and intangible matter. Tangible matter is called kṣara puruṣa; intangible matter; Energy is intangible matter only, is Akṣara Puruṣa; and the consciousness is called Uttama Puruṣa; And Uttama Puruṣa reversed is what? **Puruṣottama;** Puruṣottama means the pure consciousness which is beyond matter.

Arjuna addressed Ishvara as "**purushottama",** the foremost and eminent person, beyond all cause and effect. He is **"bhootabhaavana"**, the origin of all beings, the absolute reality that has taken maaya as an upaadhi or qualifier to create this world of names and forms. He is also **"bhootesha**", the master and lord of all beings. He also controller of the world.

Even though he is the controller, he is not someone who is a cruel master. He is **"devadeva",** the lord of all deities including Indra and Varuna, someone who is revered and adored. Also, Ishvara does not quit once the world is created. He is also **"jagatpate",** the protector and nourisher of the universe. However, we need to understand that, like a magician, Ishvara is never affected by the magic show. He is the cause, and the magic show of the universe is the effect.

So, if Ishvara can alone know Ishvara, only Ishvara can reveal his glories. Arjuna takes this up next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन अपनी जिज्ञासा को प्रस्तुत करने के पहले श्री कृष्ण को पांच प्रकार से संबोधित करता है।

1) **पुरुषोत्तम** अर्थात जो क्षर, अक्षर और उत्तम पुरुष से भी उत्तम है वो ही पुरुषोत्तम है।

2) **भूत भावन** अर्थात यह समस्त प्रकृति, ब्रह्मांड के जन्म दाता या कर्ता है, जिस के आदेश से योगमाया और प्रकृति कार्य करती है।

3) **भूतेश** अर्थात समस्त प्राणियों के पालक एवम रक्षक है और समस्त संसार को नियंत्रित करता है।

4) **देवदेव** अर्थात समस्त देवो देवताओ के भी देव है, यहां परमात्मा को समस्त 33 कोटि देवी देवताओं से ऊपर बताया गया।

5) **जगतपते** अर्थात इस समस्त जगत के अधिपति है। जो जगत को नष्ट करने का प्रयास करते है, उन से जगत की रक्षा करते है।

यह जानने योग्य बात है कि जगत परमात्मा के संकल्प का कारण है अतः इस को असत्य, मिथ्या या अप्रतिष्ठ कहना सही नही होगा। जगत ईश्वर की रचना है अतः अनित्य है किंतु असत्य नही। जिस का पालक स्वयं परमात्मा हो वो जगत मिथ्या नही हो सकता, अनित्य हो सकता है क्योंकि कोई भी प्राणी या कारण नित्य नही होता।

इस प्रकार परमात्मा के पांच स्वरूप पर, व्यूह, विभव, अंतर्यामी और अचार्वतार से अर्जुन परमात्मा की स्तुति करता है। अर्जुन द्वारा शास्त्रों, गुरु और श्रेष्ठ ऋषियों और मुनियों द्वारा परब्रह्म के लिए जो भी उपाधियों को सुना गया था, वह आज उस के द्वारा भगवान श्री कृष्ण के स्वरूप में अपने समक्ष परब्रह्म को साक्षात देखने से स्वत: ही स्तुति के रूप में उस के मुख से प्रकट हो रही थी।

भगवान् अपने आप को अपने आप से ही जानते हैं। अपने आप को जानने में उन्हें किसी प्राकृत साधन की आवश्यकता नहीं होती। अपने आप को जानने में उन की अपनी कोई वृत्ति

पैदा नहीं होती, कोई जिज्ञासा भी नहीं होती, किसी करण (अन्तःकरण और बहिःकरण) की आवश्यकता भी नहीं होती। उन में शरीर शरीरी का भाव भी नहीं है। वे तो स्वतःस्वाभाविक अपने आप से ही अपने आप को जानते हैं। उन का यह ज्ञान करणनिरपेक्ष है, करणसापेक्ष नहीं। इस श्लोक का भाव यह है कि जैसे भगवान् अपने आप को अपने आप से ही जानते हैं, ऐसे ही भगवान् के अंश जीव को भी अपने आप से ही अपने आप को अर्थात् अपने स्वरूप को जानना चाहिये। अपने आप को अपने स्वरूप का जो ज्ञान होता है, वह सर्वथा करण निरपेक्ष होता है। इसलिये इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि से अपने स्वरूप को नहीं जान सकते। भगवान् का अंश होने से भगवान् की तरह जीव का अपना ज्ञान भी करणनिरपेक्ष है। किन्तु जब परमात्मा का ज्ञान मन, बुद्धि या किसी भी साधन से किया जाए तो वो उस साधन की योग्यता पर निर्भर होगा।

यह श्लोक दर्शाता है कि किस प्रकार श्रीकृष्ण उस परम सत्य का वर्णन करने में सक्षम हैं, जिसे न स्वर्ग के देवता जान सकते हैं और न दानवगण। जैसे आकाश के विस्तार का एकदम सही पता स्वयं आकाश को ही होता है या पृथ्वी का घनत्व पृथ्वी ही सही नाप सकती है, वैसे ही परमात्मा को सही विभूतियों एवम वर्णन में परमात्मा ही व्यक्त कर सकता है। परब्रह्म को किसी से ज्ञान नही प्राप्त हुआ, उस का कोई गुरु नही, वही एकमेव के जो अपने आप की जानता है, इसलिये आत्मवेत्ता है। शेष वेद, उपनिषद और शास्त्र जिस आत्मा-परमात्मा और परब्रह्म का वर्णन करते है, वह उन का चिंतन, अनुभव और दर्शन हो सकता है किंतु वास्तविकता या सत्य हो, यह तो स्वयं परब्रह्म ही जानता है। आत्मा को कभी प्रमाणों (इन्द्रियों) के द्वारा दृश्य पदार्थ के रूप में नहीं जाना जा सकता है और न वह हमारी शुभ अशुभ प्रवृत्तियों के द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है। परन्तु आत्मा चैतन्य स्वरूप होने से स्वयं ज्ञानमय है और ज्ञान को जानने के लिए किसी अन्य प्रमाण (ज्ञान का साधन) की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए अर्जुन यहाँ कहता है, आप स्वयं अपने से अपने आप को जानते हैं। सांख्यदर्शन के अनुसार प्रतिदेह में स्थित चैतन्य, पुरुष कहलाता है। यहाँ श्रीकृष्ण को पुरुषोत्तम नाम से सम्बोधित किया गया है, जिसका अर्थ है, वह एकमेव अद्वितीय तत्त्व जो भूतमात्र की आत्मा है। पुरुषोत्तम शब्द का लौकिक अर्थ है पुरुषों में उत्तम तथा अध्यात्मशास्त्र के अनुसार अर्थ है परमात्मा। अब अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण के शुद्ध ब्रह्म के रूप में स्वीकार करके उनका गौरव गान करते हुए उन्हें इन नामों से सम्बोधित करता है, हे भूतभावन (भूतों की उत्पत्ति करने वाले) हे भूतेश हे देवों के देव हे जगत् के शासक स्वामी किसी भी वस्तु का सारतत्त्व उस वस्तु के गुणों का शासक और धारक होता

है। स्वर्ण आभूषणों के आकार, आभा आदि गुणों का शासक होता है। परन्तु चैतन्य की नियमन एवं शासन की शक्ति अन्य की अपेक्षा अधिक है, क्योंकि उसके बिना हम न कुछ जान सकते हैं और न कुछ कर्म ही कर सकते हैं। वस्तुओं और घटनाओं का भान या ज्ञान तभी संभव होता है जब इनके द्वारा अन्तकरण में उत्पन्न वृत्तियाँ इस शुद्ध चैतन्यरूप आत्मा से प्रकाशित होती हैं।

विचारणीय बात यह भी है ज्ञान उपयुक्त पात्र से लिया गया ही सही है, जो भ्रमित होगा वो ज्ञान भी भ्रमित ही देगा। द्वितीय जब ज्ञान का ज्ञाता मिल जाये तो किसी अन्य के द्वारा यदि उस को समझे तो वो भी ज्ञान के सम्पूर्ण ज्ञाता के अनुसार नही समझा सकता क्योंकि हम सब लोग जानते है बातचीत जब माध्यम से प्राप्त होती है तो वो माध्यम की सोच एवम समझ के कारण बदल जाती है। ज्ञान का ज्ञाता होना अथवा उस का प्रवक्ता होना, दोनों में ज्ञान के विश्लेषण में अंतर होना स्वाभविक है। आज के युग मे शास्त्रो, वेदों और हमारे ग्रंथो को ले कर सोशल मीडिया में कभी कभी अनेक ज्ञान की बाते प्रचारित हो जाती है, जिसे फारवर्ड करने वाले बिना प्रमाणिक किये प्रसारित भी कर देते है। इस प्रकार से ज्ञान को बांटने वाले स्वयं तो भ्रमित होते ही है, दुसरो को भी भ्रमित कर देते है। अतः जब तक ज्ञान वास्तविक ज्ञान को जानने वाले से नही प्राप्त हो, उसे अपूर्ण शास्त्री से ग्रहण नही करना चाहिये।

व्यवहार में जब हम किसी को अनुसूए समझ कर अपने मन की बात और अपने को वास्तविक रूप में कहते है तो उस के द्वारा प्रशंसा में लिए हुए शब्द भी महत्वपूर्ण होते है। परंतु यही बात अपात्र को कहे तो वह आप का मजाक उड़ाने या आप को नीचा दिखाने की कोशिश करेगा।

अपने आश्चर्य, आदर और भक्ति को व्यक्त करने वाले इस कथन के बाद, अब अर्जुन सीधे ही भगवान् के समक्ष अपनी बौद्धिक जिज्ञासा को प्रकट करते हुए क्या कहता है, इसे हम अगले श्लोक में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.15।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.16॥

स्वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।

याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥

"vaktum arhasy aśeṣeṇa,
divyā hy ātma-vibhūtayaḥ..।
yābhir vibhūtibhir lokān,
imāṁs tvaṁ vyāpya tiṣṭhasi"..।।

भावार्थ:

हे कृष्ण! कृपा करके आप अपने उन अलौकिक ऎश्वर्यपूर्ण स्वरूपों को विस्तार से कहिये जिसे कहने में केवल आप ही समर्थ हैं, जिन ऎश्वर्यों द्वारा आप **इन सभी लोकों** में व्याप्त होकर स्थित हैं। (१६)

Meaning:

Only you are capable of describing your divine expressions in totality. You are established in the universes by pervading them with these expressions.

Explanation:

Here, Yog refers to Yogmaya (God's divine power), and yogi refers to the Master of Yogmaya. Arjun has understood that Shree Krishna is Bhagavān. He now wishes to know in what other ways, yet untold, is Shree Krishna's vibhūti (transcendental majestic opulence) displayed throughout creation. He wishes to hear about Shree Krishna's eminence and paramount position as the Supreme Controller of all creation.

Arjuna, eager to know the true nature of Ishvara, now understood that Ishvara is not some third party that creates and sustains the universe by standing outside of it. To that end, he acknowledges that Ishvara is part and parcel of the universe by saying that Ishvara has established himself by pervading the entire universe with his manifestations and expressions. It is like saying that the Internet, by pervading our every activity, has established itself in our life.

With this realization, Arjuna begins to request Shri Krishna to give him a detailed understanding of Ishvara's expressions. Since Ishvara is the origin, the first cause, only Ishvara in the form of Shri Krishna is capable or competent to reveal his true nature to Arjuna.

For example, only a really old person who was alive during the Indian freedom struggle can reveal details to us that we may never hear about or read about anywhere else. Similarly, only Ishvara can reveal his divine opulence and glories. It is said that the Vedas, also known as "shruti", are the mouthpiece of Ishvara. The Gita has been derived from the Vedas.

Arjuna, having praised Ishvara, now begins asking his question in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

राजपुत्र अर्जुन को इस बात का निश्चय हो गया है कि भगवान् ही विश्व के अधिष्ठान हैं, जिन के बिना विश्व का अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता। परन्तु जब वह अपने उपलब्ध और परिचित प्रमाणों इन्द्रियों, मन और बुद्धि के द्वारा बाह्य जगत् को देखता है, तब उसे केवल विषयों भावनाओं और विचारों का ही अनुभव होता है जिन्हें किसी भी दृष्टि से दिव्य नहीं कहा जा सकता। विराट् ईश्वर के रूप में भगवान् ही इस नामरूपमय संसार की समष्टि सृष्टि (विभूति) और व्यष्टि सृष्टि (योग) बने हुए हैं। यद्यपि श्रद्धा से परिपूर्ण हृदय के द्वारा इसे अनुभव किया जा सकता है, परन्तु बुद्धि के तीक्ष्ण होने पर भी उसके द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। इसलिए, स्वाभाविक ही, अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से उन विभूतियों का वर्णन करने का अनुरोध करता है, जिन के द्वारा वे इस जगत् को व्याप्त करके स्थित हैं। कर्मशील होने के कारण अर्जुन अत्यन्त व्यावहारिक बुद्धि का पुरुष था इसलिए वह और अधिक पर्याप्त तथ्यों को एकत्र करना चाहता था, जिन पर वह विचार करके और उनका वर्गीकरण कर के उन्हें समझ सके।

अर्जुन परमात्मा की स्तुति करते हुए कहते है कि समस्त लोको में जो तेज, बल, विद्या , ऐष्वर्य, गुण एवम शक्ति आदि जितने भी दिव्य गुण है वो सब आप के स्वरूप या विभूतियां है। इसलिये आप के सिवा दूसरा कोई इन सब को या आप को जानता ही नही, वो इन सब

का वर्णन भी नही कर सकता। अतः आप अपने समस्त लोको की उन अद्‌वितीय विभिन्न विभूतियों का वर्णन मुझे बताए, क्योंकि उन का वर्णन आप ही कर सकते है।

व्यवहार में जो मुफ्त है, उस की कीमत हम नही करते अन्यथा ईश्वर की विभूति में स्वयं मानव के प्रत्येक अंग की कीमत लाखो है किंतु सांसारिक और सामाजिक जीवन में यदि वह अपने शरीर , मन और बुद्‌धि का सही उपयोग नहीं करता तो गरीब रहता है। ऐसे ही पानी, रोशनी, हवा और भोजन जो प्रकृति देती है उसे हम दिव्य और अदभुत नही समझ पाते, किंतु कोरोना काल में ऑक्सीजन के कारण मरते लोगो ने हवा का महत्व भी समझ लिया होगा। अर्जुन भी भगवान को और अधिक समझने की चेष्टा करना चाहता है, वह प्रकृति, और माया से संग योगी अर्थात उस को नियंत्रित करते भगवान को देख कर भी, अपनी इच्छा से कुछ ओर समझना चाहता है जिसे वह यहां व्यक्त करता है कि भगवान उसे अपने दिव्य विभूतियों से अवगत करवाएं।

व्यवहार में हम परमात्मा को तब तक समझ नही पाते जब तक वह अभाव के पश्चात ही सीमित रूप में उपलब्ध हो। सीमित का अर्थ है, असाधारण और असामान्य स्वरूप में। अन्यथा परमात्मा तो कण कण में है। अर्जुन भी विशिष्ट विभूति के स्वरूप में परमात्मा को समझना चाहता है, जिस से असामान्य रूप से उपलब्ध परमात्मा अपने अलौकिक स्वरूप में कैसे होंगे। ऐसी विभूतियों से गुणों को जोड़ कर, उन्हे आधार बना कर वह निर्गुण, निराकार, अव्यक्त और नित्य परमात्मा के स्वरूप को सगुण कर के समझने की चेष्टा करना चाहता है।

भगवान राम जन जन के हृदय में उपलब्ध है किंतु रामलला की प्राण प्रतिष्ठा द्‌वारा उन के भव्य मंदिर की स्थापना से जो आध्यात्मिक और आत्मिक संतोष मिलता है वह अलौकिक और दिव्य है। ऐसे ही घर में या कहीं भी भगवान के सगुण स्वरूप का दर्शन हम तस्वीर या मूर्ति में कर सकते है किंतु संतुष्टि एवम आत्मिक और आध्यात्मिक संतोष उस के दर्शन विशिष्ट दिन या विशिष्ट स्थान अर्थात तीर्थ या मंदिर में जा कर ही मिलता है।

यजुर्वेद में कहा है कि जो कुछ संसार के अंदर है उस में ईश्वर व्यापक हो कर रहता है। जगत व्याप्य वस्तु है जिस में भगवान व्यापक है। जैसे दूध के बिना मक्खन, तिल के बिना तेल, सेवक के बिना स्वामी एवम धन के बिना धनी नही हो सकता वैसे ही व्यापक के बिना व्याप्य नही हो सकता।

निर्गुण परमात्मा की उपासना फिर भी की जा सकती है किंतु सगुण परमात्मा को बिना जाने भ्रम की स्थिति होती है। अर्जुन इतने वर्षों तक कृष्ण के साथ थे किन्तु वो उसे परमात्मा के रूप में तब तक पहचान न सके जब तक परमात्मा से स्वयं अपने को प्रकट नही किया। अतः जो भक्त परमात्मा के भजन में लीन रहते है वो परमात्मा के स्वरूप अर्थात विभूति को कैसे पहचाने। जब तक परमात्मा का पूर्ण ज्ञान न हो तो कोई भी भक्त को भ्रामित कर सकता है। कोई किसी को और कोई किसी देवी देवताओं को पूजने लग जाता है क्योंकि वो परमात्मा को नही जानता वो अपनी कामना में रहता है इसलिये अपनी आवश्यकता के अनुसार देवी देवता चुन लेता है।

अर्जुन का यह कथन हमे इंकित करता है बिना पूरे विषय को जाने यदि हम कुछ कार्य करते है वो भ्रामित कर सकता है। खाद्य पदार्थ जीवन को ऊर्जा एवम संचालन के लिये होते है। प्रत्येक खाद्य पदार्थ का शरीर की ऊर्जा एवम संचालन में उपयोगिता का ज्ञान एवम उपयोग न मालूम होने से मात्र खाने या स्वाद से जीवन मे सही ऊर्जा एवम संचालन नही होगा एवम आप को लक्ष्य भी नही होगा। परमात्मा की भक्ति करने वाले को परमात्मा की समस्त विभूतियों का ज्ञान हो तो उस की भक्ति अटूट रहेगी। अर्जुन कुशाग्र बुद्धि का था, इसलिये जैसे ही उस का यह भ्रम टूटा की जिसे वो सखा, मित्र मान रहा था वो स्वयं परमात्मा है उस मे परमात्मा से ही उस के दिव्य स्वरूप की समस्त लोको में व्याप्त विभूतियो को बताने की प्रार्थना की। ज्ञानी के सत्संग में जो बातें साधारण तौर पर मिल सकती है, उन पर चर्चा करना, सत्संग का दुरुपयोग है। वास्तविकता में अर्जुन जैसा शिष्य जानता है कि उसे वह ज्ञान प्राप्त करना है, जो अन्य कोई बतलाने में असमर्थ हो।

परमात्मा की सृष्टि सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है, यहाँ तक समस्त देवता, इष्ट और लोक इस सृष्टि का हिस्सा है, इसलिये भक्ति मार्ग में सगुण उपासक के रूप में निर्गुण परमात्मा की आराधना किस प्रकार करनी चाहिये, हमे परमात्मा के सगुणात्मक स्वरूप का वास्तविक ज्ञान होना आवश्यक है। व्यवहार में केमिस्ट्री को पढ़ने वाले छात्र किसी वस्तु की कैमिकल रचना और फिर रचना के केमिकल की रचना द्वारा मूलतत्व को पहचान करना, और उस से उस तत्व की सही उपयोगिता को प्राप्त करना, ज्ञान प्राप्ति का वास्तविक मार्ग है।

अर्जुन की यह केवल बौद्धिक जिज्ञासा ही है, जिसके कारण वह ऐसा प्रश्न करता है वह स्वयं स्पष्ट करते हुए आगे क्या कहता है, इसे आगे पढ़ते है।

।।हरि ॐ तत सत।। 10.16।।

।। चौदह लोक - भुवन ।।विशेष - गीता 10. 16 ।।

वेद, ग्रंथो एवम पुराणों में हमारे ब्रह्मांड के अतिरिक्त 14 लोक ऐसे है, जिन में अन्य लोग रहते है। यह कुछ वैज्ञानिक अन्वेषण के समान भी समझना चाहिए कि जीवन पृथ्वी और सौर मंडल के अतिरिक्त सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है और उन से संपर्क का माध्यम मानसिक तरंगों को माना गया है। यह ईथर मीडिया का शक्तिशाली स्वरूप है, जिस पर भौतिक यंत्रो से भी अनुसंधान चल रहा है। चौदह भुवन अर्थात लोक, उनके देवी देवताओं के रचयिता एवम उन से परे परब्रह्म के बारे में हम ने पढ़ा। परमात्मा ने यह भी कहा कि कुछ ज्ञानी अज्ञान के कारण कामना करते हुए स्वर्ग आदि के सुख भोग के लिये उन की आराधना करते है, उन की कामना की पूर्ति भी मेरे द्वारा निमित देवताओ से मैं ही करता हूँ। अतः यह चौदह लोक को भी हम जानने का प्रयास करते है जिस में पृथ्वी सातवे नम्बर पर है।

आधुनिक विज्ञान जैसे जैसे आकाशगंगा और ब्रह्मांड की विभिन्न परतों को प्राप्त कर रहा है तो उसे विभिन्न आकाशगंगा, ब्लैक होल और सौरमंडल के विषय में पता चल रहा है। यह विभिन्न स्थान की दूरी सनातन धर्म के विभिन्न लोकों की दूरी से भी मिलती है, जो यह सिद्ध करता है कि विभिन्न लोक कोरी कल्पना नहीं हो कर, उस काल के ब्रह्मांड का अध्ययन ही है।

विष्णु पुराण के अनुसार लोकों या भुवनों की संख्या 14 है। इनमें से सात लोकों को ऊर्ध्वलोक व सात को अधोलोक कहा गया है। सात ऊर्ध्वलोकों का विवरण निम्न है।

(1) **सत्यलोक (ब्रह्म लोक)** - यह लोक तपलोक से बारह करोड़ योजन ऊपर है। यहाँ ब्रह्मा जी निवास करते हैं अतः इसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं। सर्वोच्च श्रेणी के ऋषि मुनि यहीं निवास करते हैं जिन्होंने बहुत तप एवम सत कर्म से यहाँ स्थान बनाया है।इस कि आयु मानवीय गणना में सर्वाधिक है।

(2) **तपलोक**- यह लोक सत्य लोक से 12 करोड़ योजन पर स्थित है। इस लोक में ब्रह्मा के मानस पुत्र सनथ, सनक, सनन्दन एवम सनातन निवास करते है, जिन की शारीरिक अवस्था 5 वर्ष के बालक की है। ये प्रवचन, भजन और तप में लीन रहते है और अपने तप से विभिन्न लोको में विचरण करते रहते है। इन्हें भगवान विष्णु का अवतार भी माना जाता है, इसलिये वैकुंठ तक यह लोक आते जाते रहते है। यह अनीश्वर है अर्थात मृत्यु से परे है। वैकुंठ भगवान विष्णु का निवास माना गया है।

(3) **जनकलोक -** यह लोक तप से आठ करोड़ योजन दूर है। यहाँ वैराज नाम के देवता निवास करते हैं।

(4) **महर्लोक-** यह लोक जनक लोक से दो करोड़ योजन दूर है। यहाँ भृगु आदि सिद्धगण निवास करते हैं। यहां के ऋषिगण भी किसी भी लोक में आ-जा सकते है। तप, कर्म एवम ज्ञान के आधार पर ऋषि- मुनि को कौन सा लोक मिलेगा, यह तय होता है।

(5) **स्वर्लोक (स्वर्ग लोक)** सूर्य से लेकर ध्रुवमण्डल तक जो प्रदेश है उसे स्वर्लोक कहा गया है। इस क्षेत्र में इन्द्र आदि स्वर्गवासी देवता निवास करते हैं। यहाँ में रहने वाले मुख्य 33 देवता है जिन के प्रमुख इंद्र है, यह लोग गंधर्व, अप्सरा, मारुस, वासस, देवदत्त और अन्य दिव्य शक्तियों के साथ रहते है। यहां पर अकल्पनीय धन, इच्छा की पूर्ति करने वाले पेड़, ब्रह्मांड में घूमने के जहाज, विभिन्न आयामो में यात्रा करने की क्षमता, लम्बा निरोगी जीवन उपलब्ध है। यहां की राजधानी अमरावती है। कामधेनु गाय, सफेद हाथी ऐरावत और उड़ने वाला घोड़ा उच्चरेवा - समुन्दर मंथन के बाद जो देवताओ को मिला था, वह यही है।

(6) **भुवर्लोक-** पृथ्वी से लेकर सूर्य तक अन्तरिक्ष में जो क्षेत्र है वह भुवर्लोक कहा गया है। उसमें अन्तरिक्षवासी देवता निवास करते हैं। इन मे रहने वाले देवी देवता, ऋषि-मुनि स्वर्ग और पृथ्वी दोनो जगह विचरण करते है। अपने पूण्य खत्म होने से पृथ्वी लोक में आ जाते है। भुवरलोक में आठ लोक माने जाते है।

* **ध्रुव लोक** - यह आकाश गंगा के मध्य का भाग है।

* **सप्तऋषि लोक**

* **नक्षत्र लोक**

* **शोर मंडल**

* **सूर्यलोक**

* **चन्द्रलोक**

* **राहुकेतु लोक**

* **अंतरिक्ष लोक** - यह आकाश लोक पृथ्वी के कुछ ही ऊपर है, यहां यक्ष - भूत- पिचास का निवास होता है।

(7) **भूलोक**- वह लोक जहाँ मनुष्य पैरों से या जहाज, नौका आदि से जा सकता है। अर्थात हमारी पूरी पृथ्वी भूलोक के अन्तर्गत है। जन्म-मरण, कर्म एवम कर्मफल, पाप-पुण्य एवम मुक्ति के तप आदि का अधिकार इसी लोक में है। अर्थात अन्य सभी लोक कर्मो के भोग के लिये है, किन्तु कर्म करने का अधिकार इसी लोक में रहनेवालो को है। इस मे प्रकृति योगमाया से अपने सत-रज-तम गुण से जीवात्मा के कार्य-कारण के नियम से क्रिया करती है। आदि आदि।

जिस तरह से ऊर्ध्वलोक हैं उसी तरह से सात अधोलोक भी हैं जिन्हें पाताल कहा गया है। इन सात पाताल लोकों के नाम निम्न हैं।

(8) **अताल-** यह हमारी पृथ्वी से दस हजार योजन की गहराई पर है। इसकी भूमि शुक्ल यानी सफेद है। यहां का राजा बालासुर है जो माया का पुत्र है और 96 तरह की माया रच कर रहता है।

(9) **विताल-** यह अतल से भी दस हजार योजन नीचे है। इसकी भूमि कृष्ण यानी काली है। यहां भगवान शिव के रूप स्वरूप में हटकेश्वर अपने पार्षद भूतो के साथ रहते है। यहां हटकी नाम की सोने की नदी बहती है। रहने वाले स्वर्ण से सजे सँवरे रहते है।

(10) **सुताल-** यह विताल से भी दस हजार योजन नीचे है। इसकी भूमि अरुण यानी प्रातःकालीन सूर्य के रङ्ग की है। यहां प्रह्लाद के पौत्र बलि का राज है। सुताल का निर्माण विश्कर्मा ने किया है, एवम बलि सब से पवित्र राक्षस माने गए थे, जिन्हें भगवान विष्णु ने वामन अवतार में दान में तीन पग जमीन मांग कर सुताल भेज दिया था। राजा बलि को विष्णु से वर्ष में एक दिन समस्त लोक के राजा भी होने का वरदान है।

(11) **तलताल -** यह सुताल से भी दस हजार योजन नीचे है। इसकी भूमि पीत यानी पीली है। यहां असुर माया का राज है। ये असुरो के वास्तुकार भी माने जाते है, इन को जादूगरी का गहन ज्ञान है, इस लिये इन के ज्ञान को मायाजाल भी कहते है।

(12) **महाताल-** तलताल से यह दस हजार योजन नीचे है। इसकी भूमि शर्करामयी यानी कँकरीली है। कश्यप ऋषि की पत्नी कद्रू से उत्पन्न अनेक सर वाले सर्प यहाँ निवास करते है, उन में खुक, तक्षक, कालिया, सुसील आदि नाग प्रसिद्ध है।

(13) **रसताल-** यह महताल से दस हजार योजन नीचे है। इसकी भूमि शैली अर्थात पथरीली बतायी गयी है। यह राक्षसों का मुख्य घर माना गया है, यहां से शक्तिशाली दानव और दैत्य देवताओ से दुश्मन ही हुए और उन का देवताओ से युद्ध होता ही रहता है।

(14) **पाताल-** यह रसताल से भी दस हजार योजन नीचे है। इसकी भूमि सुवर्णमयी यानी स्वर्ण निर्मित है। यहां पर सैन्य, कुलिक, महासेनया, सोहित, धनंजय, धृतराष्ट्र, संगसूर, कंपल, अख्तर और देवदत्त आदि अति क्रोधित स्वभाव वाले बड़े बड़े फन्न वाले नाग रहते है, जिन के राजा वासुखि है और यहां की राजधानी का नाम भोगवती है। इस मे मस्तक में मणिया होने से सूरज की रोशनी न होने पर भी खूब प्रकाश रहता है। ऐसा माना गया है कि पाताल लोक स्वर्ग से भी सुंदर , नदियों से भरपूर, सरोवर आदि से भरापूरा है।

इस सब के अतिरिक्त दो और लोक माने गए है

1 - **पितृ लोक** - जिस में मनुष्य के पूर्वज रहते है। जो आत्माये पवित्र होती है, उन्हें पितृ कहते है।

2. **नर्क लोग (यमलोक)** यहाँ जीव को उस के पापो की सजा देने का कार्य होता है, सूर्य पुत्र यम यहां का कार्यभार चित्रगुप्त की मदद से संभालते है। प्रत्येक जीव के कर्मो का लेखा जोखा चित्रगुप्त जी रखते है। जीवात्मा अपने पापों को भोग कर या तो पूण्य के अनुसार अन्य लोक जाती है या पृथ्वी में पुनः जन्म लेती है।

गीता अध्ययन में समस्त लोको की जानकारी विभूतियों को समझने में मदद करती है, क्योंकि प्रत्येक लोक में निवास जीव के कर्मो के फल के अनुसार है, और अपने पाप या पूण्य के फलों को भोगने के बाद जीव को मोक्ष की प्राप्ति के लिये पृथ्वी पर वापस आना ही पड़ता है। क्योंकि मोक्ष का मार्ग पृथ्वी से ही प्राप्त होता है, इसलिये मनुष्य जन्म दुर्लभ है और समस्त देवी देवता इस के लिये तरसते है। किंतु दुर्भाग्य से मनुष्य इस बात को नही समझता और कर्तृत्व और भोक्तत्व भाव मे फस कर पुनः कर्मफलों को भोगने के लिये तैयार होता है, जब कि उस को निष्काम भाव से कर्म करते हुए, ज्ञान द्वारा मोक्ष को प्राप्त करना चाहिये।

विचारणीय बात यह भी है हजारो साल पहले वैदिक संस्कृति को पूर्ण ब्रह्मांड एवम उससे पर का ज्ञान कोरी कल्पना नही था। आज जब भौतिक विज्ञान इन तथ्यों को खोज भी पा रहा है

तो उस मे हमारे वैदिक ग्रंथो के अध्ययन से उन्हें पूरी जानकारी और मदद भी मिलती है। जिसे हम भूलते और भौतिकवाद में अविश्वनीय मान रहे है।

।। हरि ॐ तत सत।। विशेष गीता 10.16 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.17॥

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥

"kathaṁ vidyām ahaṁ yogiṁs,
tvāṁ sadā paricintayan..।
keṣu keṣu ca bhāveṣu,
cintyo 'si bhagavan mayā"..।।

भावार्थ:

हे योगेश्वर! मैं किस प्रकार आपका निरन्तर चिंतन करके आपको जान सकता हूँ, और मैं आपके ईश्वरीय स्वरूप का किन-किन भावों से स्मरण करूँ? (१७)

Meaning:

O Yogin, how shall I know you by remaining constantly engrossed in meditation? And O Lord, by which expressions are you to be meditated upon by me?

Explanation:

Arjuna, having heard just a sample of Ishvara's expressions, was not satisfied with what he had heard. He wanted to know the technique by which he could constantly be reminded of Ishvara, and consequently, remain established in the contemplation of Ishvara. That is why in this shloka, Arjuna asked Shri Krishna to reveal more of his expressions.

Every glorious object becomes an alambanam; means symbol for meditation upon the Lord. And that is why in our culture; we worship anything and

everything in the creation. And when we worship anything, we do not worship the thing by itself; but the things symbolise the Lord is behind; whether we worship the Sun, or moon, or trees or snake or river, each one becomes a pratheekam.

Thus, he implores, “I am inquisitive to know your divine manifestations so that I may be endowed with unfaltering devotion. But the revelation of your personality is impossible to receive without your grace. So please be merciful and reveal your many glories by which I may perceive you.”

When we wake up in the morning, we probably get five to ten minutes, at most, of a calm mind. Then, when our daily routine starts, our mind takes over and we are pulled into a rollercoaster ride of worry and sorrow. In the midst of all this it is difficult to bring in a divine thought for a minute, let alone contemplate on Ishvara constantly. Addressing Shri Krishna as Yogin, one who has the power of sovereignty, Arjuna asked him for a solution to overcome this predicament.

Furthermore, if we were told once that Ishvara is the cause of everything, and we are able to hold on to that fact, we need not have to worry about forgetting Ishvara. But because of our conditioning that has built up over a long period of time, and because of our ego - our sense that “I do everything” - is so strong, we need more support to counter that conditioning. We need a step- by- step approach, a list of Ishvara’s expressions, just like kids have to be told that a TV, a radio, a computer, all operate using electricity.

And once I am a permanent devotee, then my very response to situations in life will be different. Naturally rāga and dveṣa will be heavily neutralised and therefore mental disturbances also will come down. In fact such a virāt bhaktha will become sādanā catuṣṭaya sampannāḥ, effortlessly.

And what is the benefit out of that virāt upasana. Arjuna says: by visualising the viśva rūpa Īśvara, in any such glorious object, I will later come to know your higher nature. Even in Sandhyavandanam, first before they start, they have to take the water in the hands; and they have to look at the water; and chant the mantrās. I do not know whether some of you feel familiar. Water is one of the glorious things is the creation; and you take that water in your hand, and you say all the dēvathās and all the vedas, all the animals, all the insects; you superimpose on that water; and thereafter it is no more inert H2O, but it is Īśvara for me. Thereafter Aapo hishta mayo bhuva thana oorje dadha thana; ... So, I invoke the grace of the Lord who has been invoked in that water. Thus, anything can be taken to invoke the visvarūpa.

Now, if such a list of Ishvara's expressions is needed, it cannot be terse and brief. It needs to be detailed. This is what Arjuna requests in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

व्यस्त कर्मठ जीवन मे जब परमात्मा कण कण में व्याप्त है, अतः उस की उपासना राग और द्वेष में हर स्वरूप में करना सम्भव नही। सगुण उपासना के लिये जब तक परमात्मा के श्रेष्ठ स्वरूप का ज्ञान नहीं, उस के दिव्य गुणों का ज्ञान नहीं तो उपासना में हम किस गुणों की उपासना करेंगे। भगवान की मूर्ति के समक्ष बैठ कर आप किस को अपने ह्रदय में धारण करेंगे, जब चितंन सगुणाकार हो, तो जो समक्ष है उस की किस स्वरूप में परमात्मा का चिंतन माने। सांख्य योग में निर्गुण की उपासना करते हुए उस का चिंतन स्वरूप में किया जाता है एवम जीव अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने का प्रयत्न करता है। किंतु भक्ति योग में स्मरण एवम समर्पण से चिंतन किया जाता है। इसलिये यह स्मरण एवम समर्पण बिना परमात्मा की विभूति जाने कैसे होगा। विभूति यानि जिस को स्मरण करते ही जो भाव उत्पन्न हो, वह भाव परमात्मा के चिंतन का भाव हो। यद्यपि निम्न श्रेणी के जानवर से ले कर उच्च श्रेणी के जानवर को परमात्मा का अंश या स्वरूप माने तो भी

प्रकृति, आकार एवम क्रियाओ में विभिन्नता से उस के चिंतन में एकरूपता नही रहती। अतः इस मे श्रेष्ठ चिंतन के लिये कौन सा रूप श्रेष्ठ होगा, यही अर्जुन समझना चाहता है।

जब हम सुनते है तो उसी क्षण तक ही आनन्द लेते है, सुन कर यदि गुनगुनाते है तो उस का आनंद अधिक होता है। जब विस्तार से अधिक ध्यान से सुनते है और गुनगुनाते है तो वह हमारी दिनचर्या का भाग हो कर हमारा व्यक्त्वि हो जाता है। यह हमारे अंदर गहन हो जाता है और हम स्वयं ही उन विचारों से ओत प्रोत हो जाते है। ऐसा ही कुछ विचार अर्जुन का भगवान की सम्पूर्ण विभूतियों को विस्तार से सुनने का था। अर्जुन को भगवान ने "योगी हो जा" कहा था, इसी को ध्यान में रखते हुए, अर्जुन उन्हें योगिनी अर्थात योग का स्वामी का सम्बोधन करते हुए कहता है कि किस प्रकार मैं आप का चिन्तन या ध्यान करूँ जिस से कि मैं आप को साक्षात् जान सकूँ साधक का लक्ष्य है एकत्व भाव से आत्मा को साक्षात् जानना।

अब तक के अध्यायों में कहीं भी गीता ने ध्यानाभ्यास के लिए किसी नदी के तट पर या एकान्त गुफा में जाकर संन्यास का जीवन व्यतीत करने का समर्थन नहीं किया है। श्रीकृष्ण का मनुष्य को आह्वान कर्त्तव्य कर्म करने के लिए है और अपने इसी व्यावहारिक जीवन में ईश्वरानुभूति में जीने के लिए है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि गीता शास्त्र का उद्घोष महाभारत के समरांगण में उस क्षण हुआ था, जब तत्कालीन समस्त राष्ट्र अपने समय की सब से बड़ी ऐतिहासिक क्रांति वेला का सामना करने के लिए उद्यत थे। यह क्रांति वेला लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ही मूल्यों की निर्णायक थी। अर्जुन कर्त्तव्य पालन के लिए गीताधर्म में पूर्णतया परिवर्तित हो गया था। उसका यह परिवर्तन श्रीकृष्ण को सम्बोधित किये योगिन शब्द से विशेष रूप से दर्शाया गया है। श्रीकृष्ण ऐसे सर्वश्रेष्ठ कर्मयोगी थे, जिन्होंने विविध घटनाओं से परिपूर्ण जीवन में अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी कभी अपने शुद्ध दिव्यस्वरूप का विस्मरण नहीं होने दिया।

योगी तपस्वियों, ज्ञानियों एवम कर्मियों से श्रेष्ठ होता है, इसलिये भगवान में अर्जुन को निष्काम योगी बनने को कहा था। अर्जुन गृहस्थ है अतः गृहस्थ तो भक्ति योगी ही हो सकता है, सांख्य योगी नही। महाराजा जनक ऐसे ही योगी थे। जो परमात्मा के दिव्य स्वरूप को जानता है, उन विभिन्न विभूतियों को पहचानता है, उन का चिंतन करता है एवम जो उन को समर्पित है वो ही भक्ति योगी है।

शिष्य को ज्ञान गुरु से ही मिल सकता है इसलिये अर्जुन अपने अनुरोध का कारण भी बताते हुए कहता है, आप किन किन भावों में मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य हैं व्यावहारिक जीवन जीते हुए और उसकी चुनौतियों का सामना करते हुए, यदि सर्वत्र व्याप्त आत्मा का अखण्ड स्मरण बनाये रखना हो, तो साधक को निश्चित रूप से यह जानना आवश्यक होगा कि वह उस तत्त्व को प्रत्येक वस्तु, वस्तुओं के समूह और मनुष्यों के समाज में कहाँ और कैसे देखे।अर्जुन अपनी इच्छा को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहता है कि यदि भगवान् का उत्तर विस्तृत भी हो, तब भी उन्हें सुनने और समझने में वह थकान नहीं अनुभव करेगा।

यह श्लोक आज के व्यवहारिक जीवन मे महत्वपूर्ण है क्योंकि परमात्मा का चिंतन गृहस्थ जीवन जीने वाले व्यक्ति, जो दिन भर घर, समाज, व्यापार या नोकरी और अपने शारीरिक और मानसिक कार्यो में उलझ कर रह जाता है। वह मन्दिर जाता है तो भी उस का ध्यान क्षण भर के लिये परमात्मा की ओर तो होता है किंतु चिंतन आगे होने वाली कार्यो पर भी होना चाहिए। भजन कीर्तन में भी वह समय देख देखकर शामिल होता है, अर्थात भजन के समय भी चिंतन आगे या पिछले कार्यो पर चलता रहता है। अर्जुन को समर भूमि में युद्ध करने के कर्तव्य कर्म का उपदेश में अपने स्वरूप का चिंतन करने का उपदेश देने का अर्थ यह कदापि नही हो सकता कि वह युद्ध भूमि त्याग कर भजन करने लगे। परमात्मा ने भी उसे हृदय से स्मरण करते हुए, युद्ध करने का निर्देश दिया था अर्थात चिंतन कभी भी कर्म से विमुख होना नही है। जब अपने चारों ओर परब्रह्म ही है, चिंतन करने वाला और चिंतन का विषय और चिंतन का कार्य भी परमात्मा है, तो यह निश्चय ही ऐसा प्रश्न है कि कर्मयोगी परमात्मा का चिंतन किस प्रकार और किस स्वरूप में करे।

चिंतन का आधार श्रद्धा, विश्वास, प्रेम के साथ स्मरण और समर्पण है। परमात्मा की विभिन्न विभूतियों का चिंतन किस प्रकार हो, जिस से वह व्यक्तिगत न हो कर परमात्मा के स्वरूप की हो, इस के लिये चिंतन विभूति के गुण, धर्म, आचरण, चरित्र, कर्मो आदि के आधार पर होना चाहिए एवम चिंतन करने वाले व्यक्ति को उन में जो कुछ भी श्रेष्ठ हो वही अपनाना चाहिये। परमात्मा तो सर्वत्र विद्यमान है तो उस के द्वारा जब उदाहरण के स्वरूप कुछ श्रेष्ठ विभूतियों का वर्णन करने के अर्जुन अनुरोध करते है तो उस का उद्देश्य भी यही है कि उन उत्तम ग्रंथो, व्यक्तियों, प्रकृति एवम स्थान आदि के उच्चतम गुणों को चिंतन द्वारा अपने आचरण, विचार एवम कर्मो में लाना है, जिस से मनुष्य भी परमात्मा की श्रेष्ठ विभूति बन सके। परमात्मा सब मे विद्यमान है किंतु सभी परमात्मा में विद्यमान नही। परमात्मा में विद्यमान होने के लिये परमात्मा की उन महान विभूतियों को जानना अर्जुन के

लिये आवश्यक है, जिस से वह मोक्ष द्वारा परमात्मा में विद्यमान हो सके। राम की पूजा कोई कितनी भी करे किन्तु राम के गुण, धर्म और कर्म से कुछ भी नही अपनाता तो वह राम का चिंतन नही है। गीता का अध्ययन हम कितना भी करे, कितने भी श्लोक पढ़ पढ़ कर कंठस्थ कर ले, जब तक गीता के गहन उपदेश को अपनाते नही, वह गीता का चिंतन नही। कर्मयोगी के लिये भक्तिमार्ग द्वारा विभिन्न विभूतियों का चिंतन कभी भी यह नही हो सकता कि वह उन की मूर्तियां बना कर, माला चढ़ा कर उन की पूजा, भजन कीर्तन और ध्यान लगाना शुरू कर दे और अपने स्वार्थ के लिये उन से मांगना शुरू कर दे और अपने गुण- धर्म , चरित्र, संस्कार, आचरण और व्यवहार में कोई भी उस विभूति का गुण धारण न करे।

संक्षेप में हम कह सकते है कि चिंतन से चरित्र का निर्माण होता है, परमात्मा निर्गुणाकार समस्त जगत में व्याप्त है तो उस के विशिष्ट स्वरूप को उन के गुणों और कार्यों के साथ यदि हम चिंतन करे तो हमारा चरित्र, कार्य और स्वभाव भी उसी के अनुरूप होगा। यह हमे उन गुणों को विकसित करने में सहयोग करेगा जिन से हम अपने कर्तव्य कर्म निष्काम भाव से अर्थात योगी होकर कर पायेंगे। यही आगे हमारे लिए मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त करेगा।

अर्जुन अपने अनुरोध पर परमात्मा से विभूतियों का वर्णन किस प्रकार से करने को कहता है, यह हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.17।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.18॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥

"vistareṇātmano yogaṁ,
vibhūtiṁ ca janārdana..।
bhūyaḥ kathaya tṛptir hi,
śṛṇvato nāsti me 'mṛtam"..।।

भावार्थ:

हे जनार्दन! अपनी योग-शक्ति और अपने ऎश्वर्यपूर्ण रूपों को फिर भी विस्तार से कहिए, क्योंकि आपके अमृत स्वरूप वचनों को सुनते हुए भी मेरी तृप्ति नहीं हो रही है। (१८)

Meaning:

Elaborately describe your yoga and expressions again, O Janaardana. I am not satisfied by listening to your nectar-like (words).

Explanation:

So far, Shri Krishna just gave a taste of Ishvara's expressions. Arjuna clearly was relishing and enjoying hearing these expressions because he compared them to the sweetness of nectar. He wanted to hear them all over again. But this time, he would not be content with hearing so little. He requested Shri Krishna to give a detailed and elaborate description of Ishvara's expressions as well as yoga, the power of maaya that creates many expressions of the one Ishvara.

Arjuna addressed Shri Krishna as "Janaardana" which has two meanings. "Arda" means one who moves, or makes others move. Jana means people, and therefore Janaardana means one who moves people to heaven or hell, in other words, dispenses justice to evildoers. Another meaning of Janaardana is one whom people ask for prosperity and wellbeing.

Arjuna understood that the true nature of Shri Krishna was Ishvara. So, he says, "hey janārdana! kathayaḥ; may you enumerate, narrate, enlist, what? ātmanaḥ yōgam". Atma here is reflective pronoun, your own yōga śakti, potentiality, What potentiality? the potentiality to become the universe.

Arjun says, "… hearing your nectar," instead of "… hearing your words that are like nectar." He has omitted "your words that are like." This is a literary technique called atiśhayokti, or hyperbole (statement of extreme expression), in which the subject of comparison is omitted. He now cheers him, by

saying bhūyaḥ kathaya, “Once more! My thirst for hearing your glories is not satiated.”

Now as far as amritam, nectar, is concerned, any narration or statement concerning Krishna is just like nectar. And this nectar can be perceived by practical experience. Modern stories, fiction and histories are different from the transcendental pastimes of the Lord in that one will tire of hearing mundane stories, but one never tires of hearing about Krishna. It is for this reason only that the history of the whole universe is replete with references to the pastimes of the incarnations of Godhead. The Puranas are histories of bygone ages that relate the pastimes of the various incarnations of the Lord. In this way the reading matter remains forever fresh, despite repeated readings.

With this shloka, Shri Krishna concluded his statements and requests. Starting with the next shloka, Shri Krishna will provide a total of 82 vibhootis or expressions of Ishvara. Most of these are drawn from the Indian Vedic and Puraanic tradition since Arjuna would be easily able to identify with and connect with those examples. We can try to look for similarities in the present time so that we are also able to connect with those.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन यहां श्री कृष्ण से योग एवम विभूतियों को जो पहले भी बताया जा चुका था, उसे विस्तार से सुनना चाहता है। भगवान् ने दसवाँ अध्याय आरम्भ करते हुए कहा कि तू फिर मेरे परम वचन को सुन। ऐसा सुनकर भगवान् की कृपा और महत्त्व की तरफ अर्जुन की दृष्टि विशेषता से जाती है और अर्जुन कहते हैं कि आप अपने योग और विभूतियोंको विस्तारपूर्वक फिर से कहिये क्योंकि आप के अमृतमय वचन सुनते हुए तृप्ति नहीं हो रही है। मन करता है कि सुनता ही चला जाऊँ।

परमात्मा ने अध्याय 7 से 9 के मध्य भी अपनी विभूतियों के अक्षर ॐ, सभी के पिता और मूल बीज के रूप आदि में कहा था। इसलिए किसी शिक्षक, प्रवक्ता या उपदेशक से किसी बात को पुनः दोहराने के अनुरोध को कहना भी अपने आप मे एक कला है। क्योंकि इस से

शिक्षक, प्रवक्ता या उपदेशक के अंदर यह भाव भी आ सकता है कि उस का श्रोता उसे ध्यान से नही सुन रहा जिस से उस की रुचि ज्ञान प्रदान करने की कम हो सकती है। इसलिये अर्जुन भगवान श्री कृष्ण को जनार्दन कह सम्बोधित करते है जिस का अर्थ है सब को साथ ले कर उच्च मार्ग में चलने वाले, और उन के वचनों को अमृतमय कहते है, अर्थात उन्होंने पहले कहे वचनों की ध्यान से सुना है। उन का आग्रह उस की जिज्ञासा को प्रेरित करता है, जिस में भगवान से उन के योग और विभूतियों को अधिक विस्तार से कहने को कहा है।

इस के अतिरिक्त अर्जुन "आप की वाणी अमृत के समान है" यह कहने के स्थान पर "आप की अमृत वाणी सुनकर" जैसे शब्दों का प्रयोग करता है। वह यह नहीं कहता "आप की वाणी उस के समान है।" या "आप की वाणी उस के जैसी है।" यह साहित्यिक विधा है जिसे अतिशयोक्ति कहते हैं जिसमें किसी गुण, स्थिति या वस्तु का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया जाता है। अब वह उन्हें 'भूयः कथय' जिसका अर्थ 'एक बार और' कहकर प्रसन्न करता है।

नौमिषारण्य के ऋषियों ने सुत गोस्वामी से श्रीमद्भागवतम् की कथा सुनते हुए ऐसे ही कथन व्यक्त किए थे।

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे। यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे।।(श्रीमद्भागवतम्-1.1.19)

"वे जो भगवान श्रीकृष्ण के शरणागत हैं, भगवान की दिव्य लीलाओं का श्रवण करने से कभी तृप्त नहीं होते। इन लीलाओं का अमृतरस ऐसा है कि इनका जितना अधिक आस्वादन किया जाता है ये उतना अधिक आनन्द प्रदान करती हैं।"

दर्शनशास्त्र के तथा अन्य किसी विषय के विद्यार्थी में भी, सर्वप्रथम प्रखर जिज्ञासा का होना अत्यावश्यक है। विषय को जानने और समझने की इस जिज्ञासा के बिना कोई भी ज्ञान दृढ़ नहीं होता है और न विद्यार्थी के लिए वह लाभदायक ही हो सकता है। आत्मविकास के आध्यात्मिक ज्ञान में यह बात विशेष रूप से लागू होती है क्योंकि अन्य ज्ञानों के समान, न केवल इसे ग्रहण करना है बल्कि धारण भी करना है। **यह आत्मज्ञान होने पर उसे अपने जीवन में दृढ़ता से जीना भी होता है। इसलिए श्रवण की इच्छा को एक श्रेष्ठ और आदर्श गुण माना गया है, जो वेदान्त के उत्तम अधिकारी के लिए अनिवार्य है।** इस गुण के होने से ज्ञानमार्ग में प्रगति तीव्र गति से होती है। पाण्डुपुत्र अर्जुन इस श्रेष्ठ गुण से सम्पन्न था जो कि उसके इस कथन से स्पष्ट होता है कि आप के अमृतमय वचनों को सुन कर मेरी तृप्ति नहीं होती है। इस में कोई सन्देह नहीं कि वेदान्त का शुद्धिकारी प्रभाव रुचिपूर्वक श्रवण

करने वाले सभी बुद्धिमान विद्यार्थियों पर पड़ता है। एक सच्चे ज्ञानी गुरु के मुख से आत्मतत्त्व का उपदेश सुनकर प्रारम्भ में शिष्य को होने वाला आनन्द क्षणिक उल्लास ही देता है, जो स्थिर नहीं रह पाता। जब वह शिष्य प्रवचन के बाद अकेला रह जाता है, तब उसका मन पुन अनेक कारणों से अशान्त हो सकता है। **इसलिये श्रवण किये हुए प्रत्येक शब्द को मनन करना भी उतना ही आवश्यक है।** और फिर भी, कितना ही क्षणिक आनन्द क्यों न हो, उस मे जिज्ञासा, श्रवण एवम मनन के कारण उस की उस विषय के प्रति रुचि एक व्यसन के समान बढ़ती ही जाती है। वेदान्त प्रवचनों के श्रवणार्थ इस अधिकाधिक अभिरुचि को यहाँ स्पष्ट दर्शाया गया है। यद्यपि यह साधना है, साध्य नहीं, तथापि, निसन्देह यह एक शुभ प्रारम्भ है। जिन लोगों को तत्त्वज्ञान के बौद्धिक अध्ययन से ही सन्तोष का अनुभव होता हो, वे भी निश्चय ही उन सहस्रों लोगों से श्रेष्ठतर हैं, जो दिव्य आत्मस्वरूप को दर्शाने वाले एक भी आध्यात्मिक प्रवचन को नहीं सुन सकते या सह नहीं सकते।

यहां भक्ति योग पढ़ रहे है अतः योग का अर्थ चित्त वृति निरोध न करते हुए परमात्मा के दिव्य गुण से लेंगे क्योंकि प्रकरण विभूति योग है। जैसे सेंधवा यदि भोजन करते समय मांगा जाए तो उस का अर्थ नमक होगा न कि घोड़ा। प्रकरण का अर्थ ही निर्णायक होता है। अतः योग का अर्थ परमात्मा की योगमाया से है जो सातवे अध्याय के 25वे श्लोक में परमात्मा के कहे वचन को ध्यान में रख कर कहा गया है, जिस में परमात्मा कहते है **"जो मूढ़ मनुष्य मेरे को अज और अविनाशी ठीक तरह से नहीं जानते (मानते), उन सब के सामने योगमाया से अच्छी तरह से आवृत हुआ मैं प्रकट नहीं होता। यह मोहित लोक (मनुष्य) मुझ जन्मरहित, अविनाशी को नहीं जानता है।"**

विभूति का अर्थ उस दिव्य स्वरूप, भाव एवम गुणों का है जो परमात्मा के स्वरूप को, गुणों को, उन के भाव को एवम उन के चिंतन को स्मरण एवम समर्पित किया जा सके। मनुष्य जन्म अपूर्ण है अतः इस मे गुण एवम अवगुण दोनो की होते है, विभूति का अर्थ उन के गुणों से उस को जानना और अनुसरण करना। उन के अवगुणों को विस्मृत करना। यदि किसी विभूति के अवगुणों का वर्णन कर के हम उस की आलोचना करते है, तो हम अपनी ही कमजोरियों को उजागर करते है, जो हमे प्रभावित करती है। यह अक्सर हम आलोचकों के लेख में पढ़ते है। जब हम करुणा, भक्ति, दया, धृणा, ईर्ष्या आदि के चित्र, लेख या घटना, वीडियो आदि देखते है तो ह्रदय में जिस को देख कर अधिक भावुकता उत्पन्न हो, वही हमारा स्वावभिक गुण होता है, यह गुण जितना सात्विक होगा, उतना ही हम परमात्मा की विभूतियों को अधिक चिंतन के साथ पढ़ पाएंगे और उच्च स्तर को प्राप्त कर पाएंगे।

किसी भी विभूति के सद्गुण हमेशा उस के अवगुण से अधिक होते है, जिस के कारण वह विभूति परमात्मा के अत्यधिक निकट होती है। विभूतियों को विस्तार से वर्णन सुनने की इच्छा का अर्थ यही है, हम अधिक से अधिक उन भाव, विचारो, कर्म, ज्ञान को प्राप्त कर सके, जिन से हमारा व्यक्तित्व भी उच्चतर स्तर को प्राप्त हो। किसी की बुराई करना सरल है किंतु उस की अच्छाइयों को समझ कर अपनाना कठिन।

जैसे हम जेरोक्स कहते ही फ़ोटो कॉपी या प्रतिलिपि की समस्त कंपनियों के उस उत्पाद को समझ जाते है वैसे ही विभूति से उस विषय एवम पदार्थ संबंधित सभी गुण उस विभूति से समझ जाए। इस में जो श्रेष्ठ है वो दिव्य है।

जीवन मुक्त महामुनि जेऊ।

हरि गुन सुनहि निरन्तर तेऊ।।

मुक्त जीव कभी भी भगवान की कथा से तृप्त नही होते। अतः जब भी मौका मिले हरि कथा में लीन रहते है, **अर्जुन भी उपदेशामृत पीने के लिए तृप्त नही है इसलिये वो विस्तार से समस्त योगमाया और विभूतियों को जानना चाहता है, जिस से उस को कोई शंका न रहे।**

अर्जुन के चिंतन करने की जिज्ञासा पूर्व श्लोक में प्रकट हो चुकी है, अतः चिन्तन के स्वरूप को जानने की जिज्ञासा वह अब प्रकट करते है। ज्ञान को रुचि एवम जिज्ञासा, श्रवण, मनन एवम शंका रहित हो कर ही प्राप्त करना चाहिए।

व्यवहार में जिज्ञासा और रुचि, श्रवण करने की इच्छा, गुरु के प्रति सम्मान और इसी सम्मान में किसी कही हुई बात को पुनः दोहराने के अनुग्रह को कहने की कला ही शिष्य का ज्ञान मार्ग प्रशस्त करती है। जो शिष्य गुरु या प्रवक्ता के प्रति सम्मान नही करते या जो स्वयं को अत्यधिक ज्ञानी मानते हुए, गुरु से प्रश्न गुरु के ज्ञान की परीक्षा की भांति पूछते है, उन के लिए गुरु भी ज्ञान देते वक्त उदार नहीं होता। इसी प्रकार जब ईश्वर को अपने समक्ष पा कर अर्जुन अपने युद्ध में जीतने या सांसारिक सुखों की मांग नही करते हुए, उन के दिव्य स्वरूप और परमात्मा को जानने की चेष्टा करता है। गीता जैसा अद्वितीय ग्रंथ को पढ़ते हुए, हम में से पता नही, कितने लोग ज्ञान की उपासना करते है और कितने अपने लिए सुख, शांति और समृद्धि को तलाशते है। इसी प्रकार परमात्मा की विभूतियों को कौन कैसे दिखेगा और समझेगा, पता नहीं।

अर्जुन की प्रार्थना स्वीकार कर के भगवान् अब आगे के श्लोक से अपनी 82 विभूतियों और योग को कहना आरम्भ करते हैं, जिसे हम आगे पढ़ते है।

।।हरि ॐ तत सत।। 10.18।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.19॥

श्रीभगवानुवाच,
हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥

"śrī-bhagavān uvāca,
hanta te kathayiṣyāmi,
divyā hy ātma-vibhūtayaḥ..।
prādhānyataḥ kuru-śreṣṭha,
nāsty anto vistarasya me"..।।

भावार्थ:

श्री भगवान ने कहा - हे कुरुश्रेष्ठ! हाँ अब मैं तेरे लिये अपने मुख्य अलौकिक ऎश्वर्यपूर्ण रूपों को कहूँगा, क्योंकि मेरे विस्तार की तो कोई सीमा नहीं है। (१९)

Meaning:

Shree Bhagavaan said:

Of course. I will tell you my most significant divine expressions, O best of the Kurus. For there is no end to the extent of my expressions.

Explanation:

So far, Arjuna expressed interest and enthusiasm for hearing Ishvara's manifestations and expressions in detail. Shri Krishna, delighted with Arjuna's request, replied by saying **"hanta".** The word hanta has three meanings. It is used to express excitement, wonder or dejection. In this context, Shri Krishna was happy and eager to speak about Ishvara's glories, so the

meaning here is with regards to excitement. So, **hanta** means very well; OK.; fine; it is just a particle very well. I shall certainly narrate; enumerate, enlist; ātmavibhūtayaḥ; my glories; here also the word ātma is reflective pronoun; my own glory.

The Amar Kosh (ancient Sanskrit dictionary that is widely respected) defines vibhūti as vibhūtir bhūtir aiśhwaryam (power and wealth). God's powers and wealth are unlimited. Actually, everything about him is unlimited. He has unlimited forms, unlimited names, unlimited abodes, unlimited descensions, unlimited pastimes, unlimited devotees, and so on.

Hence, the Vedas refer to him by the name anant (unlimited) **"God is infinite and manifests in innumerable forms in the universe. Although he administers the universe, he is yet the non-doer."**

The Ramayan states: **"God is unlimited, and the pastimes he enacts in his unlimited Avatārs are also unlimited."**

Sage Ved Vyas goes to the extent of saying: **"Those who think they can count the glories of God have a childish intellect. We may be successful in counting the specks of dust on the crest of the earth, but we can never count the unlimited glories of God."**

Therefore, Shree Krishna says here that he will only be describing a small fraction of his vibhūtis. And what type of glory? divyāḥ; which are extra-ordinary, because even ordinary things are Bhagavān's glories only.

Let us go back to our electricity example. There are thousands upon thousands of objects that use electricity. It is impossible to enumerate all of them. But it is possible to list those objects that are mighty, powerful, or have the capacity to elicit wonder and awe. Similarly, Shri Krishna admitted that though it would not be possible to list all of Ishvara's glories and

expressions because they are infinite. However, he would be able to list the most significant ones.

As we go through the list of Ishvara's expressions in the upcoming shlokas, we may tend to get carried away by the richness of the stories, the mythology, the history and so on. While that is good and has its place, let us not forget the main point, which is to keep our mind established in the thought that "Ishvara is in everything".

।। हिंदी समीक्षा ।।

अमरकोष (अति प्रतिष्ठित प्राचीन संस्कृत शब्द कोष) में विभूति की परिभाषा 'विभूतिर भूतिर ऐश्वर्यम' (शक्ति और समृद्धि) के रूप में उल्लिखित है। भगवान की शक्तियाँ और ऐश्वर्य अनन्त हैं। वास्तव में भगवान से संबंधित सभी वस्तुएँ अनन्त हैं। उनके अनन्त रूप, अनन्त नाम, अनन्त लोक, अनन्त अवतार, अनन्त लीलाएँ, अनन्त भक्त और सब कुछ अनन्त हैं। इसलिए वेद उन्हें अनन्त नाम से संबोधित करते हैं।

अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता (श्वेताश्वरोपनिषद्-1.9) "भगवान अनन्त हैं और ब्रह्माण्ड में अनन्त रूप लेकर प्रकट होते हैं। यद्यपि वे ब्रह्माण्ड के शासक हैं तथापि अकर्ता हैं।"

महर्षि वेदव्यास इससे भी परे जाते हुए वर्णन करते हैं

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः। रजांसि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित् कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः।।(श्रीमद्भागवतम्-11.4.2) "वे जो भगवान के गुणों की गणना करने की बात करते हैं वे मंदबुद्धि हैं। हम धरती पर बिखरे रेत के कणों को गिनने में सफलता पा सकते हैं लेकिन हम भगवान के अनन्त गुणों की गणना नहीं कर सकते"

रामचरितमानस में भी वर्णन किया गया है

हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥ रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥ "भगवान और उसकी लीलाएँ अनन्त हैं। वे अवतार लेकर जो लीलाएँ करते हैं, वे भी अनन्त हैं।"

गोस्वामी तुलसीदास की यह पंक्तियां परमात्मा की अनन्त विभूतियों की द्योतक है। सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा के संकल्प से उत्पन्न है अतः इस के ऐष्वर्य, सुख, आनन्द, सौंदर्य एवम

आध्यात्मिक, आत्मिक एवम सांसारिक विभूतियों की कोई गणना नही हो सकती। परमात्मा प्रत्येक जड़-चेतन में होने से श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे यहाँ केवल मुख्य मुख्य उदाहरण के रूप कुछ विभूतियों को अर्जुन को बताने की बात कहते है।

गीता में अर्जुन का भगवद्विषयक ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। इस दसवें अध्याय में जब भगवान् ने यह कहा कि मेरी विभूतियों का अन्त नहीं है, तब अर्जुन की दृष्टि भगवान् की अनन्तता की तरफ चली गयी। उन्होंने समझा कि भगवान् के विषय में तो मैं कुछ भी नहीं जानता क्योंकि भगवान् अनन्त हैं, असीम हैं, अपार हैं। परन्तु अर्जुन ने भूल से कह दिया कि आप अपनी सब की सब विभूतियाँ कह दीजिये। तब भगवान् कहते हैं कि ठीक है! किंतु मैं अपनी दिव्य विभूतियों जो असाधारण है, केवल उन्हीं को संक्षेप से कहूँगा क्योंकि मेरी विभूतियों का अन्त नहीं है।

दिव्य विभूतियों का वर्गीकरण में किसी को कम या नगण्य नहीं समझना चाहिए। क्योंकि पलकों का झपकना या हृदय का धड़कना साधारण सा दिखते हुए भी, असाधारण है। किंतु यहां हम दिव्य विभूतियों में उन महान व्यक्तित्व को समझेंगे, जिन्होंने सृष्टि यज्ञ चक्र में लोकसंग्रह हेतु अद्वितीय कार्य किया हो। क्योंकि परमात्मा ही योगमाया से यह सृष्टि का पालन और संचालन करता है, इसलिए इस सृष्टि में लोकसंग्रह के कार्य अद्वितीय जो कुछ भी है, वही दिव्य विभूति है।

भगवान् श्रीकृष्ण का यह विस्तृत एवं व्याख्यापूर्ण उत्तर, एक एक वस्तु और व्यक्ति में तथा उन के समूह में आत्मा की वास्तविक पहचान का वर्णन करता है। यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि अपनी विभूति और योग का वर्णन करते समय भगवान् श्रीकृष्ण निम्नलिखित दो बातों को बताने का विशेष ध्यान रखते हैं। (क) प्रत्येक वस्तु में अपना सर्वोच्च महत्व (ख) उनके बिना किसी भी एक वस्तु या समूह का सामञ्जस्य पूर्ण अस्तित्व सम्भव नहीं हो सकता। इस खण्ड का प्रारम्भ जिस हन्त शब्द से होता है, वह अर्जुन के प्रति गीताचार्य के प्रेमपूर्ण सहानुभूति को दर्शाता है तथा उस से अर्जुन में प्रतीत होने वाली अक्षमता के प्रति भगवान् की चिन्ता भी व्यक्त होती है, क्योंकि उस अक्षमता के कारण वह उस तत्व को नहीं अनुभव कर पा रहा था जो उसके अत्यन्त समीप है, उसका स्वरूप ही है। हन्त शब्द को इस खण्ड के प्रारम्भ का केवल सूचक मानने में उस में निहित गूढ़ अभिप्राय का लोप हो जाने के कारण वह अर्थ स्वीकार्य नहीं हो सकता।समष्टि और व्यष्टि उपाधियों के द्वारा इस बहुविध सृष्टि के रूप में व्यक्त हुए आत्मा के विस्तार का अन्त नहीं हो

सकता। इसलिए उस का वर्णन करना असंभव है, तथापि करुणासागर भगवान् श्रीकृष्ण अपने शरणागत् शिष्य अर्जुन के प्रति अपनी असीम अनुकम्पा के कारण इस असंभव कार्य को अपने हाथ में लेते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि उनके विस्तार का कोई अन्त नहीं है फिर भी वे अर्जुन को अपनी प्रधान विभूतियाँ बतायेंगे।

भौतिक जगत् में यह एक अनुभूत सत्य है कि सूर्यप्रकाश सभी वस्तुओं की सतह पर से परावर्तित होता है चाहे वह पाषाण हो या दर्पण किन्तु दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब या परावर्तन अधिक स्पष्ट और तेजस्वी होता है। भगवान् वचन देते हैं कि वे ऐसे दृष्टान्त देंगे जिन में दिव्यता की अभिव्यक्ति के साक्षात् दर्शन हो सकते हैं।

व्यवहारिकता में यह अध्याय विभिन्न विभूतियों के माध्यम से परमात्मा के गुणों का विश्लेषण है, जिसे किसी भी जीव को अपने जीवन में धारण करना चाहिये। किन्तु जीव उन के गुणों को धारण करने की बजाए, व्यक्ति पूजा करते हुए, उन से अपने सांसारिक स्वार्थ और परमार्थ की अपेक्षा शुरू कर देते है। परमात्मा का भी यही कहना है कुछ ज्ञानी अज्ञान के वशीभूत को इन्हें देवता मान कर पूजते है और इस लोक एवं विभिन्न लोको की सुख सुविधा की याचना करते है। उन लोगो की पूजा को भी मैं उन्ही देवताओ के माध्यम से स्वीकार कर के देवताओ के सामर्थ्य के अनुसार उन्हें फल भी देता हूँ किन्तु मोक्ष के लिये उन्हें मुझ तक ही पहुचना होगा। विभूतियों का सांसारिक लोग जब वंशज बन कर उन के आचरण, कर्म, ऐष्वर्य एवम तप का मिथ्या गौरव लेने की कोशिश करते है, तो भी वह उन्हें तब तक प्रदान नही होता,जब तक वह स्वयं को तप, आचरण और कर्म से उस सीमा तक नही ले जाता। भाई, बहन, पुत्र, पुत्री, माता, पिता, गुरु, शिष्य, जाति, धर्म और संप्रदाय सांसारिक बन्धन हो सकते है किंतु परमात्मा से सभी जीव का सम्बंध परमात्मा और उस के अंश का स्वतंत्र सम्बन्ध ही है। जो अंश या जीवात्मा मुक्ति के लिये परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करता है, परमात्मा उसी का योगक्षेम वहन करते है। इसलिये विभूतियों का वर्णन तुलात्मक स्वरूप में कुछ उच्चतम विभूतियों में श्रेष्ठतम विभूति बता कर किया गया है। यही कारण है कि आप चाहे अग्रवाल, शर्मा, राजकुल या किसी महान नेता या महान संत, क्षत्रिय, ब्राह्मण वंश में जन्म लेने से अपने आप को कितना भी गौरवशाली महसूस करे या समाज मे अपना कितना भी गौरवगान करते रहे, किन्तु आप को अपना वास्तविक गौरव आप के कुल की श्रेष्ठतम विभूतियों के तप, कर्म और आचरण द्वारा लोकसंग्रह में देश, समाज और धर्म के लिए निष्काम हो कर किए हुए कार्यों से ही प्राप्त होगा।

भगवान् कहते हैं कि मैं अपनी दिव्य, अलौकिक, विलक्षण विभूतियों को तेरे लिये कहूँगा। **जिस किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना आदि में जो कुछ भी विशेषता दीखती है, वह,वस्तुतः भगवान् की ही है। इसलिये उस विशिष्टता को भगवान् की ही देखना दिव्यता है और वस्तु, व्यक्ति आदि की देखना अदिव्यता अर्थात् लौकिकता है।** विभूतियाँ और योग - इन दोनों में से पहले भगवान् बीसवें श्लोक से उनतालीसवें श्लोक तक अपनी बयासी विभूतियों का वर्णन करते हैं। फिर योग के विषय मे बताते है, इसे हम परमात्मा को ध्यान करते हुए, उन की विभूतियों को उन के तप,कर्म और आचरण को ध्यान में रखते हुए, आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.19।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.20॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥

"aham ātmā guḍākeśa,
sarva- bhūtāśaya- sthitaḥ..।
aham ādiś ca madhyaṁ ca,
bhūtānām anta eva ca"..।।

भावार्थ:

हे अर्जुन! मैं समस्त प्राणीयों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ और मैं ही सभी प्राणीयों की उत्पत्ति का, मैं ही सभी प्राणीयों के जीवन का और मैं ही सभी प्राणीयों की मृत्यु का कारण हूँ। (२०)

Meaning:

I am the self, established in the hearts of all beings, O Gudakesha. I am the beginning, middle and also the end of all beings.

Explanation:

Addressing Arjuna as Gudaakesha, the conqueror of sleep, Shri Krishna begins to describe the 82 expressions of vibhootis of Ishvara from this shloka onwards. He lists the two most important ones first.

caitanyam is the fundamental glory and nature of God; because that caitanyam alone makes the entire living beings, species alive; If a plant is alive; animal is alive, if a human being is alive; and capable of discussing this topic, it is only because of caitanyam; Every organ is an organ only because of sentiency; and that sentiency is my gift because I am caitanya svarūpaḥ; chidrūpaḥ.

Shree Krishna declares that he is not far from the soul—in fact he is closer than the closest. The ātmā or eternal soul is enthroned in the etheric heart of all living beings. The Vedas state: ya ātmani tiṣhṭhati “God is seated within our soul.” Seated inside, he grants the power of consciousness and eternality to the soul. If he were to subtract his power, our soul itself would become insentient and perish. We souls are thus eternal and sentient, not by our own power, but because the supremely sentient and eternal God is seated within and is granting his powers to us. Hence, Shree Krishna declares that he is situated in the heart of all living beings.

He says that Ishvara is the self, the “I” that is in the hearts of every being in the universe. Ishvara is also the start, middle and end of all beings in the universe.

So, what exactly does “self” mean? Let us try to understand its opposite meaning first. When we treat a thing or a person as something different from us, something external to us, then we are creating a subject- object relationship where the subject is our "I" and the object is "him" or "her".

For instance, if we take an acquaintance out to dinner, for example, we may ask him to pay his bill separately. There is a sense of separateness

between us and the acquaintance. Separating, externalizing, objectifying - all this is the opposite of self- hood.

But if we take our spouse or our child to dinner, we don't even think twice to pay for their dinner. This is because we do not consider a spouse or a child different or external to us. The sense of self- hood is greater here than with a stranger or with an acquaintance. Shri Krishna says that when this sense of selfhood expresses itself in our hearts, we should know that it is Ishvara's primary expression. If we can remember this constantly, if we can treat everything and everyone as no different than ourselves, we do not have to remember any other expression of Ishvara. We are done.

So, what is the practical implication of understanding Ishvara in this manner? Our sense of I- ness and my- ness automatically drops. There will be nothing in us that asserts "my will", "my plan", "my thinking", "I am going to do this" and so on. It will all become Ishvara's will, Ishvara's plan, Ishvara's thinking, Ishvara's doing. All worries and anxieties will disappear because the "I" who worries is no longer present.

If we are not able to comprehend Ishvara as our own self, then Shri Krishna provides another expression of Ishvara. He says that we should think of Ishvara as the one who creates, sustains, and dissolves all the names and forms in the universe, just like the ocean creates, sustains and dissolves all waves. If we can think in this manner, Ishvara becomes all-pervading, ever present at all times.

Shree Krishna further states that he is the beginning, middle, and end of all living beings. They have emanated from him, and so he is their beginning. All life that exists in creation is sustained by his energy, and so he is the middle. And those who attain liberation go to his divine abode to live eternally with him. Hence, God is also the end of all living beings.

Now, thinking Ishvara as the self, or as the beginning, middle and end of all beings, is difficult when we are beginners. For most of us, it is easier to see Ishvara in tangible people and objects. We will see those types of expressions in the following shlokas.

।। हिंदी समीक्षा ।।

वैज्ञानिक विचारपद्धति से शोधकार्य करने का एक सुप्रशिक्षित प्राध्यापक, अनुसंधान के अपने प्रिय विषय की चर्चा का प्रारम्भ एक संक्षिप्त व सारपूर्ण कथन के साथ करता है। तत्पश्चात् वह उस विषय का विस्तार से विचार कर के युक्तियुक्त विवेचन के द्वारा अन्त में उसी प्रारम्भिक कथन के निष्कर्ष पर पहुँचता है। परमात्मा अपनी विभूतियों को बताने से पहले उस को समझने की विधि बताते है। **वार्तालाप का सब से बड़ा सिंद्धान्त यही है कि वक्ता एवम श्रोता की मानसिक स्थिति एक सी हो एवम वह उस को उसी प्रकार समझे जैसे बोला जा रहा है।** भगवान श्री कृष्ण कुशल प्रवक्ता है एवम अर्जुन श्रद्धानत श्रोता, इसलिये यह स्पष्टीकरण आवश्यक भी है। अतः किसी भी प्रकार का संशय न हो, विभूतियों का वर्णन अपने जगत की उत्पत्ति के सिंद्धान्त संकल्प -विकल्प से करते है। इसलिये पूरे ब्रह्मांड में समस्त भूतो में आत्मतत्व रूप में परमात्मा ही उपस्थित है।

विभूतियों के वर्णन में प्रथम विभूति यही चेतन अर्थात आत्मा है, जो हमे हमारे होने का बोध कराती है, जिस के माध्यम से हम संसार मे रह कर संसार मे विभिन्न प्राणियों से व्यवहार करते है। इस संसार मे जन्म, मृत्यु, वृद्धि, क्षय आदि से हर प्राणी को गुजरना पड़ता है। यह चेतन अवस्था जिस से हम ज्ञान भी प्राप्त करते है, परमात्मा की सर्वाधिक व्याप्त महत्वपूर्ण विभूति है। जिसे आत्मा भी कहा जाता है।

भगवान् का चिन्तन दो तरह से होता है (1) साधक अपना जो इष्ट मानता है, उसके सिवाय दूसरा कोई भी चिन्तन न हो। कभी हो भी जाय तो मन को वहाँ से हटाकर अपने इष्टदेव के चिन्तन में ही लगा दे और (2) मन में सांसारिक विशेषता को लेकर चिन्तन हो, तो उस विशेषता को भगवान् की ही विशेषता समझे। इस दूसरे चिन्तन के लिये ही यहाँ विभूतियों का वर्णन है। तात्पर्य है कि किसी विशेषतो को लेकर जहाँ कहीं वृत्ति जाय, वहाँ भगवान् का ही चिन्तन होना चाहिये, उस वस्तु व्यक्ति का नहीं। इसी के लिये भगवान् विभूतियों का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि वे आत्मा से दूर नहीं हैं बल्कि वास्तव में वे आत्मा के निकट से निकटस्थ हैं। आत्मा या शाश्वत आत्मा सभी जीवों के ईश्वरीय हृदय में स्थित है। **वेदों में वर्णन है-"य आत्मनि तिष्ठति" अर्थात "भगवान हम सभी जीवों की आत्मा में स्थित हैं।"** वे भीतर बैठकर आत्मा को चेतना शक्ति और अमरता प्रदान करते हैं। यदि वे अपनी शक्तियों को कम कर दें, तब हम आत्माएँ जड़वत् और नष्ट हो जाएगी। इसलिए हम जीवात्माएँ अपनी स्वयं की शक्ति से अविनाशी और चेतन नहीं होती अपितु परम चेतन और अविनाशी भगवान की कृपा से चेतन रहती हैं इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे सभी जीवों के हृदय में रहते हैं। हमारी आत्मा भगवान का शरीर है जो सब आत्माओं की आत्मा अर्थात परमात्मा हैं। **श्रीमद्भागवतम् में भी ऐसा वर्णन किया गया है हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणा। मात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम्।।(श्रीमद्भागवतम्-5.18.13) "भगवान सभी जीवों की आत्मा की आत्मा है।"**

यहाँ भगवान् ने अपनी सम्पूर्ण विभूतियों का सार कहा है कि सम्पूर्ण प्राणियों के आदि, मध्य तथा अन्त में मैं ही हूँ। यह नियम है कि जो वस्तु उत्पत्ति विनाशशील होती है, उसके आरम्भ और अन्त में जो तत्त्व रहता है, वही तत्त्व उस के मध्य में भी रहता है (चाहे वह दीखे या न दीखे) अर्थात् जो वस्तु जिस तत्त्व से उत्पन्न होती है और जिस में लीन होती है, उस वस्तु के आदि, मध्य और अन्त में (सब समय में) वही तत्त्व रहता है। जैसे, सोने से बने गहने पहले सोना रूप होते हैं और अन्त में (गहनों के सोने में लीन होने पर) सोनारूप ही रहते हैं तथा बीच में भी सोना रूप ही रहते हैं। केवल नाम, आकृति, उपयोग, माप, तौल आदि अलग अलग होते हैं और इन के अलग अलग होते हुए भी गहने सोना ही रहते हैं।

वेदों में प्रदत्त भगवान की विभिन्न परिभाषाओं में से एक वर्णन इस प्रकार है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। (तैत्तरीयोपनिषद-3.1.1) "भगवान वह है जिससे सभी जीवों की उत्पत्ति हुई है। भगवान वह है जिसमें सभी जीव स्थित हैं। भगवान वह हैं, जिसमें सभी जीव लीन हो जाएंगे।"

ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी आदि में भी परमात्मस्वरूप थे और अन्त में लीन होने पर भी परमात्मस्वरूप रहेंगे तथा मध्य में नाम, रूप, आकृति, क्रिया, स्वभाव आदि अलग अलग होने पर भी तत्त्वतः परमात्मस्वरूप ही हैं। यह बताने के लिये ही यहाँ भगवान् ने अपने को सम्पूर्ण प्राणियों के आदि, मध्य और अन्त में कहा है।भगवान् ने विभूतियों के इस प्रकरण में आदि, मध्य और अन्त में , तीन जगह साररूप से अपनी विभूतियों का वर्णन किया है।

इसी विभूति को बार बार कहा गया, क्योंकि यह परमात्मा और जीव के विषय की बीज विभूति है। पहले इस बीसवें श्लोक में भगवान् ने कहा कि सम्पूर्ण प्राणियों के आदि, मध्य और अन्त में मैं ही हूँ बीच के बत्तीसवें श्लोक में कहा कि सम्पूर्ण सर्गों के आदि, मध्य और अन्त में मैं ही हूँ और अन्त के उनतालीसवें श्लोक में कहा कि सम्पूर्ण प्राणियों का जो बीज है, वह मैं ही हूँ क्योंकि मेरे बिना कोई भी चरअचर प्राणी नहीं है। चिन्तन करने के लिये यही विभूतियों का सार है। तात्पर्य यह है कि किसी विशेषता आदि को ले कर जो विभूतियाँ कही गयी हैं, उन विभूतियों के अतिरिक्त भी जो कुछ दिखायी दे, वह भी भगवान् की ही विभूति है। यह बताने के लिये भगवान् ने अपने को सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के आदि, मध्य तथा अन्त में विद्यमान कहा है। क्योंकि मैं ही सब भूतों का आदि, मध्य और अन्त हूँ अर्थात् उनकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयरूप मैं ही हूँ। तत्त्व से सब कुछ परमात्मा ही है। इस लक्ष्यको बतानेके लिये ही विभूतियाँ कही गयी हैं।

जो तत्त्व आदि और अन्त में होता है, वही तत्त्व बीच में होता है। अन्त में उन्तालीसवें श्लोक में भगवान् ने बीज (कारण) रूप से अपनी विभूति बतायी कि मैं ही सब का बीज हूँ, मेरे बिना कोई भी प्राणी नहीं है। इस प्रकार इन तीन जगह -तीन श्लोकों में मुख्य विभूतियाँ बतायी गयी हैं और अन्य श्लोकों में जो समुदाय में मुख्य हैं, जिन का समुदाय पर आधिपत्य है जिन में कोई विशेषता है, उन को ले कर विभूतियाँ बतायी गयी हैं। परन्तु साधक को चाहिये कि वह इन विभूतियों की महत्ता, विशेषता, सुन्दरता, आधिपत्य आदि की तरफ खयाल न करे।

प्रत्युत ये सब विभूतियाँ भगवान् से ही प्रकट होती हैं, इन में जो महत्ता आदि है, वह केवल भगवान् की है ये विभूतियाँ भगवत्स्वरूप ही हैं, इस तरफ खयाल रखे। कारण कि अर्जुन का प्रश्न **भगवान् के चिन्तन के विषय में है,** किसी वस्तु, व्यक्ति के चिन्तन के विषय में नहीं। साधक इन विभूतियों का उपयोग कैसे करे इसे बताते हैं कि जब साधक की दृष्टि प्राणियों की तरफ चली जाय, तब वह सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मारूप से भगवान् ही हैं, इस तरह भगवान् का चिन्तन करे। जब किसी विचारक साधक की दृष्टि सृष्टि की तरफ चली जाय तब वह,उत्पत्ति विनाशशील और हरदम परिवर्तनशील सृष्टि के आदि, मध्य तथा अन्त में एक भगवान् ही हैं इस तरह भगवान् का चिन्तन करे। कभी प्राणियों के मूल की तरफ उस की दृष्टि चली जाय, तब वह बीजरूप से भगवान् ही हैं, भगवान् के बिना कोई भी चरअचर प्राणी नहीं है और हो सकता भी नहीं, इस तरह भगवान् का चिन्तन करे।

परमात्मा को सभी विभूतियों में वही देख सकता है, जो समभाव हो, जिस का कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव नष्ट हो गया हो। अष्टावक्र जी भी राजा जनक से यही कहते हैं कि संकल्प-विकल्प के कारण सृष्टि है, लेकिन आत्मज्ञानी योगी का मन इन संकल्प- विकल्पों से रहित होकर पूर्णतया शान्त हो जाता है, जिससे मन के सभी विक्षेप समाप्त हो जाते हैं। वह सदा एक ही आत्मा का सर्वत्र अनुभव करता हुआ नित्य आत्मानन्द में ही मग्न रहता है , इसलिए उसे बोध- अज्ञान, सुख-दुख आदि का कोई अनुभव नहीं होता है ।।

आत्मतत्व की विभूति के बाद अन्य विभूतियों को पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.20।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.21॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥

"ādityānām ahaṁ viṣṇur,
jyotiṣāṁ ravir aṁśumān..।
marīcir marutām asmi,
nakṣatrāṇām ahaṁ śaśī"..।।

भावार्थ:

मैं सभी आदित्यों में विष्णु हूँ, मैं सभी ज्योतियों में प्रकाशमान सूर्य हूँ, मैं सभी मरुतों में मरीचि नामक वायु हूँ, और मैं ही सभी नक्षत्रों में चंद्रमा हूँ। (२१)

Meaning:

Among the Aadityaas I am Vishnu, among the bright objects I am the radiant sun, among the Marutas I am Mareechi, among the stars I am the moon.

Explanation:

Shri Krishna begins enumerating Ishvara's expressions in this shloka. He begins by saying that among the Aadityaas or the sons of Aditi, he is

Vishnu. From the Puranas we learn that Sage Kashyap had two wives– Aditi and Diti. From his first wife, Aditi, he fathered twelve celestial personalities– Dhata, Mitra, Aryama, Shakra, Varun, Amsha, Bhaga, Vivasvan, Pusha, Savita, Twashta, and Vaman. Amongst these, Vaman was the Avatar of the Supreme Lord Vishnu. Thus, Shree Krishna states that amongst the Adityas (twelve sons of Aditi), Vishnu (in the form of Vaman) reveals his opulence.

Next, Shri Krishna says that Ishvara is “Ravi”, the sun, among all the bright objects in the universe. He uses the word “anshumaan” meaning radiant to describe the sun. So, whenever we see the brilliance of the sun, our mind should immediately go towards the might of Ishvara that is shining through the sun.

Then, he comes to the night sky. There is the well- known saying, “One moon is better than a thousand stars.” Shree Krishna says that amongst all the constellations and stars in the night sky, he is the moon because it best reveals his opulence.

There is an episode in the Sunder Kand of the Tulsi Ramayana where Lord Hanumaan was captured bound with ropes in Lanka. Ravan by given punishment, fire the tail of Hanumaan. Since Hanuman is son of Vayu, he untied himself and fired the whole Lanka with the help of mareechi means the one of the airs. The Puranas further relate that Sage Kashyap fathered daityas (demons) from his second wife Diti. However, apart from the daityas, Diti desired to have a son more powerful than Indra (the king of the celestial gods). So, she kept her baby in her womb for a year. Indra then used a thunderbolt and split her fetus into many pieces, but it turned into many fetuses. These became the maruts, or the 49 kinds of winds that flow in the universe, doing tremendous good. The major ones amongst them are Avaha, Pravaha, Nivaha, Purvaha, Udvaha, Samvaha, and Parivaha. The

chief wind, known as Parivaha, also bears the name Marichi. Shree Krishna states that his vibhūti (opulence) manifests in the wind called “Marichi.”

Marichi is the dēvathā; who presides over that beautiful breeze which will make us feel very pleasant. Marichi meansstorm:tender beautiful breeze; not the cyclonic storm; that cool breeze which you get in Courtalam and all that places; that cool, gentle pleasant air- conditioning breeze is presided over by Marichi dēvathā; Therefore, Krishna says I am the Marichihi; among the marut ganāḥ.

With these expressions in our mind, we will never be disconnected from Ishvara. In the day, we can look at the sun - it is Ishvara. When the winds blow, it is Ishvara. In the night, the moon is Ishvara.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व श्लोक में आत्मा अर्थात सभी प्रारा प्रकृति के चेतन स्वरूप विभूति में परमात्मा को किस प्रकार देखना चाहिए, इस का अध्ययन किया। अब विभूतियों को जानना शुरू करते है।

फिर उसका वो भाग जो तमस है, हे पवित्र ज्ञान के विद्यार्थियों (ब्रह्मचारी), रूद्र है।

उसका वो भाग जो रजस है, हे पवित्र ज्ञान के विद्यार्थियों, ब्रह्मा है।

उसका वो भाग जो सत्त्व है, हे पवित्र ज्ञान के विद्यार्थियों, विष्णु है।

वास्तव में वो एक था, वो तीन बन गया, आठ, ग्यारह, बारह और असंख्य बन गया।

यह सबके भीतर आ गया, वो सबका अधिपति बन गया।

यही आत्मा है, भीतर और बाहर, हाँ भीतर और बाहर।

–मैत्री उपनिषद का यह श्लोक बतलाता है कि किस प्रकार परमात्मा ने इस जगत का विकास किया। इस के अब हमें अदिति पुराण एवम विष्णु पुराण को भी समझना होगा।व्यवहारिक दृषिकोंण से अणु का विघटन होते होते ब्रह्मांड की रचना कैसे हुई।

अदिति एक प्रतिष्ठित हिन्दू देवी है। पुराणों के आधार पर वे महर्षि कश्यप की पहली पत्नी थीं। अदिति अपने शाब्दिक अर्थ में बंधनहीनता और स्वतंत्रता की द्योतक है।

कश्यप की पत्नी अदिति के बारह पुत्र धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा एवम विष्णु अर्थात वामन अदिति के पुत्र होने से आदित्य कहलाए। इन सब में विष्णु ने अपने पद एवम ज्ञान की गरिमा को त्याग कर राजा बालि से वामन अवतार अदिति के पुत्र के रूप में ले कर दान के रूप तीन पग में पूरी सृष्टि को नाप कर, उस की सत्ता को ले ली जिसे जन हित मे देवताओ को बांट दिया। **अपने अहम एवम कर्तापन को त्याग कर छोटा बन कर भी जनहित में करने के कारण अदिति के पुत्रों में विभूति स्वरूप में परमात्मा ने विष्णु (वामन अवतार) मै (परमात्मा) हूँ, कहा है।**

इसी प्रकार स्वर्गलोक की सत्ता के लोभ में दैत्यों और देवों में शत्रुता हो गई। दैत्यों और देवों के परस्पर युद्ध आरम्भ हो गये। एक समय दोनों पक्षों में भयङ्कर युद्ध हुआ। अनेक वर्षों तक वो युद्ध चला। उस युद्ध में देवों का दैत्यों से पराजय हो गया। सभी देव वनो में विचरण करने लगे। उनकी दुर्दशा को देखकर अदिति और कश्यप भी दुःखी हुए। पश्चात् नारद मुनि के द्वारा सूर्योपासना का उपाय बताया गया। अदिति ने अनेक वर्षों पर्यन्त सूर्य की घोर तपस्या की। सूर्य देव अदिति के तप से प्रसन्न हुए। उन्होंने साक्षात् दर्शन दिये और वरदान माँगने को कहा। अदिति ने सूर्य की स्तुति करते हुए वरदान माँगा कि - “आप मेरे पुत्र रूप में जन्म लेवें”। कालान्तर में सूर्य का तेज अदिति के गर्भ में प्रतिष्ठित हुआ । किन्तु एक बार क्रोध में कश्यप अदिति के गर्भस्थ शिशु को “मृत” शब्द से सम्बोधित कर बैठे। उसी समय अदिति के गर्भ से एक प्रकाशपुञ्ज बाहर आया। उस प्रकाशपुञ्ज को देखकर कश्यप भयभीत हो गये। कश्यप ने सूर्य से क्षमा याचना की। तब ही आकाशवाणी हुई कि - “आप दोनों इस पुञ्ज का प्रतिदिन पूजन करें। उचित समय होते ही उस पुञ्ज से एक पुत्ररत्न जन्म लेगा। वो आप दोनों की इच्छा को पूर्ण करके ब्रह्माण्ड में स्थित होगा। समयान्तर में उस पुञ्ज से तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। वही “आदित्य” या “मार्तण्ड” नाम से विख्यात है। आदित्य का तेज असहनीय था। अतः युद्ध में दैत्य आदित्य के तेज को देखकर ही पलायन कर गये। सर्वे दैत्य पाताललोक में चले गये। अन्त में आदित्य सूर्यदेव स्वरूप में ब्रह्माण्ड के मध्यभाग में स्थित हुए और ब्रह्माण्ड का सञ्चालन करते हैं।

ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुओं में सूर्य सबसे अधिक दीप्तिमान होता है। रामचरित्मानस में वर्णन है “राकापति शोरस उनहिं तारागन समुदाइ। सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ।।“ "रात्रिकाल में आकाश के सभी तारों और चन्द्रमा सहित सभी दीपक मिलकर भी अंधकार को मिटाने के लिए पर्याप्त नहीं होते। लेकिन जिस क्षण सूर्योदय होता है उसी क्षण

रात्रि समाप्त हो जाती है।" सूर्य, चंद्रमा, तारे, बिजली और अग्नि आदि जितने भी प्रकाशवान प्रधान है उस मे सूर्य का प्रकाश सब से तेज एवम बिना भेदभाव का है और जीवन के लिये उपयोगी भी। इसलिये परमात्मा कहना है, वह सूर्य मै हूँ।

तब फिर वे आगे रात्रि के आकाश का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं-"एक चन्द्रमा हजारों तारों से श्रेष्ठ है।" श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे रात्रि के आकाश में सभी नक्षत्रों और तारों के बीच चन्द्रमा हैं क्योंकि चन्द्रमा उनके वैभव को सर्वोत्तम ढंग से प्रकट करता है। अश्विनी, भरणी एवम कृतिका आदि 27 नक्षत्र होते है, चंद्रमा इस नक्षत्र मंडल का अधिपति है। इस को शशि इसलिये कहा गया कि अमृत वितरण में यह समय पर नही पहुँचे और अमृत वितरण हो गया। वही चंद बूंदे अमृत की पड़ी थी जिसे खग अर्थात खरगोश या शशि ने चाट ली। शशि को अमृत चाटते देख चंद्रमा ने शशि को ही निगल लिया, इसलिये चंद्र को शशी कहते है और इस के मध्य में शशि द्वारा अमृत चाटने से शशि भी अमर हो कर दिखता है। **यह समय पर सही तरीके से काम नही करने को बताता है, बिना विचार समझे भोजन नही ग्रहण करने को भी दर्शाता है। वह नक्षत्र पति शशी मै हूँ।**

मरीचि अर्थात वायु के प्रचंड वेग एवम प्रभाव को ले कर इस में दो कथाएं है दक्ष कन्या मरुतवती (दिति) के 49 पुत्र मरुत कहलाये। इन सब के तेज को सम्मलित नाम मरीचि माना गया। यह समस्त नाम विभिन्न प्रकार की वायु के वेग के है। **अतः जो सभी में सामूहिक वायु का वेग या तेज होता है वो मरीचि मै हूँ।**

अन्य कथा में कश्यप की द्वितीय पत्नी दिति के पुत्रों को जब अदिति पुत्रो ने मार डाला तो दिति ने कश्यप की सेवा से इंद्र का वध कर सके ऐसा पुत्र का वरदान मांगा। इस को गर्भ में 100 साल रखना था किंतु इंद्र ने इसे गर्भ में ही नष्ट करने हेतु 7*7 टुकड़े कर दिए। किन्तु गर्भ फिर भी नही नष्ट हुआ। क्योंकि गर्भ में टुकड़े करते समय इंद्र "मत रो" बोल रहे थे इसलिये वेगवान देवता मरुत पैदा हुए। वे सब 59 मरूत अर्थात ब्रह्मांड में प्रवाहित होने वाली वायु बन गये। इन में से सब से मुख्य- अवाह, प्रवाह, निवाह, पूर्वाह, उद्वाह, संवाह, परिवाह हैं। सबसे प्रमुख वायु को 'परिवाह' के नाम से जाना जाता है और इसे 'मरीचि' भी कहा जाता है। इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि उनका वैभव 'मरीचि' नामक वायु में प्रकट होता है। मरुत अर्थात मरीचि अर्थात वायु वो वेगवान देवता, जो भगवद ध्यान रूप व्रत के तेज से उत्पन्न है, जिस को कोई नष्ट नही कर सकता वो शक्तिशाली पवन के वेग परमात्मा ही है

अर्थात मै हूँ। मरीचि मंद मंद सुगंधित बहने और मन को शांति प्रदान करने वाली वायु को भी कहते है।

एक शङ् का हो सकती है कि भगवान् ने गीता में जगह- जगह कामना का निषेध किया है, फिर वे स्वयं अपने में कामना क्यों रखते हैं? इसका समाधान यह है कि वास्तव में **अपने लिये भोग, सुख, आराम आदि चाहना ही 'कामना' है। दूसरों के हित की कामना 'कामना' है ही नहीं। दूसरोंके हित की कामना तो त्याग है और अपनी कामना को मिटाने का मुख्य साधन है।** इसलिये भगवान् सब को धारण करने के लिये आदर्श रूप से कह रहे हैं कि जैसे मैं हित की कामना से कहता हूँ, ऐसे ही मनुष्य मात्र को चाहिये कि वह प्राणि मात्र के हित की कामना से ही सबके साथ यथायोग्य व्यवहार करे। इससे अपनी कामना मिट जायगी और कामना मिटने पर मेरी प्राप्ति सुगमता से हो जायगी। प्राणिमात्र के हित की कामना रखने वाले को मेरे सगुण स्वरूप की प्राप्ति भी हो जाती है और निर्गुण स्वरूप की प्राप्ति भी हो जाती है।

हमारे पुराणों में भगवान के संकल्प के रूप में विस्तृति होती ब्रह्माड की अनेक कथाएं है, जिस से हमे ज्ञात होता है वह एक से अनेक किस प्रकार सत-रज-तम गुणों के साथ अनेक होता है। क्योंकि परमात्मा सत-रज-तम गुणों से परे है और सत गुण ही परमात्मा के निकट है, जिस विभूति में सात्विक गुण की अधिकता लोककल्याण हेतु अधिक होगी उस मे परमात्मा की विभूति को समझने से हम भी उस सात्विक गुणों की बढ़ते है। ज्ञान, दान और आश्रय सामर्थ्यवान से प्राप्त होने से ही विकास सम्भव है। इसलिये समस्त विभूतियों में अपने को पूर्व श्लोक में बतलाने के बाद अब श्रेष्ठतम विभूति में उस को बतलाने की बात कहते है।

इस प्रकार त्याग, नम्रता, तेज, बल एवम विवेक के स्वरूप विभूतियों को परमात्मा बताया गया है। **यहां वामन अवतार विष्णु, सूर्य, वायुदेवता मरीचि एवम चन्द्र को विभूति में हम परमात्मा के स्वरूप का चिंतन कर रहे है, विभूति के व्यक्तिगत स्वरूप का नहीं, इसलिये जब भी विभूति में कोई भी सात्विक गुण दिखे तो उस मे परमात्मा को ही देखना चाहिए।**

।। हरि ॐ तत सत।। 10.21।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.22॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥

"vedānāṁ sāma-vedo 'smi,
devānām asmi vāsavaḥ..।
indriyāṇāṁ manaś cāsmi,
bhūtānām asmi cetanā"..।।

भावार्थ:

मैं सभी वेदों में सामवेद हूँ, मैं सभी देवताओं में स्वर्ग का राजा इंद्र हूँ, सभी इंद्रियों में मन हूँ, और सभी प्राणियों में चेतना स्वरूप जीवन-शक्ति हूँ। (२२)

Meaning:

Among the Vedaas I am the Saama Veda, among the deities I am Vaasava, among the senses I am the mind and among the beings, I am the intellect.

Explanation:

Shri Krishna, elaborating on Ishvara's expressions, says that Ishvara is the Saama Veda among all the Vedas. There are four Vedas– Ṛig Veda, Yajur Veda, Sama Veda, and Atharva Veda. Each Veda has a unique characteristic. The Yajur Veda contains prose, the Rig Veda contains metric hymns, the Saama Veda contains songs and the Atharva Veda contains incantations. Amongst these, the Sama Veda describes God's glories as they manifest in the celestial gods, who are in charge of administering the universe. The Sāma Veda is also the most musical and is sung in praise of the Lord. It is enchanting to those who understand it and it evokes devotion amongst its listeners.

Among all the deities, Ishvara is the king of all deities known as Vaasava, also known as Indra. While our attention usually falls on the excesses of wealth and power that kings demonstrate, this was not the case traditionally.

A king is supposed to spend every minute of his life serving his subjects, sacrificing everything. Such a rules of deities is a true expression of Ishvara.

Among all the gods or deities, so who have become gods because of their puṇya. So we should remember we use the word God in two contexts; one is God with capital letter which is only one; who is the Lord māya sahitha caitanyam; who is sarvajñāḥ; sarvēsvara; sr̥sti sthithi laya kartha; that Lord is only one and that is written with capital G. then we use the word gods with small g, they do not come under Īśvara tatvam; all those gods are also jīvās only; created jīvās they are; but occupying the heavenly world. And because of their puṇyam; they have got higher powers, but they do not come under god and these gods also come under samsāris only. Because of the puṇyam, they have gone to heavenly lōkā and because of their puṇyam, they have some supernatural powers and they have got some enjoyment; but you should remember, once their puṇyam is exhausted. These gods also will be born as human beings or animals. Therefore, the gods with small g and that too in plural numbers, they come under jīvaḥs; but the Lord or God with capital G is not a jīvaḥ, is not ajñāni; and He is Īśvara not because of puṇyam or pāpam, He is puṇya- pāpa athitha Īśvaraḥ.

As we have seen earlier, we transact or interact with the world with our body, our senses, our organs of action, our mind, and our intellect. The five senses function correctly only if the mind is attentive to them. If the mind wanders away, the senses cannot function properly. For example, you hear with your ears what people say, but if your mind wanders away while they are speaking, their words are lost to you. So, the mind is the king of the senses. Shree Krishna speaks of it as reflecting his power, and later in the Bhagavad Gita, he mentions it as the sixth and most important sense.

If we were to be born as a plant, animal, or human, we would undoubtedly prefer to be born as a human. The key difference between a human and a

plant or animal is the capacity of intelligence that lets us think logically, display compassion towards others, plan for the future and most importantly, pursue the path of the higher self. This wonderful intelligence in is is also Ishvara's expression.

Consciousness is the quality of the soul that distinguishes it from insentient matter. The difference between a living person and a dead person is the presence of consciousness in the living person's body and its absence in a dead person's body. Consciousness exists in the soul by the divine power of God. Hence, the Vedas state: chetanaśhchetanānām (Kaṭhopaniṣhad 2.2.13) [v27] "God is the sentience in the sentient."

So therefore, if our mind generates thoughts of compassion or service, if our intellect makes us acts upon these thoughts so that we can serve others, we should remember that it is not the "I" in us that is causing everything to happen. It is all happening through Ishvara and his expressions.

।। हिंदी समीक्षा ।।

ऋक, यजु, साम एवम अर्थव यह चार वेद में पूर्व में परमात्मा ने अपने को प्रणव में स्थित ब्रह्म को बताया था जिस का स्वरूप ॐ हम ने पढ़ा था। यह ऋग्वेद का है।

अग्नि पुराण के अनुसार सामवेद के विभिन्न मंत्रों के विधिवत जप आदि से रोग व्याधियों से मुक्त हुआ जा सकता है एवं बचा जा सकता है तथा कामनाओं की सिद्धि हो सकती है। सामवेद ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग की त्रिवेणी है। ऋषियों ने विशिष्ट मंत्रों का संकलन करके गायन की पद्धति विकसित की। आधुनिक विद्वान् भी इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि समस्त स्वर, ताल, लय, छंद, गति, मन्त्र, स्वर-चिकित्सा, राग नृत्य मुद्रा, भाव आदि सामवेद से ही निकले हैं।

सामवेद गीत- संगीत प्रधान है। प्राचीन आर्यों द्वारा साम- गान किया जाता था। सामवेद चारों वेदों में आकार की दृष्टि से सब से छोटा है और इस के १८७५ मन्त्रों मे से ९९ को छोड़ कर सभी ऋगवेद के हैं केवल १७ मन्त्र अथर्ववेद और यजुर्वेद के पाये जाते हैं। फ़िर भी इसकी प्रतिष्ठा सर्वाधिक है, जिस का एक कारण गीता में कृष्ण द्वारा वेदानां सामवेदोऽस्मि

कहना भी है। अभी हम भक्ति प्रधान कर्म को पढ़ रहे है अतः यज्ञ- याग आदि क्रियात्मक वेद की अपेक्षा गान प्रधान वेद अर्थात साम वेद को अधिक महत्व दिया गया है। सामवेद में संगीत का विशेष आनन्द भी जुड़ा हुआ है, क्योंकि साम मन्त्रों को सुन्दर राग, सुर और लय में गाया जाता है, जो इस बात के प्रमाण हैं कि संगीत की इस सुन्दर और शक्तिशाली कला को हमारे पूर्वजों ने इतना अधिक विकसित किया था। इस उपमा के सौन्दर्य के द्वारा हम कह सकते हैं कि श्रीकृष्ण संगीत की आत्मा हैं। भक्ति में गायन एवम संगीत का अधिक महत्व होता है इसलिये भगवान का कहना है कि **वेदो में सामवेद मै ही हूँ।**

इन्द्र (या इंद्र) हिन्दू धर्म में सभी देवताओं के राजा का सब से उच्च पद था, जिसकी एक अलग ही चुनाव- पद्धति थी। इस चुनाव पद्धति के विषय में स्पष्ट वर्णन उपलब्ध नहीं है। वैदिक साहित्य में इन्द्र को सर्वोच्च महत्ता प्राप्त है। वह ऋग्वेद का सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण देवता है। उसे आर्यों का राष्ट्रीय देवता भी कह सकते हैं। मुख्य रूप से वह वर्षा का देवता है जो कि अनावृष्टि अथवा अन्धकार रूपी दैत्य से युद्ध करता है तथा अवरुद्ध जल को अथवा प्रकाश को विनिर्मुक्त बना देता है। वह गौण रूप से आर्यों का युद्ध-देवता भी है, जो आदिवासियों के साथ युद्ध में उन आर्यों की सहायता करता है।

सूर्य, चंद्रमा, अग्नि, वायु आदि में सब से अधिक महत्व इंद्र का राजा होने के अन्य भी कारण है क्योंकि राजा स्वयं अनुशासित, विवेकयुक्त एवम दूरदर्शी होता है एवम समस्त अंतर्गत को उन के योग्य कार्यो में लगा कर रखता है। हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार प्रत्येक कार्य को नियंत्रित करने वाला कोई न कोई कारण या कर्ता रहता है, जैसे रास्ते मे पत्थर भी कहाँ होगा यह भी कोई तो तय है। **इस प्रकार 33 कोटि देवी देवताओं के राजा इंद्र मै ही हूँ।**

देव शब्द उन महान हस्तियों के लिए कहा गया है जो दैवीय गुण से संपन्न हो। दैवीय गुण अध्याय 16 में वर्णित है। परब्रह्म से ब्रह्म पृथक हुआ और उस में अपने अकेलेपन का संकल्प पैदा हुआ और इस को हम परमात्मा के नाम से जानते है। उस के संकल्प के विकल्प स्वरूप से उस के अंश स्वरूप में अन्य जीव हुए। यह जीव महंत गुण से अलग अलग होते गए। इस में जो जीव प्रकृति के योगमाया के गुणों से ऊपर अर्थात उस को नियंत्रित करने की क्षमता रखते थे, वे ही ईश्वर हुए और अन्य जीव जो प्रकृति के गुणों के अंदर अहम में कर्ता और भोक्ता भाव में फस गए, वे मानव और अन्य जीव कहलाए। अतः ईश्वर और जीव में अंतर प्रकृति के योगमाया के त्रिगुणों के नियंत्रण का है। कोई भी मनुष्य

जिस ने प्रकृति के गुणों को जीत लिया, वही देवता बन गया। महावीर, बुद्ध, नानक और अनेक महापुरुष देव ही है। इन में को इंद्र के पद पर है, उस को परमात्मा ने अपनी विभूति कहा है।

अतः वेदांत के अनुसार आप भी देव और इंद्र पद को प्राप्त हो सकते है यदि आप उस पद की परीक्षा उत्तीर्ण कर ले अर्थात योगमाया से गुणों पर विजय प्राप्त कर ले।

चक्षु, श्रोत्र, त्वचा, रसना, घ्राण, वाक, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा यह दस इंद्रियां और मन को जोड़ ले तो यह ग्यारह होती है, इस मे पांच कर्म इंद्रियां एवम पांच ज्ञान इंद्रियां होती है। इस के अतिरिक्त मन, बुद्धि, चित्त एवम अहंकार चार और इंद्रियां मानी गयी है। जीव में मन इन्द्रिय ही प्रधान है क्योंकि मन से गति एवम कार्य होता है। कर्म इंद्रिया या ज्ञान इंद्रिया का स्वयं में कोई नियंत्रण नही है, जब तक मन द्वारा वह नियंत्रित न हो। मन ही इन इन्द्रियों , बुद्धि, और चेतन के साथ सामंजस्य बना कर संस्कार एवम पूर्व संचित कर्मो के फलों के अनुसार कार्य करता है। चेतन के अहम, कामना,आसक्ति और मुक्ति के लिये जो क्रियाशील इन्द्रिय है, वह मन ही है क्योंकि बाकी की दस इन्द्रियों में किसी भी कार्य की समझने या अन्वेषण का सामर्थ्य नही है। मन को ही नियंत्रित करने मात्र से ध्यान, अध्ययन, मनन, कर्म सभी कुछ होता है। **अतः इंद्र के समान ही मन भी इंद्रियाओ का राजा है वो अनुशासित मन मै ही हूँ।**

सभी भूतों में क्रियात्मक तत्व चेतन होता है जो मन, बुद्धि एवम अहंकार से जुड़े होने से सांसारिक सुख दुख को भोगता है और परम् तत्व चेतन्य से जुड़ने से मोक्ष को प्राप्त होता है। किसी भी प्राणी के शरीर मे उपभोक्ता स्वरूप चेतन तत्व ही है जिस के लिये समस्त इंद्रियां, मन और बुद्धि व्यापार करती है। **इसलिये समस्त भूतों में स्थित चेतन अर्थात आत्मा मै ही हूँ।** इस शरीर की विभिन्न क्रियाओं को को भोक्ता है या जिसे आनंद या संतुष्टि का अहसास होता है, वही मनोमय कोश ही चेतन तत्व है। यही तत्व जब प्रकृति से बंध कर आनंद की अनुभूति करे तो मनोमय और जब प्रकृति से पृथक हो कर परमात्मा से जुड़ कर आनंद का अनुभव करे तो आनंदमय कोश कहलाता है।

विभूतियों में गायन एवम संगीत द्वारा आराधना, अनुशासन, बुद्धि, विवेक, सेवा, उत्तरदायित्व, शासन एवम सामर्थ्य के प्रतीक इंद्र, नियंत्रण एवम संचालन के प्रतीक मन एवम भोक्ता के प्रतीक चेतन को विभूतियों में हम ने जाना। यह सब परमात्मा ही है, इस तत्व को

इन के स्वरूप एवम गुणों जब भी देखे या अनुभव करे, तो सब में परमात्मा को देखना चाहिए।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.22।।

।। 33 कोटि देवी देवता का आशय ।। विशेष - गीता 10. 22 ।।

सनातन संस्कृति में देवी - देवताओं से हम क्या समझे और 33 कोटि देवी - देवता क्यों कहा गया है?

हमारे वेद और शास्त्रो में वर्णित अनेक कथन, परिभाषा एवम अर्थ अक्सर भ्रांति पैदा कर देते है, जब इन्हे शाब्दिक अर्थो के अनुसार पढ़ा जाता है। देवी-देवता भी प्रकृति में परब्रह्म के अंतर्गत एक योनि ही है, जिस प्रकार मनुष्य की योनि होती है, उसी प्रकार देवता और दैत्य की भी योनि होती है। देवता माने जो किसी भी पराप्रकृति की शक्ति पर आधिपत्य रखता हो। यह मुख्य तौर पर सात्विक वृति प्रधान होते है, जब कि दैत्य तामसी वृति प्रधान, इस के कारण दोनों में आपस मे वैर भी माना गया है। मनुष्य से इन की निकटता अधिक होने से मनुष्य इन को इन की शक्ति के आधार पर पूजता भी है।

देवता (संस्कृत के दिव् धातु से, जिस का अर्थ दिव्य होना है) कोई भी परालौकिक शक्ति का पात्र है,या पराप्राकृतिक है और इसलिये पूजनीय/अमर है। देवता अथवा देव इस तरह के पुरुषों के लिये प्रयुक्त होता है और देवी इस तरह की स्त्रियों के लिये। हिन्दू धर्म में देवताओं को या तो परमेश्वर (ब्रह्म) का लौकिक रूप माना जाता है, या तो उन्हें ईश्वर का सगुण रूप माना जाता हैं।

बृहदारण्य उपनिषद में एक बहुत सुन्दर संवाद है जिसमें यह प्रश्न है कि कितने देव हैं। उत्तर यह है कि वास्तव में केवल एक ही है जिस के कई रूप हैं।

1 पहला उत्तर है एक जिसने सृष्टि की रचना की

2 दूसरा उत्तर है त्रिदेव अर्थात (ब्रह्मा विष्णु महादेव)

3 **तीसरा उत्तर है 33 कोटि अर्थात (33 प्रकार) इन में 12 आदित्य,11 रूद्र,8 वसु और 2 अश्विनी कुमार हैं।**

4 चौथा उत्तर हैं 3339 ये इंद्रलोक के देवता है जिन को अलग अलग कार्य मिला है जैसे इंद्र बारिश के देवता, पवन वायु के देवता, सूर्य देवता, अग्नि देवता, जल देवता, इत्यादि इत्यादि।

वेद मन्त्रों के विभिन्न देवता है। प्रत्येक मन्त्र का देवता और ऋषि, कीलक होता है।

देवता वास्तव में 33 करोड़ ही हैं, 33 प्रकार के नहीं। **प्रथम** तो कोटि शब्द का अर्थ करोड़ भी है और प्रकार भी है, इसे हम अवश्य स्वीकार करते हैं, परंतु यह नहीं स्वीकार करते कि यहां कोटि का अर्थ करोड़ न हो कर प्रकार होगा। पहले तो कोटि शब्द को समझें। कोटि का अर्थ प्रकार लेने से कोई भी व्यक्ति 33 देवता नहीं गिना पाएगा। कारण, स्पष्ट है कि कोटि यानी प्रकार योनि या श्रेणी। अब यदि हम कहें कि आदित्य एक श्रेणी यानी एक प्रकार यानी एक कोटि है, तो यह कह सकते हैं कि आदित्य की कोटि में 12 देवता आते हैं जिन के नाम अमुक- अमुक हैं। लेकिन आप ये कहें कि सभी 12 अलग- अलग कोटि हैं, तो जरा हमें बताएं कि पर्जन्य, इन्द्र और त्वष्टा की कोटि में कितने सदस्य हैं?

ऐसी गणना ही व्यर्थ है, क्योंकि यदि कोटि कोई हो सकता है तो वह आदित्य है। आदित्य की कोटि में 12 सदस्य, वसु की कोटि या प्रकार में 8 सदस्य आदि-आदि। लेकिन यहां तो एक-एक देवता को एक-एक श्रेणी अर्थात प्रकार कह दिया है।

द्वितीय, उन्हें कैसे ज्ञात कि यहां कोटि का अर्थ प्रकार ही होगा, करोड़ नहीं? प्रत्यक्ष है कि देवता एक स्थिति है, देवयोनि हैं जैसे मनुष्य आदि एक स्थिति है, मनुष्य योनि है। मनुष्य की योनि में भारतीय, अमेरिकी, अफ्रीकी, रूसी, जापानी आदि कई कोटि यानी श्रेणियां हैं जिस में इतने-इतने कोटि यानी करोड़ सदस्य हैं। देव योनि में मात्र यही 33 देव नहीं आते। इन के अलावा मणिभद्र आदि अनेक यक्ष, चित्ररथ, तुम्बुरु, आदि गंधर्व, उर्वशी, रम्भा आदि अप्सराएं, अर्यमा आदि पितृगण, वशिष्ठ आदि सप्तर्षि, दक्ष, कश्यप आदि प्रजापति, वासुकि आदि नाग, इस प्रकार और भी कई जातियां देवों में होती हैं जिनमें से 2-3 हजार के नाम तो प्रत्यक्ष अंगुली पर गिनाए जा सकते हैं।

शुक्ल यजुर्वेद ने कहा : अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।

अथर्ववेद में आया है : अहमादित्यरुत विश्वेदेवै।

इस में अग्नि और वायु का नाम भी देवता के रूप में आया है। अब क्या ऊपर की 33 देव नामावली में ये न होने से देव नहीं गिने जाएंगे? मैं ये नहीं कह रहा कि ये ऊपर के गिनाए गए 33 देवता नहीं होते बिलकुल होते हैं लेकिन इनके अलावा भी करोड़ों देव हैं।

भगवती दुर्गा की 5 प्रधान श्रेणियों में 64 योगिनियां हैं। हर श्रेणी में 64 योगिनी। इनके साथ 52 भैरव भी होते हैं। सैकड़ों योगिनी, अप्सरा, यक्षिणी के नाम मैं बता सकता हूं। 49 प्रकार के मरुद्‌गण और 56 प्रकार के विश्वेदेव होते हैं। ये सब कहां गए? इन की गणना क्यों न की गई?

33 कोटि बताने वालों का अन्य अर्थात द्‌वितीय खंडन:

शिव-सती : सती ही पार्वती है और वही दुर्गा है। उसी के 9 रूप हैं। वही 10 महाविद्‌या है। शिव ही रुद्र हैं और हनुमानजी जैसे उनके कई अंशावतार भी हैं।

विष्णु-लक्ष्मी : विष्णु के 24 अवतार हैं, वही राम हैं और वही कृष्ण भी। बुद्‌ध भी वही है और नर-नारायण भी वही है। विष्णु जिस शेषनाग पर सोते हैं वही नागदेवता भिन्न-भिन्न रूपों में अवतार लेते हैं। लक्ष्मण और बलराम उन्हीं के अवतार हैं।

ब्रह्मा-सरस्वती : ब्रह्मा को प्रजापति कहा जाता है। उनके मानस पुत्रों के पुत्रों में कश्यप ऋषि हुए जिन की कई पत्नियां थीं। उन्हीं से इस धरती पर पशु-पक्षी और नर-वानर आदि प्रजातियों का जन्म हुआ। चूंकि वे हमारे जन्मदाता हैं इसलिए ब्रह्मा को प्रजापिता भी कहा जाता है।

इन के तर्क का पुन: खंडन :

यदि कश्यप ऋषि आदि को आप इसीलिए देव नहीं मानते, क्योंकि ब्रह्मा के द्‌वारा इनका प्राकट्‌य हुआ है, सो ये सब ब्रह्मरूप हुए सो इनकी गिनती नहीं होगी तो कश्यप के द्‌वारा प्रकट किए गए 12 आदित्य और 8 वसु तथा 11 रुद्रों को आप कश्यप रूप मानकर छोड़ क्यों नहीं देते? इनकी गिनती के समय आप की प्रज्ञा कहां गई?

यदि सारे रूद्र शिव के अवतार हैं, स्वयं हनुमानजी भी हैं, तो क्या आप पार्वती को हनुमानजी की पत्नी कह सकते हैं? क्यों नहीं? इसीलिए क्योंकि हनुमान रुद्रावतार हैं उस समय अवतार यानी वही ऊर्जा होने पर भी स्वरूपत: और उद्‌देश्यत: भिन्न हैं। ऐसे ही समग्र संसार नारायण रूप होने पर भी स्वरूपत: और उद्‌देश्यत: भिन्न हैं। इसी कारण आप सीता को

कृष्ण पत्नी और रुक्मिणी को राम पत्नी नहीं कह सकते, क्योंकि अभेद में भी भेद है और जो सभी के एक होने की बात करते हैं वे यदि इतने ही बड़े ब्रह्मज्ञानी हैं तो क्या उन्हें शिव और विष्णु की एकाकारता नहीं दिखती?

शिव और विष्णु में इन्हें भेद दिखता है इसलिए इन्हें अलग-अलग गिनेंगे और राम और विष्णु में अभेद दिखता है, सो इन्हें नहीं गिनेंगे। समग्र संसार ही विष्णुरूप है, रुद्ररूप है, देवीरूप है। भेद भी है और अभेद भी है। लेकिन यदि अभेद मानते हो फिर ये जो 33 देव गिना रहे हो ये भी न गिना पाओगे, क्योंकि जब विष्णु के अवतार राम और कृष्ण को अभेद मानकर नहीं गिन रहे, सती के 10 महाविद्या अवतार को नहीं गिन रहे तो फिर शिवजी के 11 रुद्र अवतार को किस सिद्धांत से गिन रहे हो? सभी ग्रामदेव, कुलदेव, अजर आदि क्षेत्रपाल, ये सबको कौन गिनेगा? ये छोड़ो, इस 33 वाली गणना में तो गणेश, कार्तिकेय, वीरभद्र, अग्नि, वायु, कुबेर, यमराज जैसे प्रमुख देवों को भी नहीं गिना गया।

वेदों में कही-कहीं 13 देवता की भी बात आई है और कहीं-कहीं 36 देवता की भी चर्चा है। 3,339 और 6,000 की भी चर्चा है। अकेले वालखिल्यों की संख्या 60,000 है। तो वहां इन 33 में से कुछ को लिया भी गया है और कुछ को नहीं भी। तो क्या वह असत्य है? बिलकुल नहीं। जैसे जहां मनुष्य की चर्चा हो वहां आप केवल उनका ही नाम लेते हैं जिसका उस चर्चा से संबंध हो, सभी का नहीं। वैसे ही जहां जैसे प्रसंग हैं वहां वैसे ही देवों का नाम लिया गया है। इसका अर्थ ये नहीं कि जिनकी चर्चा नहीं की गई, या अन्यत्र की गई, उसका अस्तित्व ही नहीं। इस 33 की श्रेणी में गरूड़, नंदी आदि का नाम नहीं जबकि वेदों में तो है। विनायक की श्रेणी में, वक्रतुण्ड की श्रेणी में गणेशजी के सैकड़ों अवतार के नाम तंत्र में आए हैं।

कार्य कारण के सिंद्धान्त के कारण हर वस्तु का नियामक एक देवता होता है। यदि कोई व्यक्ति आप को मिले। या कोई वस्तु आप के पास कितने समय तक रहे, यह कौन तय करेगा। इसलिये हर वस्तु के नियामक को देवता माना गया है। अतिभौतिक, अतिदैविक और अध्यात्मवाद के अनुसार, आधिदैविक शक्तियां भी जीव के जीवन काल में कार्य करती है। इन्ही आधिदैविक शक्तियों की विभिन्न स्वरूपों मनुष्य पूजा करता है और इसी कारण आदिवासी के देव और ब्रह्मविद के देव में अंतर ज्ञान से पहचान सकते है।

परमात्मा का कहना है कि वह प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित है और वेदांत कहता है कि ब्रह्म का अंश जिस ने प्रकृति की योगमाया (सत - रज - तम) को नियंत्रित किया, वह देवता बना और जो प्रकृति की योगमाया से नियंत्रित है, वह जीव हुआ। अतः जीव और

देवता में अंतर योग का है, नियंत्रण और आत्मशुद्धि का है। इसलिए मानव में महापुरुष देवता बन कर उन के अनुयायियों से पूजे जाते है। इन महापुरुषों को भी देवतुल्य मानते है तो 33 कोटि देवी देवता का अर्थ स्पष्ट है कि प्रत्येक जीव जिस ने प्रकृति की योगमाया को जीत लिया, वही देवी/ देवता है। 33 कोटि कोई संख्या नही, एक मील का पत्थर है कि देवी - देवता भी अनगिनत हो कर ब्रह्म के उस अंश का स्वरूप है। जिन्हे जीव विभिन्न स्वरूपों में पूजता है, अर्थात हर जीव जो लोकसंग्रह के लिए निष्काम भाव कर्म करता है, वही देवता है।

जब किसी बीमार की निस्वार्थ सेवा करने वाला देव पुरुष हो, जब किसी भूखे व्यक्ति को भोजन कराने वाला और वस्त्र हीन को वस्त्र देने वाला देव पुरुष हो, जब किसी के संकट में उस की रक्षा करने वाला देव पुरुष हो और जब अज्ञान में ज्ञान की ज्योति जगाने और समाज को रास्ता दिखाने वाला देव पुरुष हो, तो 33 करोड़ देवी देवता क्यों नहीं हो सकते? अतः 33 करोड़ देवी देवताओं से आशय अनगिनत सात्विक गुणों से युक्त जीव ही होना चाहिए।

हां, 33 कोटि देव की बात है जरूर और कोटि का अर्थ करोड़ ही है, क्योंकि देवता केवल स्वर्ग में नहीं रहते। उन के सैकड़ों अन्य दिव्यलोक भी हैं और ऐसा कहा जाए तो फिर सभी एकरूप होने से सीधे ब्रह्म के ही अंश हैं तो ये 33 भी गिनती में नहीं आएंगे। फिर वैसे तो हम सब भी गिनती में नहीं आएंगे। हम सभी भारतीय ही हैं तो इन्हें 140 करोड़ अलग-अलग क्यों गिनते हैं?

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता विशेष 10.22 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.23॥

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥

"rudrāṇāṁ śaṅkaraś cāsmi,
vitteśo yakṣa- rakṣasām..।
vasūnāṁ pāvakaś cāsmi,
meruḥ śikhariṇām aham"..।।

भावार्थ:

मैं सभी रुद्रों में शिव हूँ, मैं यक्षों तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूँ, मैं सभी वसुओं में अग्नि हूँ और मै ही सभी शिखरों में मेरु हूँ। (२३)

Meaning:

Among the Rudras I am Shankara and among the Yakshas and Raakshasaas I am Vittesha. Among the Vasus I am the purifying fire and among the mountain peaks I am Meru.

Explanation:

Shri Krishna goes on to describe Ishvara's expressions. He says that among the deities known as Rudras, he is Lord Shiva, the foremost among them. Rudras are deities that have been mentioned since Vedic times. Their name is derived from the rood "rud" which means to cry or howl. They symbolically represent the vital life energies, and therefore make people cry when they leave the body.

It is said that there are eleven Rudras: Hara, Bahuroopa, Trayambaka, Aparaajita, Vrishaakapi, Shambhu (Lord Shiva), Kapardin, Raivata, Mrigavyaadha, Shaarva and Kapaalin. Shri Krishna says that Lord Shiva is Ishvara's expression because he is the calmest among them and brings joy to his devotees.

In upnishad: sam no mitra sam varunaha; sam means maṅgalam; and therefore, śaṅkaraḥ means the mangala kartā rudraha aham asmi; and what do you mean by maṅgala kartā; maṅgalam means ānanda; remember; maṅgalam means ānanda; and that is why the very word rudraḥ means the one who removes sorrow; ruth duḥkham dravyati iti rudraḥ; ruth means duḥkham; sorrow; crying. In some houses, always somebody or the other would be always crying; that is amaṅgalam; and Rudra removes the crying from the family; wherever rudra pārāyaṇam takes place, crying goes; grief

goes away; and therefore, He is called duḥkha nāśakaḥ; rudraḥ; and by way of that, he brings in Ānanda; and therefore, I am śaṅkaraḥ.

Among the demigods known as the Yakshas and Rakshasaas, Ishvara is Vittesha who is also known as Kubera. Vitta means wealth, so Kubera is considered the lord of wealth. He is worshipped during the Lakshmi Pooja festival. Among the eight Vasus, deities who represent the elemental forces, Ishvara's expression is fire because it is the greatest purifier.

Next, Shri Krishna says that among the mountain peaks, Ishvara is the mountain known as Meru. It is considered the most prominent mountain and the centre of the universe in the Srimad Bhaagavatam, hence it is Ishvara's expression. The human spinal column is also known as "Meru danda" or the Meru rod, and the primary bead in a rosary is known as the Meru bead.

Meru is a mountain in the celestial abodes famed for its rich natural resources. It is believed to be the axis around which many heavenly bodies rotate. Shree Krishna thus speaks of it as his glory. As wealth distinguishes a wealthy person, these glories reveal the vibhūtis of God.

There are eight vasus–land, water, fire, air, space, sun, moon, and stars. They constitute the gross structure of the universe. Amongst these, agni (fire) gives warmth and energy to the rest of the elements. Thus, Shree Krishna mentions it as his special manifestation.

Whenever we see fire, mountains, wealth, or someone in sorrow due to punishment, we should remember Ishvara through his expressions of fire, Kubera, mount Meru and Lord Shiva.

।। हिंदी समीक्षा ।।

रू का अर्थ होता है चिंता और द्र का अर्थ होता है दूर करना। इस कारण से रूद्र का अर्थ हुआ जो आपके सारी समस्याएं और चिंताओं का नाश कर दे। अतः रुद्र स्वरूप जीव के दुखो

का नाश करने वाले रुद्र में भगवान शकंर के स्वरूप में अपनी विभूति को बता रहे है। रुद्र ग्यारह बताए गए है किंतु उन के नामों में विभेद है।

शिवपुराण में एकादश रुद्र के नाम; कपाली, पिंगल, भीम, विरुपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड, और भव।

शैवागम के अनुसार एकादश रुद्रों के नाम शम्भु, पिनाकी, गिरीश, स्थाणु, भर्ग, सदाशिव, शिव, हर, शर्व, कपाली, और भव ।

श्रीमद्भागवत में एकादश रुद्रों के नाम मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव, और धृतव्रत ।

शिवपुराण में कहा गया हैं कि ग्यारह रूद्रों की कथा को एकाग्रचित्त होकर पढ़ने का महान फल प्राप्त होता हैं । यह धन व यश देने वाला हैं, मनुष्य की आयु की वृद्धि करने वाला हैं, सभी मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाला हैं, पापों का नाशक एवं समस्त सुख-भोग प्रदान कर अंत में मुक्ति देने वाला है । **इन ग्यारह रुद्रों में सब के अधीश्वर, कल्याणकारी शम्भू अर्थात शंकर मै ही हूँ।** जिस ने शंकाओं का हरण कर लिया है, वो शंकर एवम जिस के हृदय में प्राणी के लिये दया एवम कल्याण कारी भाव हो। प्रत्येक परवर्ती (आगामी) रचना के पूर्व नाश होना आवश्यक है। फल को स्थान देने के लिए फूल को नष्ट होना पड़ता है और बीज को प्राप्त करने के लिए फल का विनाश आवश्यक है। ये बीज पुन नष्ट होकर पौधे को जन्म देते हैं। इस प्रकार, प्रत्येक प्रगति और विकास के पूर्व रचनात्मक विनाश की एक अखण्ड शृंखला बनी रहती है। इस तथ्य को सूक्ष्मदर्शी तत्त्वचिन्तक ऋषियों ने पहचाना और ज्ञान की परिपक्वता में निर्भय होकर उन्होंने रचनात्मक विनाश के सुखदायक देवता शंकर को सम्मान दिया।

यक्षों एक प्रकार के पौराणिक चरित्र हैं। यक्षों को राक्षसों के निकट माना जाता है, यद्यपि वे मनुष्यों के विरोधी नहीं होते, जैसे राक्षस होते है। माना जाता है कि प्रारम्भ में दो प्रकार के राक्षस होते थे; एक जो रक्षा करते थे वे यक्ष कहलाये तथा दूसरे यज्ञों में बाधा उपस्थित करने वाले राक्षस कहलाये। यक्ष का शाब्दिक अर्थ होता है 'जादू की शक्ति'।

मैं यक्ष और राक्षसों में कुबेर हूँ, हिन्दू धर्मग्रन्थो में एक अच्छे यक्ष का उदाहरण मिलता है जिसे कुबेर कहते हैं तथा जो धन-सम्पदा में अतुलनीय थे। पुराणों में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है कुबेर अत्यन्त कुत्सित राक्षसी प्राणी है, स्थूल एवं ह्रस्व काय, (त्रिपाद) तीन

पैरों वाले, विशाल उदर के, लघु मस्तक वाले और जिसके आठ दांत बाहर निकले हुये हैं। स्वर्ग के इस कोषाध्यक्ष की सहायता के लिए उसी के समान कुरूप, भोगवादी और क्रूरचिन्तक यक्ष और राक्षसों की नियुक्ति होती है, जो कोष रक्षा में कुबेर की सहायता करते हैं।

वेद और पुराणों में धरती में रहने वाले देवता वसु, इनके अलग- अलग नाम मिलते हैं। स्कंद, विष्णु तथा हरिवंश पुराणों में 8 वसुओं के नाम इस प्रकार हैं:- 1. आप, 2. ध्रुव, 3. सोम, 4. धर, 5. अनिल, 6. अनल, 7. प्रत्यूष और 8. प्रभाष।

धर धरती के देव हैं, अनल अग्नि के देव है, अनिल वायु के देव हैं, आप अंतरिक्ष के देव हैं, द्यौस या प्रभाष आकाश के देव हैं, सोम चंद्रमास के देव हैं, ध्रुव नक्षत्रों के देव हैं, प्रत्यूष या आदित्य सूर्य के देव हैं।

अन्य नाम से भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अंतरिक्ष, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र आठ प्रकार के वसु कहलाते हैं। ये सभी ब्रह्माण्ड की स्थूल संरचना का निर्माण करते हैं। **इन मे अग्नि को इन का नायक माना गया है जिसे भगवान का मुख भी कहते है।** यज्ञ में हवि अग्नि द्वारा ही भगवान तक पहुचाते है। अग्नि को हवि को भस्म करने के कारण भी हमेशा शुद्ध माना जाता है। यह अग्नि मै ही हूँ।

वेदों में आठ वसुओं का वर्णन किया गया है, जो ऋतुओं के अधिष्ठाता देवता हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि इन वसुओं का मुख अग्नि है। वहाँ, मुख से तात्पर्य अनुभव और भोग के साधन से है। अत, आत्मा ही वह स्रोत है, जहाँ से हमें समस्त ऋतुओं के अनुभव प्राप्त होते हैं।बाह्य प्रकृति में छ ऋतुएँ हैं तथा दो ऋतुएँ मन की हैं सुख और दुख। इस प्रकार यहाँ आठ ऋतुओं का निर्देश है। इन में से अग्नि गर्मी उत्पन्न करती है और अन्य तत्त्वों को ऊर्जा प्रदान करती है। इसलिए श्रीकृष्ण ने इसका उल्लेख अपनी विशेष अभिव्यक्ति के रूप में किया है।

स्वर्गलोक में मेरु पर्वत अपनी समृद्ध प्राकृतिक सम्पदा के लिए प्रसिद्ध है। ऐसा माना जाता है कि स्वर्ग की कई इकाइयाँ इसकी धुरी के चारों ओर चक्कर लगाती रहती हैं। इसलिए श्रीकृष्ण इसके वैभव की चर्चा करते हैं। जिस प्रकार संपत्ति और समृद्धि से धनवान व्यक्ति की पहचान होती है उसी प्रकार उपर्युक्त सभी वैभव भगवान की सर्वव्यापक विभूतियों अर्थात अनन्त शक्तियों को प्रकट करते हैं।

मैं समस्त पर्वतों में मेरु पर्वत हूँ। वास्तव में प्राचीन संस्कृत साहित्य में मेरु का अदभुत वर्णन, जो होते हुए भी भौगोलिक तथ्यों से भरा हुआ है, सिद्ध करता है कि प्राचीन भारतीय, उस समय में भी जब यातायात के साधन नगण्य थे, पृथ्वी के दूरतम प्रदेशों तक जा पहुँचे थे। मत्स्यपुराण में सुमेरु या मेरु पर देवगणों का निवास बताया गया है। कुछ लोगों का मत है कि पामीर पर्वत को ही पुराणों में सुमेरु या मेरु कहा गया है। मेरु पर्वत पर्वत जिस पर ब्रह्मा और अन्य देवताओं का धाम है। परंतु कुछ तथ्य यहा भी है की अजयमेरु जो की अजमेर राजस्थान मे स्थित है ओर पुष्कर धाम जो की ब्रह्मा जी का भी धाम है यही स्थित पहाडो मे से एक पर्वत मेरु पर्वत है। क्युंकि जिस समय की यह बात है तब tethys सागर भी रहा होगा जो की राजस्थान के पश्चिम मे स्थित था जो की अब रेगिस्थान है। श्रंगवान पर्वत पर ऋषी श्रृंग की तपस्या व उनकी जन्म स्थली है उन्हों ने ही श्री राम जी की उत्पत्ति हेतू यज्ञ किया था। मेरु गिरी पर्वत की एक निशसनी महाभारत ग्रंथ मे संजय द्वारा धृतराष्ट्र को महायुद्ध से एक दिन पहले बतलाई गई है,इसमें संजय कहता है,मेरु गिरी पर्वत से दूध से सफेद जल कि धारा बहती है जसे "भागीरथी नदी" नाम से जाना जाता है। सोने, चाँदी, ताँबे आदिके शिखरोंवाले जितने पर्वत हैं, उनमें सुमेरु पर्वत मुख्य है। यह सोने तथा रत्नोंका भण्डार है। इस पर्वत के ऊपर देवता वास करते हैं और इसके नीचे सप्तद्वीप फैले हुए हैं, जिनसे यह जगत् बना है। मेरु पर्वत की ऊँचाई सात से आठ हजार मील मानी गई है, जिसके शिखर से गंगा सभी दिशाओं में बहती है। इस वर्णन से अनेक विद्वानों का यह मत बना कि यह हिमालय का वर्णन है, जो निसन्देह ही अस्वीकार्य नहीं हो सकता। परन्तु हम उसे वस्तुत गूढ़ सांकेतिक भाषा में किया गया तत्त्व का वर्णन मानेंगे। मेरु पर्वत ऐसे प्रभावी स्थान का सूचक है जिसका आधार जम्बू द्वीप में है। जिसके उच्च शिखर से अध्यात्म ज्ञान की गंगा समस्त द्वीपों का कल्याण करने के लिए प्रवाहित होती है।

परमात्मा ने चार विभूतियों में कल्याणकारी एवम संहार कारी चेतना अर्थात शंकर, पवित्र एवम शुद्ध स्वरूप एवम हर वस्तु को ग्रहण कर के भस्म करने वाली अग्नि, धन की रक्षा एवम अधिपति कुबेर, पर्वत शिखर मेरु को अपना स्वरूप बताया। अर्थात जब भी कल्याण स्वरूप कोई का भी नाश हो, धन हो या कठिनता से गुजरना हो या किसी भी शिखर को प्राप्त हो, हमे परमात्मा के स्वरूप ही चिंतन करना चाहिए।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.23।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.24॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥

"purodhasāṁ ca mukhyaṁ māṁ,
viddhi pārtha bṛhaspatim..।
senānīnām ahaṁ skandaḥ,
sarasām asmi sāgaraḥ"..।।

भावार्थ:

हे पार्थ! सभी पुरोहितों में मुख्य बृहस्पति मुझे ही समझ, मैं सभी सेनानायकों में कार्तिकेय हूँ, और मैं ही सभी जलाशयों में समुद्र हूँ। (२४)

Meaning:

Among the spiritual teachers, know me as Brihaspati the foremost, O Paartha. Among the military commanders I am Skanda, and among water bodies I am the ocean.

Explanation:

Further enumerating Ishvara's expressions, Shri Krishna says that Ishvara is expressed as Brihaspati, who is the foremost among the spiritual teachers and the priests of the deities. Brihaspati is described in the Puraanaas as the "purodha" or guru of Indra, who is the king of all the deities. He was the son of Sage Angiras, one of the seven original rishis or Sapta- Rishis. The word Purōdhaḥ; the one who is kept in front as a guide; puraha dattē, the one who is placed in front, one who is seated in front and who guides me when I do rituals, is called purōhitā. His counterpart in the world of the demons or Asuras was Sage Shukrachaarya.

A priest discharges the function of performing ritualistic worship and ceremonies in temples and homes. However, in the Śhrīmad Bhāgavatam, verse 11.16.22, Shree Krishna states that amongst the priests he is

Vashishtha. Why is he differing in the two places? This implies that we should not attach importance to the object, but to the opulence of God that manifests in that object. All the objects of glory that Shree Krishna is describing here should also be understood in the same light. It is not the object that is being emphasized, rather God's opulence that is manifesting in it.

Next, Shri Krishna says that Isvara is expressed through Skandah, the most powerful army commander in the world. Skandaḥ means the one who flowed out; who emerged out of Lord's Śivā's third eye; to destroy some rākṣasās who had extra ordinary strength. Skandah is also known as Kaartikeya and he is the son of Lord Shiva. He is described as having six faces and twelve arms. When the army of the deities began the war to kill the asura named Taraka, a celestial voice proclaimed that victory could be possible only if Skanda was made army commander.

The earth is filled with several water bodies, ranging from tiny rain puddles to lakes that are visible from outer space. But the most expansive body of water is the ocean. Some estimates suggest that there is 1260 million trillion litres of water on planet earth. On average, the ocean is around 1 kilometre deep and can go to 11 kilometres in some places. The ocean sustains life on this earth and is home to thousands of species. This vast and awe-inspiring ocean is one of the most powerful expressions of Ishvara.

With this in mind, we should be able to see Ishvara in our teachers, in military prowess used for just means, and when we drink water.

।। हिंदी समीक्षा ।।

मैं पुरोहितों में बृहस्पति हूँ गुरु ग्रह के अधिष्ठाता बृहस्पति को ऋग्वेद में ब्रह्मणस्पति कहा गया है, जो स्वर्ग के अन्य देवों में उनके पद को स्वत: स्पष्ट कर देता है। देवताओं के वे आध्यात्मिक गुरु माने जाते हैं।

मंगल कार्य भी बृहस्पति तारे को देख कर किये जाते है। बृहस्पति देवराज इंद्र के गुरु, देवताओ के कुल गुरु, विद्या बुद्धि में सर्वश्रेष्ठ है। यहां पुरोधा शब्द का उपयोग किया गया है, जिस का अर्थ है जो मेरे धार्मिक अनुष्ठान में अग्रणी हो कर कार्य को सम्पन्न करवाए। बृहस्पति एक पद भी है इसलिए बृहस्पति का विभिन्न पुराणों में अलग अलग वर्णन है।

स्कन्द (कार्तिकेय) शंकरजीके पुत्र हैं। इन के छः मुख और बारह हाथ हैं। ये देवताओं के सेनापति हैं और संसार के सम्पूर्ण सेनापतियों में श्रेष्ठ हैं। स्कंद देवताओ के सेनापति वीरता के प्रतीक है जिन्होंने जन्म के सातवें दिन ही तारकासुर का वध किया था। कार्तिकेय को तारकासुर वध के बाद दक्षिण भेज कर वहां शिव की उपासना एवम धर्म का प्रचार किया, इसलिये दक्षिण भारत मे शिव एवम कार्तिकेय की पूजा ज्यादा की जाती है। परमात्मा ने वीरता के प्रतीक स्कन्द को अपना स्वरूप बताया। स्कंध का अर्थ भगवान शिव की तीसरी आंख से तेज से महाप्रतापी देव की उत्पत्ति है जो राक्षसों का संहार करने में समर्थ है।

मैं जलाशयों में सागर हूँ इन समस्त उदाहरणों में एक बात स्पष्ट होती है कि भगवान् न केवल स्वयं के समष्टि या सर्वातीत रूप को ही बता रहे हैं, वरन् अपने व्यष्टि या वस्तु व्यापक स्वरूप को भी। विशेषत इस श्लोक में निर्दिष्ट उदाहरण देखिये। निसन्देह ही, गंगाजल का समुद्र के जल से कोई संबंध प्रतीत नहीं होता। यमुना, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु या कावेरी, नील, टेम्स या अमेजन जगत् के विभिन्न सरोवरों का जल, ग्रामों के तालाबों का जल और सिंचाई नहरों का जल, व्यक्तिगत रूप से, स्वतन्त्र हैं, जिनका उस समुद्र से कोई संबंध नहीं है, जो जगत् को आलिंगन बद्ध किये हुए हैं। और फिर भी, यह एक सुविदित तथ्य हैं कि इस विशाल समुद्र के बिना ये समस्त नदियाँ तथा जलाशय बहुत पहले ही सूख गये होते। इसी प्रकार चर प्राणी और अचर वस्तुओं का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व प्रतीत होता है, जिसका सत्य के असीम समुद्र से सतही दृष्टि से कोई संबंध प्रतीत न हो, किन्तु भगवान् सूचित करते हैं कि इस सत्य के बिना यह दृश्य जगत् बहुत पहले ही अपने अस्तित्व को मिटा चुका होता।

एक दृष्टिकोण में सागर शब्द का उपयोग राजा सगर के पुत्रों द्वारा यज्ञ के घोड़े की रक्षा के प्राण देने से गंगा सागर से भी लिया है, जिस में स्नान से गंगा के स्नान के समान ही पूण्य मिलता है। समुन्दर की मर्यादा एवम वर्षा के चक्कर को सभी जानते है। पुराणिक कथा के अनुसार जब इंद्र ने सगर सम्राट के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को चुरा कर कपिल मुनि के आश्रम में पाताल लोक में छुपा दिया था। तो सगर के 60000 पुत्रों ने घोड़े को ढूंढने के

लिए जमीन को खोद दिया। उस से विशालकाय गड्ढा बन गया और उस का नाम सागर हुआ।

सागर को विभूति कहने के साथ जो प्रसंग गंगा अवतरण का जुड़ा हुआ है, वह भी महत्वपूर्ण है। सगर के 60000 पुत्रों के कपिल ऋषि द्वारा भस्म हो जाने से उन के उद्धार के लिए, सगर के एक पुत्र **असमंजस** ने तप किया किंतु वह सफल नहीं हुआ, फिर उस के पुत्र **अंशुमान** ने तप किया किंतु उसे भी सफलता नहीं मिली। इस के बाद उस के बाद उस के पुत्र **भागीरथ** ने तप किया तो गंगा मिली जिसे पृथ्वी में शिव ने अपनी जटाओं में धारण कर के एक जटा से छोड़ा। किंतु आगे जाह्नु ऋषि के आश्रम को बहाने के कारण, ऋषि ने उस का गंगा को पी लिया। और भागीरथ की प्रार्थना से द्रवित हो कर कान से गंगा को पुनः भी छोड़ दिया और इसी कारण गंगा जाह्नवी भी कहलाई। इस के बाद गंगा सगर पुत्रों की राख के पास सागर में मिली और उन का उद्धार किया। वह स्थान गंगा सागर कहलाया। शाब्दिक कथा में आध्यात्मिक अर्थ ब्रह्म तत्व के ज्ञान के स्वरूप में गंगा का उतरना माना गया है, जिसे शरीर के सातवे चक्र **सहस्त्रार** में धारण कर के अल्प स्वरूप में लोककल्याण हेतु प्रवाहित किया गया। किंतु इस को आगे ज्ञानियों ने समझा और कान अर्थात श्रुति के माध्यम से जगत को दिया। यह श्रुति ही जन्म - मरण में फसे जीव को मोक्ष प्रदान करने का साधन बनी और इस ब्रह्म ज्ञान को सब के कल्याण हेतु प्राप्त करने के लिए भागीरथ अर्थात कठिन प्रयास करना होता है।

विभूतियों का अर्थ ही गंभीर है, इसलिये त्याग, ज्ञान, बुद्धिमान, नियमो से पालन कराने वाले बृहस्पति, वीरता एवम संचालन क्षमता के साथ लोक कल्याण के असुर से युद्ध करने वाले के प्रतीक स्कन्द एवम सम्पूर्ण जलाशय का आधार धीर एवम गम्भीर सागर जो अपनी मर्यादा को कभी नही तोड़ता, को परमात्मा ने अपना स्वरूप बताया है। विभूतियों का चयन का आधार नाम नहीं है, उन का आधार उन के गुण है। इसी कारण श्रीमद भागवत पुराण में पुरोहितों में वशिष्ठ जी को अपनी विभूति कहा गया है। वेदों में सामवेद के अतिरिक्त यजुर्वेद को भी विभूति कहा गया है। ऐश्वर्य, संपत्ति, धन, दिव्य या अलौकिक शक्ति जिस के अंतर्गत अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये आठ सिद्धियाँ हैं। इसलिए क्षेत्र के अनुसार जो भी सात्विक गुणों से और अपने अथक प्रयास और अभ्यास से अपने कर्तव्य कर्म के अनुसार श्रेष्ठ और सम्पन्न है, वही परमात्मा की विभूति है।

परमात्मा की विभूतियों में हम ने बचपन से अभी तक उन मूर्तियों को ही परमात्मा समझा जिन्हें हम पूजा गृह में नमन करते है। परमात्मा का अपना कोई स्वरूप नही है, वह अव्यक्त है किंतु सभी के हृदय में बसता है। कर्म, ज्ञान, आचरण, लोककल्याण, ऐष्वर्य, बल, शक्ति, तेज आदि के आधार पर अपनी विभूतियों को बतलाने का उद्देश्य यही है कि हमे संकुचित विचारधारा को त्याग कर परमात्मा के स्वरुप को संसार के प्रत्येक स्वरूप में उस अव्यक्त परमात्मा को देखना आना चाहिये। यदि इस मे भूल हो जाये तो क्या हो सकता है, इसे भी आगे चर्चा करते है। अभी कुछ और विभूतियों को पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.24।।

।। बृहस्पति ।। विशेष 1 - गीता 10.24 ।।

बृहस्पति नौ ग्रह में एक है किंतु यह नाम उस महान ऋषि का जिस की संक्षिप्त जानकारी भी जरूरी है।

बृहस्पति का अनेक जगह उल्लेख मिलता है। ये एक तपस्वी ऋषि थे। इन्हें 'तीक्ष्णशृंग' भी कहा गया है। धनुष बाण और सोने का परशु इन के हथियार थे और ताम्र रंग के घोड़े इन के रथ में जोते जाते थे। बृहस्पति का अत्यंत पराक्रमी बताया जाता है।इन्द्र को पराजित कर इन्होंने उन से गायों को छुड़ाया था। युद्ध में अजय होने के कारण योद्धा लोग इन की प्रार्थना करते थे। ये अत्यंत परोपकारी थे जो शुद्धाचारणवाले व्यक्ति को संकटों से छुड़ाते थे। इन्हें गृहपुरोहित भी कहा गया है, इन के बिना यज्ञयाग सफल नहीं होते।

वेदोत्तर साहित्य में बृहस्पति को देवताओं का पुरोहित माना गया है। ये अंगिरा ऋषि की सुरूपा नाम की पत्नी से पैदा हुए थे। तारा और शुभा इनकी दो पत्नियाँ थीं। एक बार सोम (चंद्रमा) तारा को उठा ले गया। इस पर बृहस्पति और सोम में युद्ध ठन गया। अंत में ब्रह्मा के हस्तक्षेप करने पर सोम ने बृहस्पति की पत्नी को लौटाया। तारा ने बुध को जन्म दिया जो चंद्रवंशी राजाओं के पूर्वज कहलाये।

महाभारत के आदिपर्व में उल्लेख के अनुसार, बृहस्पति महर्षि अंगिरा के पुत्र तथा देवताओं के पुरोहित हैं। ये अपने प्रकृष्ट ज्ञान से देवताओं को उनका यज्ञ भाग या हवि प्राप्त करा देते हैं।

महाभारत के अनुसार बृहस्पति के संवर्त और उतथ्य नाम के दो भाई थे। संवर्त के साथ बृहस्पति का हमेशा झगड़ा रहता था। पद्मपुराण के अनुसार देवों और दानवों के युद्ध में जब देव पराजित हो गए और दानव देवों को कष्ट देने लगे तो बृहस्पति ने शुक्राचार्य का रूप धारणकर दानवों का मर्दन किया और नास्तिक मत का प्रचार कर उन्हें धर्मभ्रष्ट किया। बृहस्पति ने धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और वास्तुशास्त्र पर ग्रंथ लिखे। आजकल ८० श्लोक प्रमाण उनकी एक स्मृति (बृहस्पति स्मृति) उपलब्ध है।

बृहस्पति को देवताओं के गुरु की पदवी प्रदान की गई है। ये स्वर्ण मुकुट तथा गले में सुंदर माला धारण किये रहते हैं। ये पीले वस्त्र पहने हुए कमल आसन पर आसीन रहते हैं तथा चार हाथों वाले हैं। इनके चार हाथों में स्वर्ण निर्मित दण्ड, रुद्राक्ष माला, पात्र और वरदमुद्रा शोभा पाती है। प्राचीन ऋग्वेद में बताया गया है कि बृहस्पति बहुत सुंदर हैं। ये सोने से बने महल में निवास करते है। इन का वाहन स्वर्ण निर्मित रथ है, जो सूर्य के समान दीप्तिमान है एवं जिस में सभी सुख सुविधाएं संपन्न हैं। उस रथ में वायु वेग वाले पीतवर्णी आठ घोड़े तत्पर रहते हैं।

देवगुरु बृहस्पति की तीन पत्नियाँ हैं जिन में से ज्येष्ठ पत्नी का नाम शुभा और कनिष्ठ का तारा या तारका तथा तीसरी का नाम ममता है। शुभा से इन के सात कन्याएं उत्पन्न हुईं हैं, जिन के नाम इस प्रकार से हैं - भानुमती, राका, अर्चिष्मती, महामती, महिष्मती, सिनीवाली और हविष्मती। इसके उपरांत तारका से सात पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुईं। उनकी तीसरी पत्नी से भारद्वाज और कच नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। बृहस्पति के अधिदेवता इंद्र और प्रत्यधि देवता ब्रह्मा हैं।

असुर एवं दैत्य यज्ञ में विघ्न डालकर देवताओं को क्षीण कर हराने का प्रयास करते रहते हैं। इसी का उपाय देवगुरु बृहस्पति रक्षोघ्र मंत्रों का प्रयोग कर देवताओं का पोषण एवं रक्षण करने में करते हैं तथा दैत्यों से देवताओं की रक्षा करते हैं।

बृहस्पति हिन्दू देवताओं के गुरु हैं और दैत्य गुरु शुक्राचार्य के कट्टर विरोधी रहे हैं। ये नवग्रहों के समूह के नायक भी माने जाते हैं तभी इन्हें गणपति भी कहा जाता है। ये ज्ञान और वाग्मिता के देवता माने जाते हैं। इन्होंने ही बार्हस्पत्य सूत्र की रचना की थी। इनका वर्ण सुवर्ण या पीला माना जाता है और इनके पास दण्ड, कमल और जपमाला रहती है। ये सप्तवार में बृहस्पतिवार के स्वामी माने जाते हैं। ज्योतिष में इन्हें बृहस्पति (ग्रह) का स्वामी माना जाता है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 1- 10.23

।। कार्तिकेय ।। गीता विशेष 2 - 10. 24 ।।

कार्तिकेय या मुरुगन एक लोकप्रिय हिन्दु देव हैं और इनके अधिकतर भक्त तमिल हिन्दू हैं। इन की पूजा मुख्यत: भारत के दक्षिणी राज्यों और विशेषकर तमिलनाडु में की जाती है इस के अतिरिक्त विश्व में जहाँ कहीं भी तमिल निवासी/प्रवासी रहते हैं जैसे कि श्रीलंका, मलेशिया, सिंगापुर आदि में भी यह पूजे जाते हैं। इन के छ: सब से प्रसिद्ध मंदिर तमिलनाडु में स्थित हैं। तमिल इन्हें **तमिल कडवुल** यानि कि तमिलों के देवता कह कर संबोधित करते हैं। यह भारत के तमिल नाडु राज्य के रक्षक देव भी हैं। ये भगवान शिव और माता पार्वती के सबसे बड़े पुत्र हैं । इन के छोटे भाई बहन हैं देवी अशोकसुन्दरी , भगवान अय्यपा , देवी ज्योति , देवी मनसा और भगवान गणेश हैं। इन की दो पत्नियां हैं जिन के नाम हैं देवसेना और वल्ली । देवसेना देवराज इंद्र की पुत्री हैं जिन्हें छठी माता के नाम से भी जाना जाता है। वल्ली एक आदिवासी राजा की पुत्री हैं । ऋषि जरत्कारू और राजा नहुष के बहनोई हैं और जरत्कारू और इन की छोटी बहन मनसा देवी के पुत्र महर्षि आस्तिक के मामा ।

षण्मुख, द्विभुज, शक्तिघर, मयूरासीन देवसेनापति कुमार कार्तिक की आराधना दक्षिण भारत में बहुत प्रचलित हैं ये ब्रह्मपुत्री देवसेना-षष्टी देवी के पति होने के कारण सन्तान प्राप्ति की कामना से तो पूजे ही जाते हैं, इन को नैष्ठिक रूप से आराध्य मानने वाला सम्प्रदाय भी है। संसार का चक्र लगाने की प्रतियोगिता में माता-पिता का चक्र लगा कर लड्डू गणेश जी द्वारा खा लेने से नाराज हो कर ये वहां से निकल कर दक्षिण भारत मे बस गए।

तारकासुर के अत्याचार से पीड़ित देवताओं पर प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने पार्वती जी का पाणिग्रहण किया। भगवान शंकर भोले बाबा ठहरे। उमा के प्रेम में वे एकान्तनिष्ठ हो गये। अग्निदेव सुरकार्य का स्मरण कराने वहाँ उज्ज्वल कपोत वेश से पहुँचे। उन अमोघ वीर्य का रेतस धारण कौन करे? भूमि, अग्नि, गंगादेवी सब क्रमश: उसे धारण करने में असमर्थ रहीं। अन्त में शरवण (कास-वन) में वह निक्षिप्त होकर तेजोमय बालक बना। भगवान कार्तिकेय छ: बालकों के रूप में जन्मे थे तथा इन की देखभाल कृतिका (सप्त ऋषि की पत्निया) ने की

थी, इसीलिए उन्हें कार्तिकेय धातृ भी कहते हैं। कृत्तिकाओं ने उसे अपना पुत्र बनाना चाहा। बालक ने छः मुख धारण कर छहों कृत्तिकाओं का स्तनपान किया। उसी से षण्मुख कार्तिकेय हुआ वह शम्भुपुत्र। देवताओं ने अपना सेनापतित्व उन्हें प्रदान किया। तारकासुर उनके हाथों मारा गया।

स्कन्द पुराण के मूल उपदेष्टा कुमार कार्तिकेय (स्कन्द) ही हैं। समस्त भारतीय तीर्थों का उस में माहात्म्य आ गया है। पुराणों में यह सबसे विशाल है।

स्वामी कार्तिकेय सेनाधिपति हैं। सैन्यशक्ति की प्रतिष्ठा, विजय, व्यवस्था, अनुशासन इनकी कृपा से सम्पन्न होता है। ये इस शक्ति के अधिदेव हैं। धनुर्वेद पद इनकी एक संहिता का नाम मिलता है, पर ग्रन्थ प्राप्य नहीं है।

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता विशेष 2 - 10.24 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.25॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः॥

"maharṣīṇāṁ bhṛgur ahaṁ,
girām asmy ekam akṣaram..।
yajñānāṁ japa-yajño 'smi,
sthāvarāṇāṁ himālayaḥ"..।।

भावार्थ:

मैं महर्षियों में भृगु हूँ, मैं सभी वाणी में एक अक्षर हूँ, मैं सभी प्रकार के यज्ञों में जप (कीर्तन) यज्ञ हूँ, और मैं ही सभी स्थिर (अचल) रहने वालों में हिमालय पर्वत हूँ। (२५)

Meaning:

Among the great sages I am Bhrigu, among spoken words I am the one letter (Om). Among the sacrificial rituals I am the ritual of japa, and among the immovable objects I am the Himalayas.

Explanation:

While all fruits and flowers grow from the same land, only the best amongst them are selected for an exhibition. Similarly, everything that is manifest and unmanifest in the universe is the glory of God, but the prominent amongst them are singled out for mention as his opulence.

Shri Krishna considers the great sage Bhrigu, the foremost among the great sages. as Ishvara's manifestation. Bhrigu is one of the seven sages or the Sapta Rishis that were willed into existence by Lord Brahma at the beginning of creation. Bhrigu possesses wisdom, glory, and devotion.

It is said that Bhrigu wanted to test who is the most patient among the holy trinity of Brahma, Vishnu and Shiva. Bhrigu tested Brahma and Shiva and was not pleased. When he went to visit Vishnu, Vishnu was taking a nap and did not notice Bhrigu enter. Angry with this, Bhrigu kicked Vishnu on the chest. Vishnu woke up from his nap and asked Bhrigu whether his foot was hurt, instead of getting angry at just been kicked. Bhrigu then decided that Vishnu was the most patient among the trinity.

Worshippers of God in his formless aspect like to meditate on the "Om" vibration, which is another vibhūti of God. Shree Krishna had declared previously, in verses 7.8 and 8.13, the syllable "Om" to be a sacred sound. It is the anāhat nād (the sound vibration that pervades creation). It is often present in the beginning of Vedic mantras for invoking auspiciousness. It is said that from the mono- syllable "Om" the Gayatri mantra was revealed, and from the Gayatri mantra, the Vedas were revealed. The entire Mandukya Upanishad describes the glory of the word Om in great detail, and uses Om as a method to achieve liberation.

Yajña is the act of dedicating ourselves to the Supreme. The simplest of all yajñas is the chanting of the holy names of God. This is called japa yajña, or the sacrifice of the devotional repetition of the divine names of God. For

the practice of ritualistic yajñas, a number of rules are applicable, all of which need to be meticulously followed. However, in japa yajña, there are no rules. It can be done anywhere and at any time, and is more purifying than the other forms of yajñas. In the present age of Kali, the chanting of the names of God is even more emphasized. “In the age of Kali, the chanting and remembrance of the names of God is the most powerful means of crossing the ocean of material existence.”

The Himalayas, the “abode of snow”, is the highest and most massive mountain system in the world. It comprises a 2400 km span of land with peaks ranging as high as 8000 metres. The Himalayas are a mountain range lying at the north of India. Since ages, they have inspired spiritual awe and wonder in billions of devotees. Their atmosphere, environment, and solitude are conducive to the performance of austerities for spiritual progress. Thus, many great sages reside in the Himalayas in their subtle bodies, practicing penance for their own advancement and for the benefit of humankind. Shri Krishna says that among the immobile objects in the world, the Himalayas are the most prominent manifestation of Ishvara.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यद्यपि सभी प्रकार के फल और फूल एक ही धरती पर उगते हैं किन्तु प्रदर्शन के लिए उनमें से उत्तम का चयन किया जाता है। इसी प्रकार से ब्रह्माण्ड में सभी व्यक्त और अव्यक्त अस्तित्व भगवान का वैभव हैं फिर भी भगवान की विभूतियों का वर्णन करने हेतु इनमें से सर्वश्रेष्ठ का चयन किया जाता है। स्वयं में कोई सर्वश्रेष्ठ नही होता किन्तु परमात्मा ही है जिस के श्रेष्ठ गुण किसी न किसी में कोई न कोई तो होता है। परमात्मा निर्गुणकार है तो उस को सामान्य व्यक्ति किस प्रकार देखे या समझे उस के लिये यह विभूति योग पढ़ रहे है।

ऐसे ही ब्रह्मा के मानस पुत्र ऐश्वर्यमान, सर्व सिद्धियों से सम्पन्न, अविनाशी, सर्वत्र व्याप्त होने के साथ प्रत्यक्ष भी है, एवम बुद्धि के पार पहुचे विज्ञजन परमात्मा का सब ओर से अवलम्बन करने वाले दस महृषि है जिन के नाम भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु,

मनु, दक्ष, वसिष्ठ एवम पुलस्त्य है। इन मे सब से ज्यादा ज्ञानी भृगु हुए, इसलिये ज्ञान के प्रतीक भृगु को परमात्मा ने अपना स्वरूप कहा। भृगु जी इतने महान थे कि जब ब्रह्मा, विष्णु एवम शंकर में कौन सर्वश्रेष्ठ है तो उस के निर्णायक के महृषि भृगु ही निर्विरोध चुने गए। भृगु ज्योतिषी शास्त्र के प्रेणता है एवम ऐसा माना जाता है कि संसार मे जितने भी जीव है उन का भविष्य भृगु जी ने लिख दिया। इन के ग्रंथ की कुछ प्रतिलिपियां आज भी कुछ स्थानों में उपलब्ध है।

अध्याय आठ में ब्रह्म के स्वरूप में एक अक्षर प्रणव अर्थात ॐ को हम ने पढ़ा था। भगवान के निराकार रूप की आराधना 'ओम' स्पंदन का ध्यान करके की जाती है जोकि भगवान की एक अन्य विभूति है। श्रीकृष्ण ने श्लोक 7.18 और 8.13 में यह व्याख्या की है कि प्रणव शब्द 'ओम' पवित्र ध्वनि है। यह अनाहत नाद है और यही स्पंदन ध्वनि सृष्टि में व्याप्त है। प्रायः मांगलिक कार्यों के आरम्भ में इसका उच्चारण किया जाता है। यह कहा जाता है कि एक अक्षर 'ओम' से गायत्री मंत्र प्रकट हुआ और गायत्री मंत्र से वेद प्रकट हुए।

ॐ तीन अक्षर अ उ म से बना है। सूत्र से गुण हो कर ओम बना। अ से तातपर्य यह है जिस तरह वर्णों के अंदर व्यापक अ के बिना वर्णों की सत्ता नही वैसे ही सभी मे परमात्मा के बिना किसी की कोई सत्ता नहीं। म का तात्पर्य जीवात्मा से है। जैसे के वर्ग से प वर्ग का पच्चीसवाँ वर्ण म है वैसे ही तत्वों में पच्चीसवाँ तत्व जीवात्मा है, दोनों के बीच का तत्व उ निर्धारणात्मक है जो यह बताता है कि जीवात्मा परमात्मा का स्वरूप है इसलिये परमात्मा का ध्यान ही ॐ का उच्चारण है। यह वर्णन मांडुक्योपनिषद से लिया गया है। राम चरित मानस में भी जीव अनेक एक श्रीकंता कहा है, इसलिये यह सब जीव को एक ही रहने को कहता है।

ज्ञान योग में यज्ञ की विधि एवम उस की क्रिया पर अधिक जोर है और भक्ति योग के अनन्य भाव से परमात्मा के स्मरण का। इसलिये परमात्मा ने जप यज्ञ अर्थात यज्ञओ में जप यज्ञ श्रेष्ठ है, स्मरण करते हुए वाणी से विभिन्न मंत्रों, श्लोकों, भजन, कीर्तन आदि से परमात्मा के स्मरण को अपना स्वरूप कहा। यज्ञ में हवि समर्पण करते हुए कर्मकांड द्वारा सिद्ध होने वाला यज्ञ उत्तम है किंतु भक्ति मार्ग में जप यज्ञ अत्यंत सुलभ एवम सभी के द्वारा किया जाना संभव है। इसलिये मनु ने भी कहा है कि और कुछ करे या न करे, केवल जप से ही ब्राह्मण सिद्धि पाता है। जप तीन प्रकार के है 1) उत्तम जप जो हृदय में ही जपा जाए 2) माध्यम जिस से शब्द बाहर सुने जा सके 3) अधम जो शोर मचा मचा कर ऊंची

आवाज में किया जाए। जप का अधिकार सभी वर्ग को होने से श्रेष्ठ है। शब्द, अर्थ और ज्ञान इन तीनो का अर्थ एक ही नही होता। जब किसी को आटा पिसाने को कहे तो इस का अर्थ गेंहू को पिसवाना है और ज्ञान यही है कि इस से भोजन तैयार होगा। जप यज्ञ का परमात्मा का नाम जब निरंतर जपने से मन के कुविचार, आचरण और कर्म पर यदि नियंत्रण स्थापित हो और हम सात्विक मार्ग की ओर बढ़े। जप यज्ञ या कीर्तन में कोई नियम नहीं होता। यह यज्ञ किसी भी स्थान और किसी भी समय किया जा सकता है और अन्य प्रकार के यज्ञों की तुलना में यह अधिक आत्म शुद्धि करता है। कलियुग में भगवान के नाम स्मरण पर ही अधिक बल दिया गया है।

कलिजुग केवल नाम आधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरे पारा ।।(रामचरित्मानस)

"कलियुग में भगवान के नाम का स्मरण और जाप माया रूपी संसार के समुद्र को पार करने का सशक्त साधन है।" इसलिए जपयज्ञ को परमात्मा की विभूति को माना गया है।

हिमालय उत्तर भारत में एक पर्वत श्रृंखला है। प्राचीन काल में ये पर्वत श्रृंखलाएँ करोडों भक्तों में आध्यात्मिक कौतुहल, विस्मय और आश्चर्य उत्पन्न करती रही हैं। इन पर्वत श्रृंखलाओं की जलवायु, पर्यावरण और निर्जनता तपस्या एवं आत्मिक उन्नति के लिए अत्यंत अनुकूल और सहायक होती है। इसलिए कई महान ऋषि हिमालय में अपने सूक्ष्म शरीर में रहते हुए स्वयं के आत्म उत्थान और मानव मात्र के कल्याणार्थ घोर तपस्या का अभ्यास करते हैं। इसलिए विश्व की असंख्य बहुसंख्यक पर्वत श्रृंखलाओं में हिमालय भगवान के गौरव को अनुपम ढंग से प्रदर्शित करता है। हिमालय में कुछ महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थल भी है। इनमें हरिद्वार, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गोमुख, देव प्रयाग, ऋषिकेश, कैलाश, मानसरोवर तथा अमरनाथ,शाकम्भरी प्रमुख हैं। भारतीय ग्रंथ गीता में भी इसका उल्लेख मिलता है । जहाँ आज हिमालय है वहां कभी टेथिस नाम का सागर लहराता था।

जो अचल है, जो विभिन्न नदियों , वनस्पतियों का श्रोत्र है। जो देवी देवताओं का निवास स्थान है, जो भगवान शंकर का ससुराल है, जहां हर नारायण तपस्या कर चुके है, ऐसे स्थिर, विशाल एवम बर्फ से ढके सब से ऊंचे पर्वत हिमालय को परमात्मा ने अपना स्वरूप बताया।

जब भी श्रेष्ठ ज्ञान हो, ॐ का जाप हो, मंत्र, श्लोक, भजन कीर्तन हो या फिर किसी को अपने जीवन के उच्चतम शिखर पर देखो, हमेशा परमात्मा के स्वरूप का ही दर्शन होगा।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.25।।

।। महृषि भृगु ।। विशेष 1 - गीता -10.25 ।।

महृषि भृगु को महान एवम विभूति बताया गया है तो उन की कुछ जानकारी भी होना चाहिए। भारतीय ग्रंथ पूर्ण वंशावली, स्थान एवम काल से लिखे गए फिर भी अल्प बुद्धि वाले जब भगवान राम को भी काल्पनिक मानते है तो उन पर आश्चर्य नही, तरस आता है। क्योंकि उन्हों ने अध्ययन किया ही नही।

भार्गववंश के मूलपुरुष महर्षि भृगु जिनको जनसामान्य ऋचाओं के रचईता एक ऋषि, भृगुसंहिता के रचनाकार,यज्ञों मे ब्रहमा बनने वाले ब्राहमण और त्रिदेवों की परीक्षा में भगवान विष्णु की छाती पर लात मारने वाले मुनि के नाते जानता है। परन्तु इन भार्गवों का इतिहास इस भूमण्डल पर एशिया, अमेरिका से लेकर अफ़्रीका महाद्वीप तक बिखरा पड़ा है।

7500 ईसापूर्व प्रोटोइलामाइट सभ्यता से निकली सुमेरु सभ्यता के कालखण्ड मे जब प्रचेता ब्रहमा बने थे। यहीं से भार्गववंश का इतिहास शुरु होता है। महर्षि भृगु का जन्म प्रचेता ब्रहमा की पत्नी वीरणी के गर्भ से हुआ था। अपनी माता से सहोदर ये दो भाई थे। इन के बडे भाई का नाम अंगिरा था। प्रोटोइलामाइट सभ्यता के शोधकर्ता पुरातत्वविदों डॉ. फ़्रैंकफ़ोर्ट, लेंग्डन, सर जान मार्शल और अमेरिकी पुरातत्वविद् डॉ. डी. टेरा ने जिस सुमेरु- खत्ती- हिटाइन-क्रीटन सभ्यता को मिश्र की मूल सभ्यता बताया है,वास्तव में वही भार्गवों की सभ्यता है। प्रोटोइलामाइट सभ्यता चाक्षुष मनुओं और उनके पौत्र अंगिरा की विश्वविजय की संघर्ष गाथा है।

महर्षि भृगु का जन्म जिस समय हुआ,उस समय इनके पिता प्रचेता सुषानगर जिसे कालान्तर मे पर्शिया, ईरान कहा जाने लगा इसी भू-भाग के राजा थे। इस समय ब्रहमा पद पर आसीन प्रचेता के पास उनकी दो पत्नियां रह रहीं थी।पहली भृगु की माता वीरणी दूसरी उरपुर की उर्वसी जिनके पुत्र वशिष्ठ जी हुए।

महर्षि भृगु के भी दो विवाह हुए, इनकी पहली पत्नी दैत्यराज हिरण्यकश्यप की पुत्री दिव्या थी। दूसरी पत्नी दानवराज पुलोम की पुत्री पौलमी थी।

पहली पत्नी दैत्यराज हिरण्यकश्यप की पुत्री दिव्या देवी से भृगु मुनि के दो पुत्र हुए,जिनके नाम शुक्र और त्वष्टा रखे गए। भार्गवों में आगे चलकर आचार्य बनने के बाद शुक्र को शुक्राचार्य के नाम से और त्वष्टा को शिल्पकार बनने के बाद विश्वकर्मा के नाम से जाना गया। इन्ही भृगु मुनि के पुत्रों को उनके मातृवंश अर्थात दैत्यकुल में शुक्र को काव्य एवं त्वष्टा को मय के नाम से जाना गया है।

भृगु मुनि की दूसरी पत्नी दानव राज पुलोम की पुत्री पौलमी की तीन संताने हुई,दो पुत्र च्यवन और ऋचीक तथा एक पुत्री हुई जिस का नाम रेणुका था । च्यवन ऋषि का विवाह गुजरात के खम्भात की खाडी के राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या के साथ हुआ ।

ऋचीक का विवाह महर्षि भृगु ने गाधिपुरी (वर्तमान उ.प्र. राज्य का गाजीपुर जिला)के राजा गाधि की पुत्री सत्यवती के साथ एक हजार श्यामकर्ण घोडे दहेज मे देकर किया । पुत्री रेणुका का विवाह भृगु मुनि उस समय विष्णु पद पर आसीन विवस्वान (सूर्य) के साथ किया । इन शादियों से उनका रुतबा भी काफ़ी बढ गया था।

महर्षि भृगु के सुषानगर से भारत के धर्मारण्य मे (वर्तमान उ.प्र. का बलिया जिला) आने के पौराणिक ग्रन्थों मे दो कथानक मिलते है, भृगु मुनि की पहली पत्नी दिव्या देवी के पिता दैत्यराज हिरण्यकश्यप और उनकी पुत्री रेणूका के पति भगवान विष्णु मे वर्चस्व की जंग छिड गई,इस लडाई मे महर्षि भृगु ने पत्न्नी के पिता दैत्यराज हिरण्यकश्यप का साथ दिया । क्रोधित विष्णु जी ने सौतेली सास दिव्या देवी को मार डाला,इस पारिवारिक झगडे को आगे नही बढ्ने देने से रोकने के लिए महर्षि भृगु के पितामह ऋषि मरीचि ने भृगु मुनि को सुषानगर से बाहर चले जाने की सलाह दिया,और वह धर्मारण्य मे आ गए। दूसरी कथा पद्मपुराण के उपसंहार खण्ड मे मिलती है, जिसके अनुसार मन्दराचल पर्वत पर हो रही यज्ञ में महर्षि भृगु को त्रिदेवों की परीक्षा लेने के लिए निर्णायक चुना गया । भगवान शंकर की परीक्षा के लिए भृगु जी जब कैलाश पहुँचे,उस समय शंकर जी अपनी पत्नी पार्वती के साथ विहार कर रहे थे, शिवगणों ने महर्षि को उन से मिलने नही दिया,उल्टे अपमानित करके कैलाश से भगा दिया। आप ने भगवान शिव को तमोगुणी मानते हुए,शाप दे दिए कि आज से आपके लिंग की ही पूजा होगी। यहॉ से महर्षि भृगु अपने पिता ब्रह्मा जी के ब्रह्मलोक पहुँचे वहाँ इनके माता-पिता दोनों साथ बैठे थे,सोचा पुत्र ही तो है,मिलने के लिए आया होगा। महर्षि का सत्कार नही हुआ,तब नाराज होकर इन्होने ब्रह्माजी को रजोगुणी घोषित करते हुए, शाप दिया कि आपकी कही पूजा ही नही होगी।

क्रोध मे तमतमाए महर्षि भगवान विष्णु के श्रीनार (फ़ारस की खाडी)पहुचे,वहाँ भी विष्णु जी क्षीरसागर मे विश्राम कर रहे थे,उनकी पत्नी उनका पैर दबा रही थी। क्रोधित महर्षि ने उनकी छाती पर पैर से प्रहार किया । भगवान विष्णु ने महर्षि का पैर पकड लिया, और कहा कि मेरे कठोर वक्ष से आपके पैर मे चोट तो नही लगी।महर्षि प्रसन्न हो गए और उनको देवताओ मे सर्वश्रेष्ठ घोषित किया।

कथानक के अनुसार महर्षि के परीक्षा के इस ढग से नाराज मरीचि ऋषि ने इनको प्रायश्चित करने के लिए धर्मारण्य मे तपस्या करके दोषमुक्त होने के लिए बलिया के गंगातट पर जाने का आदेश दिया ।

इस प्रकार से भृगु मुनि अपनी दूसरी पत्नी पौलमी को लेकर सुषानगर (ईरान)से बलिया आ गए। यहाँ पर उन्होने गुरुकुल खोला,उस समय यहां के लोग खेती करना नही जानते थे , उनको खेती करने के लिए जंगल साफ़ कराकर खेती करना सिखाया। यही रहकर उन्होने ज्योतिष के महानग्रन्थ भृगुसंहिता की रचना किया। कालान्तर मे अपनी ज्योतिष गणना से जब उन्हे यह ज्ञात हुआ कि इस समय यहां प्रवाहित हो रही गंगा नदी का पानी कुछ समय बाद सूख जाएगा तब उन्होने अपने शिष्य दर्दर को भेज कर उस समय अयोध्या तक ही प्रवाहित हो रही सरयू नदी की धारा को यहाँ मंगाकर गंगा- सरयू का संगम कराया।

जिसकी स्मृति मे आज भी यहां ददरी का मेला लगता है। महर्षि भृगु के वंशजों ने यहां से लेकर अफ़्रीका तक राज्य किया । जहाँ इन्हे खूफ़ू के नाम से जाना गया ।यही से मानव सभ्यता विकसित होकर आस्ट्रेलिया होते हुए अमेरिका पहुची,अमेरिका की प्राचीन मय-माया सभ्यता भार्गवों की ही देन है।

इस विषय पर और अधिक जानकारी के लिए शिवकुमार सिंह कौशिकेय की पुस्तकों भृगुक्षेत्र महात्म और वसुधैव कुटुम्बकम को भी पढे ।

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता विशेष-1 10.25 ।।

।। प्रणव अक्षर ॐ ।। विशेष 2 - गीता 10.25 ।।

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवाः शिष्यते॥"

ॐ (ईश्वर) की व्याख्या करते हुए शास्त्र कहते हैं- 'ईश्वर पूर्ण है, जीव भी पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण उत्पन्न होता है और पूर्ण में पूर्ण निकल जाने के बाद पूर्ण ही शेष रह जाता है। माता के शरीर से संतान के उत्पन्न हो जाने पर शिशु और माता दोनों ही पूर्ण रहते हैं।

सर्वत्र व्याप्त होने के कारण इस ध्वनि (ॐ) को ईश्वर (प्रणव) की संज्ञा दी गई है। जो ॐ के अर्थ को जानता है, वह अपने आप को जान लेता है और जो अपने आप को जान लेता है वह ईश्वर को जान लेता है। इसलिए ॐ का ज्ञान सर्वोत्कृष्ट है। समस्त वेद इसी ॐ की व्याख्या करते हैं। वैदिक चिंतन में परमात्मा के सर्वोत्तम नाम ॐ की मान्यता है। महाभारत काल के पश्चात इससे भिन्न विचारधाएं चल पड़ीं। बौद्ध तथा जैन विचारधाराओं में ॐ की प्रतिष्ठा पर कोई आंच नहीं आई तथा शैव-संप्रदाय में भी ॐ की प्रतिष्ठा बनी रही। शैव संप्रदाय में 'ॐ नमः शिवायः' मंत्र का प्रचार है जो वेदों के अनुकूल है। शाक्त संप्रदाय भी ॐ का परित्याग नहीं कर सका।

शक्ति की प्रधानता होते हुए भी तांत्रिक मंत्रों में सर्वत्र ॐ का प्रथम उच्चारण होता है। सिक्ख पंथ में एक ओंकार की मान्यता है। इसके अतिरिक्त पारसी, यहूदी तथा अन्य मतों में भी किसी न किसी रूप में ॐ के चिह्नों की मान्यता है। कहने का अर्थ है कि ॐ का अस्तित्व सर्वकालीन तथा सार्वभौमिक है।

परमात्मा की स्तुति भूः, भुवः और स्वः इन्हीं तीन मात्राओं से निकली है। सृष्टि, स्थिति और प्रलय का संपादन भी इन्हीं तीन मात्राओं से होता है। सत् - चित् - आनंद की तीन सत्ताएं भी इन्हीं से प्रकट होती हैं। सभी वैदिक मंत्रों का आरंभ ॐ का उच्चारण कर ही किया जाता है। जैसे नारी नर के बिना फलीभूत नहीं होती इसी प्रकार वेदों की ऋचाएं, श्रुतियां ॐ के उच्चारण के बिना पूर्ण नहीं होतीं। गायत्री मंत्र में ॐ ही समाहित होने यह मंत्र सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

अधिभौतिक, अधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के दुःखों की शांति का सूचक मंत्र है- 'ॐ' अर्थात सृष्टि के प्रारंभ होने के समय यह एक ब्रह्मनाद था। मनुष्य शरीर पांच तत्वों से बना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश। यही आकाश तत्व ही जीवों में शब्द के रूप में विद्यमान है**, ओ३म तीन शब्द 'अ' 'उ' 'म' से मिलकर बना है जो त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा त्रिलोक भूर्भुवः स्वः भूलोक भुवः लोक तथा स्वर्ग लोक का प्रतीक है।** ओ३म् (ॐ) या ओंकार का नामान्तर प्रणव है। यह ईश्वर का वाचक है। ईश्वर के साथ ओंकार का वाच्य-वाचक-भाव सम्बन्ध नित्य है, सांकेतिक नहीं। संकेत नित्य या स्वाभाविक सम्बन्ध को प्रकट

करता है। सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम ओंकाररूपी प्रणव का ही स्फुरण होता है। तदनन्तर सात करोड़ मन्त्रों का आविर्भाव होता है। इन मन्त्रों के वाच्य आत्मा के देवता रूप में प्रसिद्ध हैं। ये देवता माया के ऊपर विद्यमान रह कर मायिक सृष्टि का नियन्त्रण करते हैं। इन में से आधे शुद्ध मायाजगत् में कार्य करते हैं और शेष आधे अशुद्ध या मलिन मायिक जगत् में। इस एक शब्द को ब्रह्माण्ड का सार माना जाता है।

कठोपनिषद में यह भी लिखा है कि आत्मा को अधर अरणि और ओंकार को उत्तर अरणि बनाकर मंथन रूप अभ्यास करने से दिव्य ज्ञानरूप ज्योति का आविर्भाव होता है। उसके आलोक से निगूढ़ आत्मतत्व का साक्षात्कार होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी ओंकार को एकाक्षर ब्रह्म कहा है।

माण्डूक्योपनिषत् में भूत, भवत् या वर्तमान और भविष्य- त्रिकाल- ओंकारात्मक ही कहा गया है। यहाँ त्रिकाल से अतीत तत्व भी ओंकार ही कहा गया है। आत्मा अक्षर की दृष्टि से ओंकार है और मात्रा की दृष्टि से अ, उ और म रूप है। चतुर्थ पाद में मात्रा नहीं है एवं वह व्यवहार से अतीत तथा प्रपंचशून्य अद्वैत है। इसका अभिप्राय यह है कि ओंकारात्मक शब्द ब्रह्म और उससे अतीत परब्रह्म दोनों ही अभिन्न तत्व हैं।

वैदिक वाङ्मय के सदृश धर्मशास्त्र, पुराण तथा आगम साहित्य में भी ओंकार की महिमा सर्वत्र पाई जाती है। इसी प्रकार बौद्ध पन्थ तथा जैन सम्प्रदाय में भी सर्वत्र ओंकार के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति देखी जाती है। प्रणव का बोध कराने के लिए उसका विश्लेषण आवश्यक है। यहाँ प्रसिद्ध आगमों की प्रक्रिया के अनुसार विश्लेषण क्रिया का कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है। ओंकार के अवयवों का नाम है-अ, उ, म, बिन्दु, अर्धचन्द्र रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी या महाशून्य, समना तथा उन्मना। इनमें से अकार, उकार और मकार ये तीन सृष्टि, स्थिति और संहार के सपादक ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के वाचक हैं। प्रकारान्तर से ये जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारण अवस्थाओं के भी वाचक हैं। बिन्दु तुरीय दशा का द्योतक है। प्लुत तथा दीर्घ मात्राओं का स्थितिकाल क्रमश: संक्षिप्त होकर अन्त में एक मात्रा में पर्यवसित हो जाता है। यह ह्रस्व स्वर का उच्चारण काल माना जाता है। इसी एक मात्रा पर समग्र विश्व प्रतिष्ठित है। विक्षिप्त भूमि से एकाग्र भूमि में पहुँचने पर प्रणव की इसी एक मात्रा में स्थिति होती है। एकाग्र से निरोध अवस्था में जाने के लिए इस एम मात्रा का भी भेद कर अर्धमात्रा में प्रविष्ट हुआ जाता है। तदुपरान्त क्रमश: सूक्ष्म और सूक्ष्मतर मात्राओं का भेद करना पड़ता है। बिन्दु अर्धमात्रा है। उसके

अनन्तर प्रत्येक स्तर में मात्राओं का विभाग है। समना भूमि में जाने के बाद मात्राएँ इतनी सूक्ष्म हो जाती हैं कि किसी योगी अथवा योगीश्वरों के लिए उसके आगे बढ़वा संभव नहीं होता, अर्थात् वहाँ की मात्रा वास्तव में अविभाज्य हो जाती है। आचार्यो का उपदेश है कि इसी स्थान में मात्राओं को समर्पित कर अमात्र भूमि में प्रवेश करना चाहिए। इसका थोड़ा सा आभास माण्डूक्य उपनिषद् में मिलता है। बिन्दु मन का ही रूप है। मात्रा विभाग के साथ-साथ मन अधिकाधिक सूक्ष्म होता जाता है। अमात्र भूमि में मन, काल,कलना, देवता और प्रपंच, ये कुछ भी नहीं रहते। इसी को उन्मनी स्थिति कहते हैं। वहाँ स्वयंप्रकाश ब्रह्म निरन्तर प्रकाशमान रहता है।

योगी सम्प्रदाय में स्वच्छन्द तन्त्र के अनुसार ओंकार साधना का एक क्रम प्रचलित है। उसके अनुसार "अ" समग्र स्थूल जगत् का द्योतक है और उसके ऊपर स्थित कारणजगत् का वाचक है मकार। कारण सलिल में विधृत, स्थूल आदि तीन जगतों के प्रतीक अ, उ और म हैं। ऊर्ध्व गति के प्रभाव से शब्दमात्राओं का मकार में लय हो जाता है। तदनन्तर मात्रातीत की ओर गति होती है। म पर्यत गति को अनुस्वार गति कहते हैं। अनुस्वार की प्रतिष्ठा अर्धमात्रा में विसर्गरूप में होती है। इतना होने पर मात्रातीत में जाने के लिए द्वार खुल जाता है। वस्तुत: अमात्र की गति बिन्दु से ही प्रारम्भ हो जाती है।

तन्त्र शास्त्र में इस प्रकार का मात्राविभाग नौ नादों की सूक्ष्म योगभूमियाँ के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि बिन्दु अशेष वेद्यों के अभेद ज्ञान का ही नाम है और नाद अशेष वाचकों के विमर्शन का नाम है। इसका तात्पर्य यह है कि अ, उ और म प्रणव के इन तीन अवयवों का अतिक्रमण करने पर अर्थतत्व का अवश्य अवश्य ही भेद हो जाता है। उसका कारण यह है कि यहाँ योगी को सब पदार्थो के ज्ञान के लिए सर्वज्ञत्व प्राप्त हो जाता है एवं उसके बाद बिन्दुभेद करने पर वह उस ज्ञान का भी अतिक्रमण कर लेता है। अर्थ और ज्ञान इन दोनों के ऊपर केवल नाद ही अवशिष्ट रहता है एवं नाद की नादान्त तक की गति में नाद का भी भेद हो जाता है। उस समय केवल कला या शक्ति ही विद्यमान रहती है। जहाँ शक्ति या चित् शक्ति प्राप्त हो गई वहाँ ब्रह्म का प्रकाशमान होना स्वत: ही सिद्ध है।

इस प्रकार प्रणव के सूक्ष्म उच्चारण द्वारा विश्व का भेद होने पर विश्वातीत तक सत्ता की प्राप्ति हो जाती है। स्वच्छन्द तन्त्र में यह दिखाया गया है कि ऊर्ध्व गति में किस प्रकार कारणों का परित्याग होते होते अखण्ड पूर्णतत्व में स्थिति हो जाती है। "अ" ब्रह्मा का वाचक है; उच्चारण द्वारा हृदय में उसका त्याग होता है। "उ" विष्णु का वाचक हैं; उसका त्याग

कण्ठ में होता है तथा "म" रुद्र का वाचक है ओर उस का त्याग तालुमध्य में होता है। इसी प्रणाली से ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि तथा रुद्रग्रन्थि का छेदन हो जाता है। तदनन्तर बिन्दु है, जो स्वयं ईश्वर रूप है अर्थात् बिन्दु से क्रमश: ऊपर की ओर वाच्यवाचक का भेद नहीं रहता। भ्रूमध्य में बिन्दु का त्याग होता है। नाद सदा शिवरूपी है। ललाट से मूर्धा तक के स्थान में उसका त्याग करना पड़ता है। यहाँ तक का अनुभव स्थूल है। इसके आगे शक्ति का व्यापिनी तथा समना भूमियों में सूक्ष्म अनुभव होने लगता है। इस भूमि के वाच्य शिव हैं, जो सदाशिव से ऊपर तथा परमशिव से नीचे रहते हैं। मूर्धा के ऊपर स्पर्शनुभूति के अनन्तर शक्ति का भी त्याग हो जाता है एवं उसके ऊपर व्यापिनी का भी त्याग हो जाता है। उस समय केवल मनन मात्र रूप का अनुभव होता है। यह समना भूमि का परिचय है। इसके बाद ही मनन का त्याग हो जाता है। इसके उपरान्त कुछ समय तक मन के अतीत विशुद्ध आत्मस्वरूप की झलक दीख पड़ती है। इसके अनन्तर ही परमानुग्रहप्राप्त योगी का उन्मना शक्ति में प्रवेश होता है।

इसी को परमपद या परमशिव की प्राप्ति समझना चाहिए और इसी को एक प्रकार से उन्मना का त्याग भी माना जा सकता है। इस प्रकार ब्रह्मा से शिवपर्यन्त छह कारणों का उल्लंघन हो जाने पर अखण्ड परिपूर्ण सत्ता में स्थिति हो जाती है।

गुरु नानक जी का शब्द एक ओंकार सतनाम बहुत प्रचलित तथा शत्प्रतिशत सत्य है। एक ओंकार ही सत्य नाम है। राम, कृष्ण सब फलदायी नाम ओंकार पर निहित हैं तथा ओंकार के कारण ही इनका महत्व है। बाँकी नामों को तो हमने बनाया है परंतु ओंकार ही है जो स्वयंभू है तथा हर शब्द इससे ही बना है। हर ध्वनि में ओउ्म शब्द होता है।

'ओंकारों यस्य मूलम' वेदों का मूल भी यही ओम् है। ऋग्वेद पत्र है, सामवेद पुष्प है और यजुर्वेद इसका इच्छित फल है। तभी इसे प्रणव नाम दिया गया है जिसे बीज मंत्र माना गया है। इस ओम् के उच्चारण में केवल पंद्रह सैकंड का समय लगता है जिसका आधार 8, 4, 3 सैकेंड के अनुपात पर माना गया है। अक्षर 'अ' का उच्चारण स्थान कंठ है और 'उ' एवं 'म' का उच्चारण स्थान ओष्ठ माना गया है। नाभि के समान प्राणवायु से एक ही क्रम में श्वास प्रारंभ करके ओष्ठों तक आट सैकंड का समय और फिर मस्तक तक उ एवं म् का उच्चारण करके 4, 3 के अनुपात का समय लगता है और यह प्रक्रिया केवल 15 सैकंड में समाप्त होती है।

अंतरिक्ष तथा वायुमंडल में सौरमंडल के चारों ओर ग्रहों की गति से जो शोर हो रहा है वह ॐ की ध्वनि की परिणति है। ॐ ब्रह्माण्ड के अंदर नियमित ध्वनि है। सूक्ष्म इंद्रियों द्वारा ध्यान लगाने पर इसकी अनुभूति हो सकती है।

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता विशेष 2 - 10.25 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.26॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥

"aśvatthaḥ sarva- vṛkṣāṇāṁ,
devarṣīṇāṁ ca nāradaḥ..।
gandharvāṇāṁ citrarathaḥ,
siddhānāṁ kapilo muniḥ"..।।

भावार्थ:

मैं सभी वृक्षों में पीपल हूँ, मैं सभी देवर्षियों में नारद हूँ, मै सभी गन्धर्वों में चित्ररथ हूँ और मै ही सभी सिद्ध पुरूषों में कपिल मुनि हूँ। (२६)

Meaning:

Among the trees I am Ashvattha, among the divine sages I am Naarada. Among the Gandharvas I am Chitraratha and among the Siddhas I am sage Kapila.

Explanation:

Elaborating upon Ishvara's expressions, Shri Krishna says that the Aswattha tree is Ishvara's expression, as it is the foremost among trees. The Peepul tree, as it is more commonly known, is used to symbolically describe the human condition in the 15th chapter of the Gita. However, chapter 15 reflected on Aswattha tree represent Sansara Tree. In India, women traditionally worship this tree for obtaining a good husband. In general, trees

are given the status of saints in India. Like saints, trees always give back more to the world than they take.

The peepal tree (sacred fig tree) has a very soothing effect on people who sit under it. Since it expands by sending down aerial roots, it is huge and provides cooling shade in a large area. The Buddha meditated and attained enlightenment under a peepal tree (sacred fig tree).

We had already encountered Sage Naarada earlier in this chapter in 10.13. The celestial sage Narad is the Guru of many great personalities such as Ved Vyas, Valmiki, Dhruv, and Prahlad. He is always engaged in singing the glories of God and doing divine works throughout the three worlds. He is also famous for deliberately creating quarrels and problems, and people sometimes misunderstand him to be a mischief-maker. However, it is his desire to purify famous personalities that makes him create quarrels around them, which ultimately result in self-introspection and purification.

Shri Krishna references Gandharvas next. Gandharvas are celestial beings who are accomplished singers, musicians and dancers. Among these, he considers Chitraratha foremost, and a manifestation of Ishvara. The word Chitraratha means one who has a wonderful chariot. In the Mahabhaarata, Chitraratha taught the fine arts to Arjuna, and advised the Paandavas to appoint a sage to guide them.

We now come to the notion of “siddhis”. A siddhi is a superhuman power. Most people are drawn to sages who demonstrate superhuman powers. But just because someone has superhuman powers does not necessarily mean that he has achieved liberation. Sage Kapila was one of those rare individuals who not only had superhuman powers but also had achieved liberation. He is credited as the originator of the Saankhya school of philosophy. he also delivered a sermon to his mother which is known as the Kapila Gita.

।। हिंदी समीक्षा ।।

वृक्षो में अनेक नाम जिस में स्वर्ग के पारिजात एवम धरती में चंदन भी है किंतु गुणों के आधार पर परमात्मा ने पीपल को अपना स्वरूप बताया। पीपल की जड़ में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तो में भगवान हरि एवम फल में देवता सदा निवास करते है। वैद्यक दृष्टिकोण से भी इस जड़, छाल, पत्ते, फल सभी रोग नाशक है। इस पर जल चढ़ाना देवताओ से ले कर पितरों तक अर्पण है। इस कि लकड़ी हवन में काम आती है एवम यही वृक्ष रात में भी आक्सीजन ही देता है एवम कार्बन सोखता है। **इस लिये यह अश्वस्थ वृक्ष मैं ही हूँ।**

अश्व का एक अर्थ कल तक जो रहेगा, ऐसा नही कहा जा सकता भी है। इस कि जड़े ऊपर एवम शाखाएं नीचे है, जिसे परमात्मा एवम प्रकृति से जोड़ा गया है।

मैं देवर्षियों में नारद हूँ देवर्षि नारद हमारी पौराणिक कथाओं के एक प्रिय पात्र हैं। नारद का वर्णन हरिभक्त के रूप में किया गया है। वे न केवल देवर्षियों में महान् हैं, वरन् वे प्राय इस पृथ्वीलोक पर अवतरित होकर लोगों के मन में गर्व अभिमान दूर करने के लिए जानबूझकर उनकी आपस में कलह करवाते हैं और अन्त में सबको भक्ति का मार्ग दर्शाकर स्वर्ग सुख की प्राप्ति कराते हैं। सम्भवत, श्रीकृष्ण स्वयं धर्मोद्धारक और धर्मप्रचारक होने के नाते नारद जी के प्रति उनके प्रचार के उत्साह के कारण आदर भाव रखते हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार अनेक अधर्मियों को धर्म मार्ग में परिवर्तित कर नारद जी ने उन्हें मोक्ष दिलाया है। नारद जी को दक्ष प्रजापति का शाप था कि वे किसी एक जगह स्थिर नही रह सकते, इसलिये वे विचरण करते रहते है। यह ब्रह्मा जी मानस पुत्र, ज्ञानी एवम निपुण मंन्त्र दृष्टा है। महाभारत के सभापर्व के पांचवे अध्याय में इन्हें वेद और उपनिषद के मर्मज्ञ, देवगणों से पूजित, इतिहास पुराणों का विशेषज्ञ, अतीत कल्पो की बातों को जानने वाला, नीतिज्ञ, मेधावी, स्मरणशील, ज्ञानी, कवि, संगीत विशारद, भगवान का भक्त, विद्या एवम गुणों का भंडार, सदाचार का आधार, सब के हितकारी आदि गुणों से सम्पन्न बतलाया गया है। दुर्भाग्य वश फिल्मों एवम कथा कारो ने नारद की सही छवि कभी प्रस्तुत नहीं की और इन को विदूषक, दो को भिड़ाने वाला जैसा ही बताया। नारद जी के विषय में हम 10.13 में भी पढ़ चुके है।

गंधर्व एक देवयोनि विशेष है जो देव लोक में गान, वाद्य एवम नाट्य अभिनय करते है। गंधर्व में जो मनुष्य पुण्य कर्मों से गंधर्व बनते है उन्हें मर्त्य कहते है एवम जो कल्प के

प्रारम्भ से गंधर्व है उन्हें दिव्य कहते है। महृषि कश्यप की दो पत्नियों मोयने एवम प्राधेय की उत्पन्न संताने ही गंधर्व कहलाई। **इस मे 16 मोयने एवम 14 प्राधेय हुए। गान, संगीत एवम नाट्य में सब से निपुण चित्ररथ गंधर्व में ही हूँ। चित्ररथ प्राधेय गंधर्व एवम दिव्य संगीत एवम वाद्य के निपुण संचालक है।**

मैं सिद्धों में कपिल मुनि हूँ ये सिद्ध पुरुष जादूगर नहीं हैं। इस संस्कृत शब्द का अर्थ है जिस पुरुष ने अपने लक्ष्य (साध्य) को सिद्ध (प्राप्त) कर लिया है। अत आत्मानुभवी पुरुष ही सिद्ध कहलाता है।सिद्ध दो तरहके होते हैं -- एक तो साधन करके सिद्ध बनते हैं और दूसरे जन्मजात सिद्ध होते हैं। कपिलजी जन्मजात सिद्ध हैं और इनको आदिसिद्ध कहा जाता है। ये कर्दमजी के यहाँ देवहूति के गर्भ से प्रकट हुए थे। ये सांख्य के आचार्य और सम्पूर्ण सिद्धों के गणाधीश हैं। ऐसे सिद्ध पुरुषों में भगवान् कहते हैं कि, मैं कपिल मुनि हूँ। मुनि शब्द से उस पारम्परिक धारणा को बनाने की आवश्यकता नहीं है, जिस में मुनि को एक बृद्ध, पक्व केश वाले, प्राय निर्वस्त्र और साधारणत अगम्य स्थानों में विचरण करने वाले पुरुष के रूप में अज्ञानी चित्रकारों के द्वारा चित्रित किया जाता है। उस के विषय में ऐसी धारणा प्रचलित हो गई है कि वह एक सामान्य नागरिक के समान न होकर जंगलों का कोई विचित्र प्राणी है, जो विचित्र् आहार पर जीता है। वस्तुत मुनि का अर्थ है मननशील अर्थात् तत्त्वचिन्तक पुरुष। वह शास्त्रीय कथनों के गूढ़ अभिप्रायों पर सूक्ष्म, गम्भीर मनन करता है। ऐसे विचारकों में मैं कपिल मुनि हूँ। आज के युग मे अनुसंधान में जुटे वैज्ञानिक भी मुनि ही है। सांख्य दर्शन के प्रणेता के रूप में कपिल मुनि सुविख्यात हैं, जिनका संकेत यहाँ किया गया है। अनेक सिद्धांतों पर गीता का सांख्य दर्शन के साथ मतैक्य है। अत भगवान् यहाँ कपिल मुनि को अपनी विभूति की सम्मानित प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं।

इस श्लोक में सर्वगुण सम्पन्न, एकाग्र चित्त, अपने कार्यो में दक्ष, ज्ञानी, वैज्ञानिक एवम अनुसधान में लगे महान कर्म करने वाले एवम जन हित कारी लगभग सभी क्षेत्र विशेष के विभूतियो को परमात्मा ने अपना स्वरूप बताया है। परमात्मा कभी कभी स्वयं प्रकट नही होता किन्तु अपनी उपस्थिति वो इन विभूतियो के द्वारा भी प्रकट करता है। श्रेष्ठता एवम नम्रता ही परमात्मा का स्वरूप है।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.26।।

।। अश्वस्थ अर्थात पीपल ।। विशेष 1- 10.26।।

अश्वत्थ,पीपल का संस्कृत नाम है। हिन्दू लोग इसे पवित्र वृक्ष मानते हैं। हिन्दू धर्मग्रन्थों में इसका बहुत उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में इसे पीपल कहा गया है। बौद्ध ग्रन्थ इसे 'बोधि वृक्ष' कहते हैं।

अश्वत्थ वृक्ष को कुछ स्थान में बरगद भी कहा गया है क्योंकि बरगद के वृक्ष के नीचे बैठने वालों को शीतलता का आभास होता है। यह वृक्ष घना होता है और विस्तृत क्षेत्र में ठण्डी छाया प्रदान करता है। यह अपनी वायवीय जड़ों को नीचे पहुँचा कर फैलाता है। महात्मा बुद्ध को बरगद के वृक्ष के नीचे ध्यान लगाते हुए ज्ञान प्राप्त हुआ था। हम इसे पीपल से वृक्ष ही नामंकित करते है।

भारतीय संस्कृति में पीपल देववृक्ष है, इसके सात्विक प्रभाव के स्पर्श से अन्त: चेतना पुलकित और प्रफुल्लित होती है। स्कन्द पुराण में वर्णित है कि अश्वत्थ (पीपल) के मूल में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में श्रीहरि और फलों में सभी देवताओं के साथ अच्युत सदैव निवास करते हैं।

पीपल भगवान विष्णु का जीवन्त और पूर्णत: मूर्तिमान स्वरूप है। भगवान कृष्ण कहते हैं- समस्त वृक्षों में मैं पीपल का वृक्ष हूँ।

स्वयं भगवान ने उससे अपनी उपमा देकर पीपल के देवत्व और दिव्यत्व को व्यक्त किया है। शास्त्रों में वर्णित है कि पीपल की सविधि पूजा-अर्चना करने से सम्पूर्ण देवता स्वयं ही पूजित हो जाते हैं।

पीपल का वृक्ष लगाने वाले की वंश परम्परा कभी विनष्ट नहीं होती। पीपल की सेवा करने वाले सद्गति प्राप्त करते हैं। पीपल वृक्ष की प्रार्थना के लिए अश्वत्थस्तोत्र में पीपल की प्रार्थना का मंत्र भी दिया गया है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ व्रतराज में अश्वत्थोपासना में पीपल वृक्ष की महिमा का उल्लेख है। अश्वत्थोपनयनव्रत में महर्षि शौनक द्वारा इसके महत्त्व का वर्णन किया गया है। अथर्ववेदके उपवेद आयुर्वेद में पीपल के औषधीय गुणों का अनेक असाध्य रोगों में उपयोग वर्णित है। पीपल के वृक्ष के नीचे मंत्र, जप और ध्यान तथा सभी प्रकार के संस्कारों को शुभ माना गया है। श्रीमद्भागवत् में वर्णित है कि द्वापर युग में परमधाम जाने से पूर्व योगेश्वर श्रीकृष्ण इस दिव्य पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान में लीन हुए। यज्ञ में प्रयुक्त किए जाने वाले 'उपभृत पात्र' (दूर्वी, स्त्रुआ आदि) पीपल-काष्ट से ही बनाए जाते हैं। पवित्रता की दृष्टि से यज्ञ

में उपयोग की जाने वाली समिधाएं भी आम या पीपल की ही होती हैं। यज्ञ में अग्नि स्थापना के लिए ऋषिगण पीपल के काष्ठ और शमी की लकड़ी की रगड़ से अग्नि प्रज्वलित किया करते थे।

ग्रामीण संस्कृति में आज भी लोग पीपल की नयी कोपलों में निहित जीवनदायी गुणों का सेवन कर उम्र के अंतिम पडाव में भी सेहतमंद बने रहते हैं।

पीपल में अदभुत जिजीविषा (जीने की चाह) का गुण है। आप उसे उखाड़ कर फेंक दीजिए, वह कहीं भी फिर से उग आएगा। मिट्टी तो मिट्टी वह पत्थर पर भी उग आता है। आपके घर की दीवारों को तोड़ कर उग आता है। भगवान श्रीकृष्ण मानव को यह संदेश देते हैं कि हे मनुष्य तुम सभी में पीपल के समान ही जिजीविषा होनी चाहिए! स्थान को पकड़कर मत बैठो! जहां भी संभावना हो, जैसी भी परिस्थिति हो- तुम्हारे अंदर जीने की चाह बनी रहनी चाहिए! तुम्हारी जड़ें कहीं भी फूट सकती हैं, खुद को ऐसा बनाओ! आखिर भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी जड़ों को मथुरा से उखाड़, द्वारका नगरी को बसाया ही था।

पीपल का दूसरा गुण भी जीवन देने से जुड़ा है! सभी वृक्षों में सबसे अधिक ऑक्सीजन पीपल का वृक्ष ही देता है। इतना ही नहीं, पीपल एक मात्र वृक्ष है, जो दिन के समान रात में भी ऑक्सीजन देता है। अन्य वृक्ष रात में कार्बनडॉयऑक्साइड छोड़ते हैं, जिसके सन्निकट रात में रहना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक होता है। लगातार, अनवरत आप ध्यान समाधि में एक मात्र पीपल के वृक्ष के नीचे ही बैठे रह सकते हैं। अन्य वृक्षों के पास से आपको रात के समय उठना पड़ेगा। सनातन धर्म ने इसी कारण पीपल पर ब्रह्म का वास बताया है। ब्रह्म अर्थात सृष्टि! सृष्टि जिस दिन अपनी जिजीविषा छोड़ देगी, मानव ही नहीं, पूरे प्राणी जगत का विनाश हो जाएगा!

गीता में भी श्रीकृष्ण ने पीपल को श्रेष्ठ कहा है। भविष्य पुराण में ऐसे कई पेड़ों का उल्लेख है जो पापनाशक माने गए हैं। वृक्षायुर्वेद में पेड़ों के औषधीय महत्व के बारे में विस्तार से जानकारी है।

वनस्पति जगत में पीपल ही एकमात्र ऐसा वृक्ष है जिसमें कीड़े नहीं लगते हैं। यह वृक्ष सर्वाधिक ऑक्सीजन छोड़ता है जिसे आज विज्ञान ने स्वीकार किया है।

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता विशेष 1- 10.26 ।।

।। देवऋषि नारद ।। विशेष 2- 10.26 ।।

देवर्षि नारद धर्म के प्रचार तथा लोक- कल्याण हेतु सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। शास्त्रों में इन्हें भगवान का मन कहा गया है। इसी कारण सभी युगों में, सभी लोकों में, समस्त विद्याओं में, समाज के सभी वर्गो में नारद जी का सदा से एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। मात्र देवताओं ने ही नहीं, वरन् दानवों ने भी उन्हें सदैव आदर किया है। समय-समय पर सभी ने उनसे परामर्श लिया है। यद्यपि नारद जी के विषय में हम 10.13 श्लोक में पढ़ भी चुके है किंतु अनेक विषयों के धनी नारद जी ने दीक्षा सनत कुमार से ली थी जिन्होंने उन्हें भूमा विद्या सिखाई थी। भुमा विद्या को छांदोग्य उपनिषद में ब्रह्म विद्या से भी परिभाषित किया है। इसलिए नारद जी ज्ञानी और अनेक सिद्धियों के ज्ञाता थे और इन्हे भी परमात्मा का अवतार भी कहा गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय के २६वें श्लोक में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने इन की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा है - **देवर्षीणाम् च नारदः।** देवर्षियों में मैं नारद हूं। श्रीमद्भागवत महापुराणका कथन है, सृष्टि में भगवान ने देवर्षि नारद के रूप में तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वततंत्र (जिसे नारद- पांचरात्र भी कहते हैं) का उपदेश दिया जिस में सत्कर्मो के द्वारा भव-बंधन से मुक्ति का मार्ग दिखाया गया है। नारद जी मुनियों के देवता थे।

वायुपुराण में देवर्षि के पद और लक्षण का वर्णन है- देवलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले ऋषिगण देवर्षि नाम से जाने जाते हैं। भूत, वर्तमान एवं भविष्य-तीनों कालों के ज्ञाता, सत्यभाषी, स्वयं का साक्षात्कार करके स्वयं में सम्बद्ध, कठोर तपस्या से लोकविख्यात, गर्भावस्था में ही अज्ञान रूपी अंधकार के नष्ट हो जाने से जिनमें ज्ञान का प्रकाश हो चुका है, ऐसे मंत्रवेत्ता तथा अपने ऐश्वर्य (सिद्धियों) के बल से सब लोकों में सर्वत्र पहुँचने में सक्षम, मंत्रणा हेतु मनीषियों से घिरे हुए देवता, द्विज और नृपदेवर्षि कहे जाते हैं।

इसी पुराण में आगे लिखा है कि धर्म, पुलस्त्य, क्रतु, पुलह, प्रत्यूष, प्रभास और कश्यप - इनके पुत्रों को देवर्षि का पद प्राप्त हुआ। धर्म के पुत्र नर एवं नारायण, क्रतु के पुत्र बालखिल्यगण, पुलह के पुत्र कर्दम, पुलस्त्य के पुत्र कुबेर, प्रत्यूष के पुत्र अचल, कश्यप के पुत्र नारद और पर्वत देवर्षि माने गए, किंतु जनसाधारण देवर्षि के रूप में केवल नारद जी को

ही जानता है। उनकी जैसी प्रसिद्धि किसी और को नहीं मिली। वायुपुराण में बताए गए देवर्षि के सारे लक्षण नारदजी में पूर्णत:घटित होते हैं।

स्वर्ग के देवताओं के महर्षि नारद कई महान ऋषियों एवं संतों जैसे ऋषि वेदव्यास, वाल्मीकि, ध्रुव और प्रह्लाद के गुरु हैं। वे निरन्तर भगवान की महिमा का गान व बखान करते रहते हैं और तीनों लोकों में दिव्य कार्यों की पूर्ति करते हैं। वह जानबूझकर विवाद और समस्याएँ उत्पन्न करने के लिए प्रसिद्ध हैं और कभी-कभी कुछ गन्धर्व उन्हें उपद्रवी समझने लगते हैं जबकि उनकी यह इच्छा होती है कि महान लोगों के बीच विवाद उत्पन्न कर अंततः आत्मनिरीक्षण द्वारा उनके अत:करण को शुद्ध किया जाए।

आधुनिक सिनेमा एवम पंडितो के काव्यों में देवऋषि को उपहास का पात्र बना कर प्रस्तुत किया है जो कहीं भी विचरण करता है और इधर उधर की बात लगाता है। यह सर्वथा मिथ्या प्रचार ही है।नारद जी के पात्र को जिस प्रकार से प्रस्तुत किया जा रहा है, उससे आम आदमी में उन की छवि लडा़ई-झगडा़ करवाने वाले व्यक्ति अथवा विदूषक की बन गई है। यह उन के प्रकाण्ड पांडित्य एवं विराट व्यक्तित्व के प्रति सरासर अन्याय है। नारद जी का उपहास उडाने वाले श्रीहरि के इन अंशावतार की अवमानना के दोषी है।

महाभारत के सभापर्व के पांचवें अध्याय में नारद जी के व्यक्तित्व का परिचय इस प्रकार दिया गया है - देवर्षि नारद वेद और उपनिषदों के मर्मज्ञ, देवताओं के पूज्य, इतिहास- पुराणों के विशेषज्ञ, पूर्व कल्पों (अतीत) की बातों को जानने वाले, न्याय एवं धर्म के तत्त्वज्ञ, शिक्षा, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान, संगीत-विशारद, प्रभावशाली वक्ता, मेधावी, नीतिज्ञ, कवि, महापण्डित, बृहस्पति जैसे महाविद्वानोंकी शंकाओं का समाधान करने वाले, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के यथार्थ के ज्ञाता, योगबल से समस्त लोकों के समाचार जान सकने में समर्थ, सांख्य एवं योग के सम्पूर्ण रहस्य को जानने वाले, देवताओं-दैत्यों को वैराग्य के उपदेशक, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य में भेद करने में दक्ष, समस्त शास्त्रों में प्रवीण, सद्गुणों के भण्डार, सदाचार के आधार, आनंद के सागर, परम तेजस्वी, सभी विद्याओं में निपुण, सबके हितकारी और सर्वत्र गति वाले हैं।

अट्ठारह महापुराणों में एक नारदोक्त पुराण; बृहन्नारदीय पुराण के नाम से प्रख्यात है। मत्स्यपुराण में वर्णित है कि श्री नारद जी ने बृहत्कल्प-प्रसंग में जिन अनेक धर्म-आख्यायिकाओं को कहा है, २५,००० श्लोकों का वह महाग्रन्थ ही नारद महापुराण है। वर्तमान समय में उपलब्ध नारदपुराण २२,००० श्लोकों वाला है। ३,००० श्लोकों की न्यूनता प्राचीन

पाण्डुलिपि का कुछ भाग नष्ट हो जाने के कारण हुई है। नारदपुराण में लगभग ७५० श्लोक ज्योतिषशास्त्र पर हैं। इनमें ज्योतिष के तीनों स्कन्ध- सिद्धांत, होरा और संहिता की सर्वांगीण विवेचना की गई है। नारदसंहिता के नाम से उपलब्ध इनके एक अन्य ग्रन्थ में भी ज्योतिषशास्त्र के सभी विषयों का सुविस्तृत वर्णन मिलता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि देवर्षिनारद भक्ति के साथ-साथ ज्योतिष के भी प्रधान आचार्य हैं। आजकल धार्मिक चलचित्रों और धारावाहिकों में नारद जी का जैसा चरित्र- चित्रण हो रहा है, वह देवर्षि की महानता के सामने एकदम बौना है। भगवान की अधिकांश लीलाओं में नारद जी उनके अनन्य सहयोगी बने हैं। वे भगवान के पार्षद होने के साथ देवताओं के प्रवक्ता भी हैं। नारद जी वस्तुत: सही मायनों में देवर्षि हैं। कोई भी शास्त्र या ग्रंथ शायद ही ऐसा हो जिस में नारद जी का जिक्र या वर्णन न हो।

।।हरि ॐ तत सत ।। गीता विशेष 2 - 10.26 ।।

।। गंधर्व - चित्ररथ ।। विशेष 3 -10.26 ।।

गंधर्वों को देवताओं का साथी माना गया है। गंधर्व विवाह, गंधर्व वेद और गंधर्व संगीत के बारे में आप ने सुना ही होगा। एक राजा गंधर्वसेन भी हुए हैं जो विक्रमादित्य के पिता थे। गंधर्व नाम से देश में कई गांव हैं। गांधार और गंधर्वपुरी के बारे में भी आप ने सुना ही होगा। आओ जानते हैं कि ये गंधर्व कौन और गंधर्व साधना क्या है।

1. दरअसल, गंधर्व नाम की एक जाति प्राचीनकाल में हिमालय के उत्तर में रहा करती थी। उक्त जाति नृत्य और संगीत में पारंगत थी। वे सभी इंद्र की सभा में नृत्य और संगीत का काम करते थे। पौराणिक साहित्य में गंधर्वों का एक देवोपम जाति के रूप में उल्लेख हुआ है।

2. गन्धर्व नाम से एक अकेले देवता थे, जो स्वर्ग के रहस्यों तथा अन्य सत्यों का उद्घाटन किया करते रहते थे। वे देवताओं के लिए सोम रस प्रस्तुत करते थे।

3. विष्णु पुराण के अनुसार वे ब्रह्मा के पुत्र थे और चूंकि वे मां वाग्देवी का पाठ करते हुए जन्मे थे, इसीलिए उनका नाम गंधर्व पड़ा। दरअसल, ऋषि कश्यप की पत्नी अरिष्ठा से गंधर्वों का जन्म हुआ।

4. **गंधर्वों का प्रधान चित्ररथ था और उनकी पत्नियां अप्सराएं हैं।**

5. अथर्ववेद में गंधर्वों की गणना देवजन, पृथग्देव और पितरों के साथ की गई है। अथर्ववेद में ही उनकी संख्या 6333 बतायी गई है।

6. दुर्योधन को गंधर्वों की सेना ने घेर लिया था तब पांडवों ने गंधर्वों के साथ युद्ध करके उसकी जान बताई थी।

7. बहुत से लोग गंधर्वों की पूजा और साधना करते हैं। गंधर्व साधना से ऋद्धि-सिद्धि और समृद्धि की प्राप्ति होती है। कलाकार लोग कहते हैं गंधर्व की साधना। जिन लोगों को सुंदर स्त्री की कामना रहती हैं वे भी करते हैं गंधर्व साधना। गंधर्व और अप्सराओं को प्राय: एक साथ ही स्मरण किया जाता है।

8. गंधर्व गायत्री मंत्र :

ॐ प्रतद्दोचेदमृतंनुविद्दान्गन्धर्वो धमबिभृतंगुहासत्।

त्रीणिपदानिनिहितागुहास्य यस्तानिवेदसपितु: पितासत्।

ॐ भूर्भुव: स्व: भोगंधर्वइहा० ॐ गंधर्वाय नम:।।

9. महाभारत के सभापर्व में वर्णन है कि कुछ गंधर्व इन्द्र की सभा में और कुछ गंधर्व कुबेर की सभा में उपस्थित होते हैं। चित्रसेन 27 गंधर्वों और अप्सराओं के साथ युधिष्ठिर की सभा में इसलिए आए थे कि वे अर्जुन के मित्र थे। अर्जुन ने इनसे संगीत सीखा था।

10. गन्धर्वों के दूसरे नाम 'गातु' और 'पुलम' भी हैं। महाभारत में गन्धर्व नाम की एक ऐसी जाति का भी उल्लेख हुआ है, जो पहाड़ों और जंगलों में रहती थी। ऋग्वेद में गंधर्व वायुकेश, सोमरक्षक, मधुर-भाषी, संगीतज्ञ और स्त्रियों के ऊपर अतिप्राकृत रूप से प्रभविष्णु बतलाए गए हैं। शास्त्रों के अनुसार देवराज इन्द्र के स्वर्ग में 11 अप्सराएं प्रमुख सेविका थीं। ये 11 अप्सराएं हैं-कृतस्थली, पुंजिकस्थला, मेनका, रम्भा, प्रम्लोचा, अनुम्लोचा, घृताची, वर्चा, उर्वशी, पूर्वचित्ति और तिलोत्तमा। इन सभी अप्सराओं की प्रधान अप्सरा रम्भा थी।

अलग-अलग मान्यताओं में अप्सराओं की संख्या 108 से लेकर 1008 तक बताई गई है। कुछ नाम और- अम्बिका, अलम्वुषा, अनावद्या, अनुचना, अरुणा, असिता, बुदबुदा, चन्द्रज्योत्सना, देवी, घृताची, गुनमुख्या, गुनुवरा, हर्षा, इन्द्रलक्ष्मी, काम्या, कर्णिका, केशिनी,

क्षेमा, लता, लक्ष्मना, मनोरमा, मारिची, मिश्रास्थला, मृगाक्षी, नाभिदर्शना, पूर्वचिट्टी, पुष्पदेहा, रक्षिता, ऋतुशला, साहजन्या, समीची, सौरभेदी, शारद्वती, शुचिका, सोमी, सुवाहु, सुगंधा, सुप्रिया, सुरजा, सुरसा, सुराता, उमलोचा आदि।

पांडवों के साथ कुंती ने पांचाल देश की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में गंगा नदी के किनारे सोमाश्रयायण नामक तीर्थ पड़ता था। रात्रि की बेला में वे वहाँ जा निकले। उस समय गंगा में गंधर्वराज अंगारपर्ण चित्ररथ अपनी पत्नी के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। उस एकांत में पांडवों की पदचाप सुनकर वह क्रुद्ध हो उठा। पांडवों में सबसे आगे हाथ में मशाल लिये अर्जुन थे।

चित्ररथ ने कहा कि रात्रि का समय गंधर्व, यक्ष तथा राक्षसों के विचरण के लिए निश्चित है, अत: उनका आगमन अनुचित था। उसने अर्जुन पर प्रहार किया।

अर्जुन ने उस पर आग्नेयास्त्र छोड़ दिया, जिससे वह मूर्च्छित हो गया। उसकी पत्नी कुंभीनसी ने युधिष्ठिर की शरण ग्रहण की।

पांडवों ने चित्ररथ को छोड़ दिया। चित्ररथ ने कृतज्ञता प्रदर्शन करते हुए उन्हें चाक्षुषी विद्या सिखायी। इस विद्या के प्रभाव से, जिसे जिस रूप में देखने की इच्छा हो, देखा जा सकता है।

चित्ररथ ने प्रत्येक पांडव को गंधर्वलोक के सौ-सौ घोड़े प्रदान किये, जो स्वेच्छा से आकार-प्रकार तथा रंग बदलने में समर्थ थे। वे घोड़े कभी भी स्मरण करने पर उपस्थित हो सकते थे।

अर्जुन ने चित्ररथ को दिव्यास्त्र (आग्नेयास्त्र) की विद्या प्रदान की। चित्ररथ का रथ उस युद्ध में खंडित हो गया था, अत: उसने अपना नाम चित्ररथ के स्थान पर दग्धरथ रख लिया।

भगवान श्री कृष्ण ने चित्ररथ को अपनी विभूति कहा है।

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता विशेष 3- 10.26 ।।

।। मुनि कपिल ।। विशेष 4 - 10.26 ।।

कपिल प्राचीन भारत के एक प्रभावशाली मुनि थे। कपिल ऋषि, देव और मुनि सभी हुए, इसलिए कपिल देव अर्थात अवतार से ले कर सांख्य योग का प्रतिपादन करने वाले सिद्ध पुरुष कहे जाते है। इस विषय कुछ शंका भी है कपिल ऋषि जिन के पास इंद्र ने सगर के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा बांध दिया था, या सांख्य योग के सिद्धांत बनाने वाले या अनेक सिद्धियों को धारण करने वाले ज्ञानी कपिल एक ही थे या अलग अलग।

इन्हें सांख्यशास्त्र (यानि तत्व पर आधारित ज्ञान) के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है जिस के मान्य अर्थों के अनुसार विश्व का उद्भव विकासवादी प्रक्रिया से हुआ है। कई लोग इन्हें अनीश्वरवादी मानते हैं लेकिन गीता में इन्हें श्रेष्ठ मुनि कहा गया है। कपिल ने सर्वप्रथम विकासवाद का प्रतिपादन किया और संसार को एक क्रम के रूप में देखा।

संसार को स्वाभाविक गति से उत्पन्न मानकर इन्होंने संसार के किसी अति प्राकृतिक कर्ता का निषेध किया। सुख दु:ख प्रकृति की देन है तथा पुरुष अज्ञान में बद्ध है। अज्ञान का नाश होने पर पुरुष और प्रकृति अपने-अपने स्थान पर स्थित हो जाते हैं। अज्ञानपाश के लिए ज्ञान की आवश्यकता है अत: कर्मकांड निरर्थक है। ज्ञानमार्ग का यह प्रवर्तन भारतीय संस्कृति को कपिल की देन है। यदि बुद्ध, महावीर जैसे नास्तिक दार्शनिक कपिल से प्रभावित हों तो आश्चर्य नहीं। आस्तिक दार्शनिकों में से वेदान्त, योग दर्शन और पौराणिक स्पष्ट रूप में सांख्य के त्रिगुणवाद और विकासवाद को अपनाते हैं। इस प्रकार कपिल प्रवर्तित सांख्य का प्रभाव प्राय: सभी दर्शनों पर पड़ा है।

कपिल ने क्या उपदेश दिया, इस पर विवाद और शोध होता रहा है। तत्वसमाससूत्र को उस के टीकाकार कपिल द्वारा रचित मानते हैं। सूत्र छोटे और सरल हैं।

इसीलिए मैक्समूलर ने उन्हें बहुत प्राचीन बतलाया। 8वीं शताब्दी के जैन ग्रंथ 'भगवदज्जुकीयम्' में सांख्य का उल्लेख करते हुए कहा गया है-

आठ प्रकृतियाँ, सोलह विकार, आत्मा, पाँच अवयव, तीन, गुण, मन, सृष्टि और प्रलय ये सांख्य शास्त्र के विषय हैं। 'तत्वसमाससूत्र' में भी ऐसा ही पाठ मिलता है। साथ ही तत्वसमाससूत्र के टीकाकार भावागणेश कहते हैं कि उन्होंने टीका लिखते समय पंचशिख लिखित टीका से सहायता ली है। रिचार्ड गार्वे के अनुसार पंचशिख का काल प्रथम शताब्दी का होना चाहिए। अत: भगवज्जुकीयम् तथा भावागणेश की टीका को यदि प्रमाण मानें तो 'तत्वसमाससूत्र' का काल ईसा की पहली शताब्दी तक ले जाया जा सकता है। इसके पूर्व इसकी स्थिति के लिए सबल प्रमाण का अभाव है।

सांख्य प्रवचन सूत्र को भी कुछ टीकाकार कपिल की कृति मानते हैं। कौमुदीप्रभा के कर्ता स्वप्नेश्वर 'सांख्यप्रवचनसूत्र' को पंचशिख की कृति मानते हैं और कहते हैं कि यह ग्रंथ कपिल द्वारा निर्मित इसलिए माना गया है कि कपिल सांख्य के प्रवर्तक हैं। यही बात 'तत्वसमास' के बारे में भी कही जा सकती है। परंतु सांख्य प्रवचन सूत्र का विवरण माधव के 'सर्वदर्शनसंग्रह' में नहीं है और न तो गुणरत्न में ही इसके आधार पर सांख्य का विवरण दिया है। अत: विद्वान् लोग इसे 14वीं शताब्दी का ग्रंथ मानते हैं। लेकिन गीता (१०.२६) में इनका ज़िक्र आने से ये और प्राचीन लगते हैं।

इन के समय और जन्मस्थान के बारे में निश्चय नहीं किया जा सकता। पुराणों तथा महाभारत में इन का उल्लेख हुआ है।कहा जाता है, प्रत्येक कल्प के आदि में कपिल जन्म लेते हैं। जन्म के साथ ही सारी सिद्धियाँ इनको प्राप्त होती हैं। इसीलिए इन को आदि सिद्ध और आदि विद्वान् कहा जाता है। इन का शिष्य कोई आसुरि नामक वंश में उत्पन्न वर्षसहस्रयाजी श्रोत्रिय ब्राह्मण बतलाया गया है। परम्परा के अनुसार उक्त आसुरि को निर्माणचित्त में अधिष्ठित होकर इन्होंने तत्वज्ञान का उपदेश दिया था। निर्माणचित्त का अर्थ होता है सिद्धि के द्वारा अपने चित्त को स्वेच्छा से निर्मित कर लेना। इससे मालूम होता है, कपिल ने आसुरि के सामने साक्षात् उपस्थित होकर उपदेश नहीं दिया अपितु आसुरि के ज्ञान में इनके प्रतिपादित सिद्धान्तों का स्फुरण हुआ, अत: ये 'आसुरि' के गुरु कहलाए। महाभारत में ये सांख्य के वक्ता कहे गए हैं। इनको अग्नि का अवतार और ब्रह्मा का मानसपुत्र भी पुराणों में कहा गया है। श्रीमद्भगवत के अनुसार कपिल विष्णु के पंचम अवतार माने गए हैं। कर्दम और देवहूति से इनकी उत्पत्ति मानी गई है। बाद में इन्होंने अपनी माता देवहूति को सांख्यज्ञान का उपदेश दिया जिसका विशद वर्णन श्रीमद्भगवत के तीसरे स्कन्ध में मिलता है।

कपिल प्राचीन भारत के एक प्रभावशाली मुनि थे। उन्हे प्राचीन ऋषि कहा गया है। इन्हें सांख्यशास्त्र (यानि तत्व पर आधारित ज्ञान) के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है जिस के मान्य अर्थों के अनुसार विश्व का उद्भव विकासवादी प्रक्रिया से हुआ है। कई लोग इन्हें अनीश्वरवादी मानते हैं लेकिन गीता में इन्हें श्रेष्ठ मुनि कहा गया है। कपिल ने सर्वप्रथम विकासवाद का प्रतिपादन किया और संसार को एक क्रम के रूप में देखा।"कपिलस्मृति" उन का धर्मशास्त्र है। ये भगवान विष्णु के अवतार हैं।

संसार में सिद्ध पुरुष और सिद्ध के साथ ज्ञानी पुरुष एवम सिर्फ ज्ञानी पुरुष - यह तीन वर्गीकरण किए गए है। इस के अतिरिक्त कुछ न ज्ञानी और न ही सिद्ध होते है किंतु उन्हे इस का भ्रम रहता है। सिद्धियों सिद्ध पुरुष की दासी हो कर कार्य करती है जब की कुछ तंत्र मंत्र से यदि कोई किसी सिद्धि को प्राप्त भी कर ले तो भी वह सिद्ध नही कहलाता क्योंकि उस की सिद्धि अस्थायी और उपयोग के बाद समाप्त होने वाली होती है। इसलिए कपिल मुनि जैसे सिद्ध और ज्ञानी दोनों कुछ ही विरले लोग होते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। गीता विशेष 4 - 10.26 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.27॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्धवम् ।
एरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्॥

"uccaiḥśravasam aśvānāṁ,
viddhi mām amṛtodbhavam..।
airāvataṁ gajendrāṇāṁ,
narāṇāṁ ca narādhipam"..।।

भावार्थ:

समस्त घोड़ों में समुद्र मंथन से अमृत के साथ उत्पन्न उच्चैःश्रवा घोड़ा मुझे ही समझ, मैं सभी हाथियों में ऐरावत हूँ, और मैं ही सभी मनुष्यों में राजा हूँ। (२७)

Meaning:

Among the horses, know me as Ucchaihshrava born of nectar. Among the elephants I am Airaavata, and among the humans I am the leader.

Explanation:

We continue to learn about Ishvara's expressions in this shloka. The Puranaas describe the story of deities and demons churning the ocean for gaining the nectar of immortality. Before the nectar came out, several other divine entities emerged and Ucchaihshrava, the divine horse, was one of

them. “Uchhai” means great and shravas means prosperity. Symbolically, Ucchaihshrava stands for the prosperity we attain when we put in focused effort and renounce our material desires. Shri Krishna says that among all the horses, the divine Ucchaihshrava is Ishvara’s expression.

Airaavata is a four- tusked white elephant who is the mount of Indra, king of the deities. He is credited with showering rain. His mother is Iravati, granddaughter of sage Kashyapa. Given his status, Shri Krishna says that among all the elephants, Airaavata is Ishvara’s expression.

Next, Shri Krishna turns to more familiar grounds by referencing humans. Among human beings, he says that Ishvara expresses in the leader. But this is not just any ordinary leader. Ishvara expresses himself in leaders whose accomplishments are a product of their hard work and effort, and whose leadership is in line with dharma or righteousness. It is easy to get name and fame by virtue of association or by performing unrighteous acts. This is not the leader that is referenced here.

And peculiarly enough, both these stories are teaching one fundamental lesson to us and that is, in life perseverance is the most important value; if you have to be successful in life, you should take everything as a challenge; failure should not deter you; failure should not make you fatalistic; failure should not make you pessimistic; failure should only trigger further energy; story No.1; Bhagīratha prayathana, story No.2; Dēva asura prayathnaḥ.

So, whenever we see the result of hard work, a humanitarian leader, or the cooling rain that parches a dry land, we should remember that all these are Ishvara’s expressions.

।। हिंदी समीक्षा ।।

मंगलाष्टक में कालिदास रचित यह श्लोक सभी ने सुना होगा।

लक्ष्मी: कौस्तुभ पारिजातक सुरा धन्वंतरिश्चंद्रमा: । गाव: कामदुधाः सुरेश्वर गजो, रंभादिदेवांगनाः ।। अश्वः सप्त मुखोविषम हरिधनुं, शंखोमृतम चांबुधे । रत्नानीह चतुर्दश प्रतिदीनम, कुर्वंतु वोमंगलम ।।

यह समुंद्र मंथन से निकले 14 रत्न है। गंगा अवतरण और समुद्र मंथन दो पुराणिक कथाएं हमे यह बताती है कि सहकार्य, अथक प्रयास और उच्च श्रेणी की मानसिकता से असंभव कार्य भी संभव हो जाता है।

उच्चै:श्रवा उस घोड़े का नाम है जो अमृत मंथन से प्राप्त चौदह रत्नों में से एक है। हिंदू धर्म में , उच्चैःश्रवस (संस्कृत : उच्चैःश्रवस , आईएएसटी : उच्चैःश्रवा) या (संस्कृत : उच्चैःश्रवा , आईएएसटी : उच्चैःश्रवा), (शाब्दिक रूप से 'लंबे कान' या 'जोर से हिनहिनाना") एक सात सिर वाला उड़ने वाला घोड़ा है, क्षीर सागर के मंथन के दौरान उत्पन्न हुआ । इसे घोड़ों में सर्वश्रेष्ठ, घोड़ों का प्रोटोटाइप और राजा माना जाता है। उच्चैःश्रवा को अक्सर इंद्र (देवताओं के राजा) के वाहन ("वाहन") के रूप में वर्णित किया जाता है, लेकिन इसे असुरों (राक्षसों) के राजा बाली का घोड़ा भी कहा जाता है । कहा जाता है कि उच्चैःश्रवा का रंग बर्फ जैसा सफेद होता है। यह घोड़ा सामान्य घोड़ो की तरह जन्म न लेकर अपने विशिष्ट गुणों के कारण अद्वितीय माना जाता है। इसलिये इस को अश्वो का राजा भी कहा गया है। यह कभी थकता नही है, इस को भोजन की भी आवश्यकता नही एवम यह किसी भी जगह चल सकता है। इस की गति नियमित है इसलिये सूर्य के रथ का संचालन करता है। अश्व अपनी गति, बल एवम न थकने के गुणों से श्रेष्ठ होता है, इसलिये भगवान ने अर्जुन के रथ से जुटे बेजोड़ घोड़ो से ज्यादा बेजोड़ इस घोड़े को अपना स्वरूप माना है। प्राचीन काल मे घोड़े वाहन, शक्ति एवम युद्ध मे अत्यधिक महत्व रखते थे इसलिये भी गति एवम बल के स्वरूप में उच्चै:श्रवा को परमात्मा ने अपनी विभूति कहते हुए कहा कि यह मैं हूँ।

ऐरावत इंद्र का हाथी, समुद्र मंथन से प्राप्त 14 रत्नों में ऐरावत भी था। इसे शुक्लवर्ण और चार दाँतोवाला बताया गया है। रत्नों के बँटवारे के समय इंद्र ने उक्त दिव्यगुणयुक्त हाथी को अपनी सवारी के लिए ले लिया था। इसलिए इस का इंद्रहस्ति अथवा इंद्रकुंजर नाम पड़ा। इस के अन्य नाम अभ्रमातंग, ऐरावण, अभ्रभूवल्लभ, श्वेतहस्ति, मल्लनाग, हस्तिमल्ल, सदादान, सुदामा, श्वेतकुंजर, गजाग्रणी तथा नागमल्ल हैं।

धृतराष्ट्र नामक नाग का पैतृक नाम भी ऐरावत था। कद्रुपुत्र नागों को भी ऐरावत नाम से पुकारा गया है। 'इरा' का अर्थ जल है, अत: इरावत (समुद्र) से उत्पन्न हाथी को ऐरावत नाम दिया गया है और परवर्ती भारतीय वाङ्मय में ऐरावत नाग (नाग के सर्प और हाथी दोनों अर्थ होते हैं) का संबंध इंद्र के हाथी ऐरावत से जोड़ लिया गया होगा। महाभारत, भीष्म पर्व के अष्ट्म अध्याय में भारत वर्ष से उत्तर के भू-भाग को उत्तर कुरु के बदले 'ऐरावत' कहा गया है। जैन साहित्य में भी यही नाम आया है।

यह भी अपने बल, बुद्धि एवम किसी भी स्थान में इच्छा के अनुसार चल सकने के गुण के कारण अद्वितीय है। इस को गजेंद्र भी कहा जाता है। कहते है इस कि चार सूँड है जिस से यह वर्षा कर सकता है। इसलिये परमात्मा ने इस को भी अपनी विभूति बताते हुए कहा कि यह ऐरावत मै ही हूँ।

राजा, मनु के राजनीतिक विचारों का केन्द्र-बिन्दु है। मनु ने अनेक देवताओं के सारभूत नित्य अंश को लेकर राजा की सृष्टि करने का जो उल्लेख किया है उस से राज की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त में विश्वास प्रकट होता है। चूंकि राजा में दैवी अंश व्याप्त है, अतः यह अपेक्षित है कि प्रजा उस का कभी अपमान न करें। राजा से द्वेष करने का अर्थ स्वयं का विनाश करना है। मनुस्मृति में यह भी लिखा गया है कि विभिन्न देवता राजा के शरीर में प्रविष्ट होते हैं। इस प्रकार राजा स्वयं महान् देवता बन जाता है।

मनुस्मृति" में राजा के गतिशील जीवन की चर्चा की गई है। इस में राजा को सदैव सजग और सावधान रहने की आशा की जाती है। मनुस्मृति में युद्ध के समय राजा के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है। इस में स्पष्ट किया गया है कि युद्ध के समय राजा को भयभीत नहीं होना चाहिए और पूरी तैयारी और मनोबल के साथ शत्रु का संहार करना चाहिए।

मनुस्मृति वैसे तो कई गुणों के बारे में बताया गया है पर उनमें से मुख्य गुण... कोई भी व्यक्ति राजा या राजसभा का सभासद तब ही बन सकता है जब वह तीनों विद्याओं का ज्ञाता हो, यानी चारों वेद, कर्म, उपासना और ज्ञान का पंडित हो। तीनों विद्या, सनातन, दंडनीति, न्यायप्रिय और प्रजा से बात करने की कला आदि गुणों में पारंगत होना चाहिए।

इंद्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चंद्रमा और कुबेर के सभी सारभूत गुणों को निकाल कर इन की स्वाभाविक मात्राओं यानी अंशों का सार लेकर इन दिव्य गुणों से राजा का निर्माण किया।

राजा के लिए सृष्टि के आरंभ में ही ईश्वर ने सभी प्राणियों की रक्षा करने वाले ब्रह्मतेजोमय, शिक्षाप्रद और अपराधनाशक गुण वाला होना चाहिए।

मनुस्मृति के सातवें अध्याय में राजधर्म का प्रतिपादन करते हुए राज्य की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था बड़ी भयंकर थी, उस समय न राज्य था और न ही राजा था और इनके अभाव में दण्ड- व्यवस्था का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। राज्य के अभाव में सर्वत्र अन्याय, अराजकता, असंतोष, अव्यवस्था का वातावरण बना हुआ था। अर्थात् मत्स्य न्याय की स्थिति व्याप्त थी।

राजा की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त को प्रामाणिक रूप देने के लिए मनु ने यहां तक कहा है कि राजा आठ लोकपालों के अन्न तत्त्वों से निर्मित हुआ है। जिसके फलस्वरूप उस में देवीय गुण एवं शक्ति का समावेश हुआ है। ईश्वर ने समस्त संसार की रक्षा के लिए निर्मित वायु, यम, वरुण, सूर्य, अग्नि, इन्द्र तथा कुबेर के सर्वोत्तम अंशों के संयोग से राजा का निर्माण किया है अर्थात् इन्द्र से प्रभुत्व, सूर्य से प्रताप, यम से क्रोध, कुबेर से धन और चन्द्रमा से आनन्द प्रदान करने का गुण लेकर राजा के शरीर का निर्माण हुआ है।

वेदों के अनुसार भी राजा को स्वयं इन्द्र समझना चाहिए और उसका इन्द्र के ही समान आदर करना चाहिए।

प्राचीन भारत में राजा को देवांश माना जाता था, अर्थात् राजा की उत्पत्ति विभिन्न देवों के अंश से हुई है। इस सिद्धान्त का उल्लेख ऋग्वेद और यजुर्वेद आदि वैदिक साहित्य, ब्राह्मण ग्रन्थों, स्मृति साहित्य, महाभारत और प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है।

मत्स्य पुराण में उल्लेख है कि ब्रह्मा ने राजा की सृष्टि की जिससे कि वह सभी प्राणियों की रक्षा कर सके।

इसी प्रकार प्रजा की रक्षा करने वाला शासक राजा होता है, वो प्रजा की खुशहाली के लिये नियम बनाता है एवम प्रजा में धर्म के अनुसार कार्य हो, इस का नियमन करता है। इसलिये प्रजा के प्रति प्रतिबद्ध होता है। कहते है राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा के बाद जब उन्हें स्वर्ग चलने को कहा तो उन्होंने कहा जब तक मेरी पूरी प्रजा नहीं जाती, मै नही जा सकता। इस प्रकार वो प्रजा सहित ही स्वर्ग गए। इसलिये अपनी प्रजा के कल्याण को समर्पित राजा को परमात्मा ने कहा कि वो मैं ही हूँ।

क्योंकि राजा में देव का अंश माना जाता है। इसलिये प्रजा का शोषण करने वाले अधिपति आज के युग मे नेता कभी राजा नहीं कहे जा सकते, यह लोग स्वार्थी, व्यभिचारी ही है क्योंकि परमात्मा ने दमन या अत्याचार के बल पर राजा बने रावण या कंस को अपना स्वरूप नही कहा। राजा कर्तव्यनिष्ठ दैवीय गुण का प्रतीक है, किसी आसुरी वृति के षटयन्त्र का नही।

परमात्मा ने श्रेष्ठ तीन उदाहरण अद्‌वितीय, बल, गति, नियमित, दैवीय गुण एवम प्रतिबद्‌धता तो सामने रख कर उस के स्वरूप को अपना बताया। अश्व एवम हाथी दोनों में स्वामी के प्रति निष्ठा रहती है एवम राजा की अपनी प्रजा के प्रति। यह दृढ़ निष्ठा जो प्राणों से अधिक प्रिय हो परमात्मा ही है।

विभूति जीव के आकार या योनि पर निर्धारित न करते हुए परमात्मा उस के उच्चतम गुणों को अपना स्वरूप बता रहे है। किसी भी विषय मे श्रेष्ठता को प्राप्त करना ही परमात्मा है। निर्गुणकार को सगुणाकार हम उस के श्रेष्ठ स्वरूप में ही देख सकते है।

विभिन्न विभूतियों माध्यम से भगवान श्री कृष्ण अपने निर्गुणाकार स्वरूप को अर्जुन के समक्ष सगुणाकार स्वरूप में प्रकट कर रहे है, यह आनंद एवम ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है, जब इसे अत्यंत श्रद्‌धा, विश्वास, प्रेम के साथ समर्पित भाव से पढ़ा जाए। जब शंका और अहम हो तो प्रेम नही हो सकता। जब तक प्रेम नही हो, हृदय में परमात्मा का स्वरूप समझ मे ही आ सकता, क्योंकि प्रेम से भरे हृदय में ही परमात्मा बसता है।

धर्म, लक्षण और अवस्था यह तीन परिणाम समझ मे आने के लिये धारणा, ध्यान और समाधि द्‌वारा मन के विकारों को हटा के, एकत्व को प्राप्त किया जाता है, जिस से मनुष्य कालातीत हो कर भूत, भविष्य एवम वर्तमान को देखने लायक हो जाता है। यही वह संयम की अवस्था है जहां शब्द, अर्थ और ज्ञान का अभ्यास होता है। शब्द -अर्थ और ज्ञान का अर्थ यही है कि यदि गौ शब्द कहा जाए तो उस का अर्थ दूध के प्राप्य गौ होना है और ज्ञान यही है कि दूध की आवश्यकता शरीर के लिये आवश्यक है। इसी प्रकार विभूतियों के शब्दों से उस का अर्थ और परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान तभी होगा, जब श्रद्‌धा, प्रेम और विश्वास से विभूतियों के अर्थ , शब्द और ज्ञान को समझा जाये अन्यथा शब्द, अर्थ और ज्ञान तीनो पृथक पृथक हो कर रह जाते है, हम बस बार बार गीता पढ़ते रहते है।

व्यवहार में आधुनिक युग के राजाओं अर्थात उन श्रेष्ठ लोग उच्च उद्‌योगपति, नेता और उच्चतम पद पर बैठे अधिकारी को यदि हम देखे तो उन की तुलना हमे उन के लोक

कल्याण के लिए किए कार्य से करनी चाहिए। वंश से राजा की पद्धति कभी भी सनातन संस्कृति का हिस्सा नहीं रही। अतः जाति, धर्म और लोभ स्वार्थ पर आधारित जो लोग नेता गिरी कर रहे है वे राज करने योग्य लोग या व्यक्ति नही है। लोकतंत्र में अपने राजा का चयन यदि प्रजा को है तो प्रजा में चयन की क्षमता होना आवश्यक है। अन्यथा सांसारिक मोह, लोभ और स्वार्थ में हम लोग उन्हे राजा चुन लेते है जो सर्वथा अयोग्य होते है।

आगे और विभूतियों में परमात्मा के स्वरूप को पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.27।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.28॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः॥

"āyudhānām ahaṁ vajraṁ,
dhenūnām asmi kāmadhuk..।
prajanaś cāsmi kandarpaḥ,
sarpāṇām asmi vāsukiḥ"..।।

भावार्थ:

मैं सभी हथियारों में वज्र हूँ, मैं सभी गायों में सुरभि हूँ, मैं धर्मनुसार सन्तान उत्पत्ति का कारण रूप प्रेम का देवता कामदेव हूँ, और मै ही सभी सर्पों में वासुकि हूँ। (२८)

Meaning:

Among the weapons, I am Vajra and among cows I am Kaamadhenu. Among the creative powers I am Kandarpa and among the snakes I am Vaasuki.

Explanation:

The Shrimad Bhagavatam Puranas relate the story of the sacrifice offered by the great sage Dadhichi, which was unparalleled in history. Indra, the king of heaven was once driven out of his celestial kingdom by a demon named

Vritrasura. The demon had a boon whereby he could not be killed by any weapon known till then. In desperation, Indra approached Lord Shiv for help, who took him to Lord Vishnu. Vishnu revealed to Indra that the only weapon that could kill Vritrasura was a thunderbolt made from the bones of the sage Dadhichi. Indra then beseeched Dadhichi to make the ultimate sacrifice of laying down his life so that his bones could be used for making the thunderbolt. Dadhichi accepted the request, but desired to first go on a pilgrimage to all the holy rivers. Indra then brought together all the waters of the holy rivers to Naimisharanya, thereby allowing the sage to have his wish fulfilled without further loss of time. Dadhichi then gave up his body by the practice of yogic techniques. The thunderbolt made from his bones was then used to defeat the demon Vritrasura, allowing Indra to regain his place as the king of the celestial abodes. Shree Krishna deliberately refers to this thunderbolt here as the representation of the glory of God, preferring it above the mace and disc that are always held in the hands of Lord Vishnu. Shri Krishna says that Ishvara is Vajra among the weapons because it is powered by austerity and penance. Therefore, it has got the strength born out of tapas shakthi; because we consider spiritual power or meditative power is much stronger than the material power.

In the Puraanas, Kaamadhenu is a cow that has the ability to fulfil any desire that she is approached with. kāmadhēnūḥ is a unique cow which can yield anything you want; kāmaṁ kāmaṁ dogdhi iti kāmadhuk. Even a normal cow has the ability to provide milk to a fanily in need, Symbolically, Kaamadhenu represents our mind because it can generate all kinds of thoughts, good or bad, out of thin air. Shri Krishna says that Ishvara expresses himself as Kaamadhenu. And this also indicates what; beautiful symbolic presentation; the mind is kāmadhēnūḥ. The human mind and intellect are so powerful that if you fully tap you can create anything; all the scientific advancements and gadgets; they are all born out of what? human

intellect; internet is born out of what? human intellect; kaamadenuhu. So therefore, if a human being decides to tap his own mind intellect complex, he can achieve anything in life. All the fourteen lokas he can accomplish, why he can attain mōkṣa also; mōkṣam api dogdi; The mind- kāmadhēnūḥ mōkṣam also it will milk and give you; therefore, it is called kāmadhuk.

In this verse, Shree Krishna also reveals that the act of sexual intercourse is not unholy when it is performed for the sole purpose of begetting good children. Our mind has the ability to generate desires that prompt us to act. Kandarpa referes to Kaama deva, the lord of desire. Desires are the seed of creativity because without desire, there will be no creation. Kaamdev, the god of love (cupid), is responsible for the force of attraction between the opposite sexes that facilitates the continuance of humankind through procreation. This sexual urge has its origin in God and should not be mis-utilized for sensual enjoyment, but rather be used solely for the purpose of begetting worthy progeny. In verse 7.11 as well, Shree Krishna had declared that he is the sexual desire that is not in conflict with virtue and scriptural injunctions.

Vaasuki is the king of snakes and is seen coiled around the neck of Lord Shiva. He symbolizes our ego or ahankaara, our sense of “I”. If we are able to tame our ego, then it becomes an ornament, as in the case of Lord Shiva. If we cannot tame it, it becomes dangerous and can strike us when we least expect it, by causing strong feeling of superiority or inferiority as an example. So, Shri Krishna says that Vaasuki is Ishvara’s expression among all the snakes.

So, whenever we see someone devote their life towards a selfless cause, when our mind generates positive thoughts, when our desires are righteous and our ego is in check, we should realize that all this is Ishvara’s expression.

।। हिंन्दी समीक्षा।।

कहा जाता है कि एक बार इन्द्रलोक पर 'वृत्रासुर' नामक राक्षस ने अधिकार कर लिया तथा इन्द्र सहित देवताओं को देवलोक से निकाल दिया। ब्रह्मा जी ने देवताओं को एक उपाय बताया कि पृथ्वी लोक में 'दधीचि' नाम के एक महर्षि रहते हैं। यदि वे अपनी अस्थियों का दान कर दें तो उन अस्थियों से एक वज्र बनाया जाये। उस वज्र से वृत्रासुर मारा जा सकता है, क्योंकि वृत्रासुर को किसी भी अस्त्र- शस्त्र से नहीं मारा जा सकता। महर्षि दधीचि की अस्थियों में ही वह ब्रह्म तेज़ है, जिससे वृत्रासुर राक्षस मारा जा सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं है। **इसलिये जो शस्त्र जन हित के लिये त्याग से बना हो जिस में तप का ब्रह्मतेज हो वो वज्र मै ही हूँ।**

पौराणिक कथाओं के अनुसार देवताओं और असुरों के बीच हुए समुद्र मंथन से निकले 14 रत्नों में से एक कामधेनु गाय थीं, जिसे ब्रह्मवादी ऋषियों ने उसे ग्रहण कर लिया था. कामधेनु प्रतीक है मन की निर्मलता की. क्योंकि विष निकल जाने के बाद मन निर्मल हो जाता है. ऐसी स्थिति में ईश्वर तक पहुंचना और भी आसान हो जाता है.

कामधेनु गाय देखने में एक सफेद गाय की तरह है जिनका सिर एक महिला के जैसी है. इनके पूरे शरीर में अलग- अलग देवी देवता निवास करते हैं. इसलिए हिंदू धर्म में सभी गायों को कामधेनु की सांसारिक अवतार के रूप में पूजा जाता है. इनकी रोज पूजा करने से धन, वाहन, मकान जैसी जीवन से जुड़ी हर इच्छा पूरी हो सकती है.

इनके चारों पैरों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का प्रतिक है. इनका सींग ब्रह्मा का रूप है तो सिर का मध्य हिस्सा विष्णु और नीचे का हिस्सा भगवान शिव का रूप है. उनकी आंखें चंद्रमा और सूरज का प्रतीक है। यह मनोकामना पूर्ण करने वाली गाय मानी जाती है। गो इंद्रियाओ को भी कहते है, जिस की इंद्रियाओ उस के अनुसार काम करे उसे की भी कामनाएं पूर्ण हो जाती है। **परमात्मा कहते है वह कामधेनु गौ मै ही हूँ।**

ब्रह्मा जी को जब सृष्टि रचना का कार्य सौंपा गया तो उन्होंने मानस पुत्रो की रचना की। किन्तु इन से सृष्टि नहीं चल सकती थी। इसलिये नर नारी की रचना हुई। प्रजोत्पत्ति के कारणों में मैं कामदेव हूँ भारतीय धारणा के अनुसार काम का देवता कन्दर्प (कामदेव या मदन) है, जो एक कुटिल हृष्टपुष्ट युवक के रूप में चित्रित किया गया है। यह कामदेव अपनी मन्दस्मिति के धनुष के द्वारा पाँच सुपुष्पित बाणों से मनुष्य की एक एक इन्द्रिय को आहत करता है यह जीव विज्ञान से सम्बन्धित एक सत्य है। प्रजोत्पत्ति माने केवल गर्भाधान

की क्रिया या वनस्पति जगत् में होने वाली सेचन क्रिया ही नहीं समझी जानी चाहिए। भारतीय कामशास्त्र के अनुसार इसका अर्थ उन समस्त कामुक प्रवृत्तियों की शान्ति से है, जो सभी इन्द्रियों के माध्यम से व्यक्त होती हैं। एक दार्शनिक सच्चा वैज्ञानिक होता है और इस कारण उसमें वह मिथ्या लज्जा या संकोच नहीं होता, जो प्राय स्वभाव से अनैतिक किन्तु दिखावे के लिए कट्टर नैतिकतावादी व तिलकधारी पाखण्डी लोगों का होता है। वेदान्त के आचार्य कामवासना के संबंध में विश्लेषण करते समय इस प्रकार निर्मम होते हैं, जैसे चिकित्साशास्त्र के महाविद्यालय में कोई प्राध्यापक। **भगवान् घोषणा करते हैं कि प्रजोत्पत्ति के सब कारणों में कन्दर्प मैं हूँ।** वैषयिक भोग के क्षेत्र में कामदेव मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक व्यक्तित्व के पूर्ण सन्तोष का प्रतीक है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जीव के कर्म के चार आधार स्तंभ है। काम का अर्थ इच्छा, और इच्छा ही प्रेरणा और कर्म के आवश्यक है। ऐसे ही सन्तानोत्पति सृष्टि यज्ञ चक्र का एक भाग है, काम इस को पूर्ण करता है, किन्तु जब काम से वशीभूत हो कर इस यज्ञ चक्र के कर्तव्य को त्याग कर सिर्फ काम ही का कार्य किया जाता है तो संतान भी अपने को दुर्घटना से उत्पन्न समझती है एवम संस्कार रहित होती है।

कामदेव, जो काम, वासना और रूप के देव माने जाते हैं, के बारे में लोगों ने सुन बहुत रखा है लेकिन जानते कम ही हैं। कामदेव का हिंदू संस्कृति और आध्यात्म में एक बड़ा स्थान है और उन्हें' हिंदू धर्मग्रंथों में प्रेम का देवता माना गया है।

कामदेव ने ही शिव द्वारा भस्म लिए जाने के बाद, हिंदू देवी श्री के पुत्र और कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में अवतार लिया है, यह माना जाता है। उन का हथियार धनुष है क्योंकि धनुष ही एक ऐसा अस्त्र है जिस में स्थिरता और चंचलता दोनों ही होती है और रूप में भी यही गुण होता है। बसंत को कामदेव का मित्र कहते हैं इसलिए उन का धनुष भी हमेशा पीला रहता गया है।

धनुष के अलावा तीर कामदेव का सबसे महत्वपूर्ण शस्त्र है। इस तीर के तीन दिशाओं में तीन कोने होते हैं, जो क्रमश: तीन लोकों के प्रतीक माने जाते हैं। पहला कोना ब्रह्म के आधीन है जो निर्माण का प्रतीक है। यह सृष्टि के निर्माण में सहायक होता है। दूसरा कोना कर्म का प्रतीक है जो मनुष्य को कर्म करने की प्रेरणा देता है। कामदेव के तीर का तीसरा कोना महेश (शिव) के आधीन होता है जो मोक्ष का प्रतीक है।

'कामदेव' के धनुष का लक्ष्य विपरीत लिंगी होता है। इसी विपरीत लिंगी आकर्षण से बंधकर पूरी सृष्टि संचालित होती है। कामदेव का एक लक्ष्य खुद काम हैं, जिन्हें पुरुष माना गया है, जबकि दूसरा रति हैं, जो स्त्री रूप में जानी जाती हैं।

महाभारत में कौरव वंश के पतन की नींव महाराजा शांतनु के मत्स्यगंधा सत्यवती के प्रति काम से वशीभूत होने पर लिखी गई थी और रामायण में रावण के पतन की नींव उस के द्वारा काम के वशीभूत हो कर सीता के अपहरण पर लिखी गई। अतः काम सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ सृजक होने के बावजूद, यदि नियंत्रित नही है, तो व्यक्ति विशेष का पतन का कारण भी है।

इसी प्रकार बाल विवाह के पीछे तर्क था कि चरित्र संयम एवम धर्मोचित मार्ग के बाल विवाह किया जाता था, जब कि कमाने लगेगा तब विवाह करना अर्थोचित निर्णय है और बड़ी उम्र का विवाह कामोचित निर्णय है। यहां कामदेव को भगवान ने अपना स्वरूप कहा है।

इस श्लोक में श्रीकृष्ण ने स्पष्ट किया है कि जब मैथुन क्रिया सन्तान की उत्पत्ति के उद्धेश्य से की जाती है तब उसे अपवित्र नहीं कहा जा सकता। कामदेव विपरीत लिंगों में आकर्षण उत्पन्न करने का दायित्व निवर्हन करता है ताकि प्रजनन प्रक्रिया द्वारा सहज रूप से मानव जाति का निरन्तर अस्तित्व बना रहे। इस यौन आकर्षण का मूल भगवान हैं और इसका प्रयोग कामुक आनन्द के लिए न करके केवल योग्य संतान की उत्पत्ति के लिए करना चाहिए। सातवें अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में श्रीकृष्ण ने इसी प्रकार की घोषणा की थी कि वे ऐसे यौन आकर्षण हैं जो सदाचरण और शास्त्रीय आज्ञाओं के विरुद्ध नहीं हैं।

वासुकी प्रसिद्ध नागराज जिसकी उत्पत्ति प्रजापति कश्यप के औरस और रुद्रु के गर्भ से हुई थी। इस की पत्नी शतशीर्षा थी। नागधन्वातीर्थ में देवताओं ने इसे नागराज के पद पर अभिषिक्त किया था।शिव का परम भक्त होने के कारण यह उन के शरीर पर निवास था। जब उसे ज्ञात हुआ कि नागकुल का नाश होने वाला है और उस की रक्षा इस के भगिनी पुत्र द्वारा ही होगी तब इस ने अपनी बहन जरत्कारु को ब्याह दी। जरत्कारु के पुत्र आस्तीक ने जनमेजय के नागयज्ञ के समय सर्पों की रक्षा की, नहीं तो सर्पवंश उसी समय नष्ट हो गया होता। समुद्रमंथन के समय वासुकी ने पर्वत का बाँधने के लिए रस्सी का काम किया था। त्रिपुरदाह के समय वह शिव के धनुष की डोर बना था। **वासुकी सभी सर्पो का राजा कहा जाता है, परमात्मा ने इस वासुकी को भी अपना रूप कहा है।**

वासुकी को अहंकार का प्रतीक भी माना जाता है। जब सक्षम व्यक्ति द्वारा अहंकार शांत और विन्रम भाव से धारण किया जाए तो अहंकार उस के एक गहना होता है, इसे हम शिव के द्वारा गले में धारण वासुकी के रूप में पहचानते है। अहंकार आप के व्यक्तित्व की पहचान भी है जो गलत और तामसी गुणों को आप के पास आने से रोक देता है। किंतु यही अहंकार मन और बुद्धि में आ जाए तो पतन का कारण बन जाता है।

व्यवहार में आप यदि अपने कार्य में व्यस्त रहते हुए किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिलना पसंद करते है जो अपने निजी स्वार्थ या व्यापार या किसी कार्य से आप का समय खराब करता हो या फिर देश का नेता जन हित के कारण पत्रकार, चाटुकारों से दूर रहता हो तो उस का यह अहंकार उस के लक्ष्य के लिए सहायक होगा। बड़े संत जमीन से जुड़े और विन्रम होते है किंतु अपने नियमो के चलते, वे किसी बाद का परहेज रखते हो तो हम उस को अहंकार मानते है किंतु यह अहंकार उन का आभूषण ही है।

ब्रह्म तेज, आस्था और विश्वास से जन हित के लिये बना शस्त्र वज्र, इंद्रियाओ का नियमन स्वरूप कामनाओं की पूर्ति हेतु कामधेनु, सृष्टि यज्ञ चक्र के कामदेव एवम सर्पो के राजा के राजा के रूप में वासुकी जो जन कल्याणकारी शिव को लपेटे हुए भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करते है, सभी परमात्मा के ही स्वरूप है। परमात्मा की विभूतियों को समझने के सात्विक एवम अनुसुवये होना पड़ता है, किसी भी शक्ति या तेज के दैवीय एवम आसुरी गुण होते है। यदि उसे दैवीय गुण से धारण करे तो वह परमात्मा की विभूति है किंतु आसुरी गुण से देखे तो वह अहम एवम भोक्तत्व का कारक है। अतः गुण में अवगुण या सतगुण उस व्यक्ति के विवेक और क्षमता पर निर्भर है। स्वयं में कोई भी गुण या अवगुण नहीं होता।

।।हरि ॐ तत सत।। 10.28।।

।। वज्र - पुराणिक कथा ।। विशेष 1- 10.28 ।।

वज्र का सबसे पहला उल्लेख चार वेदों के भाग ऋग्वेद में मिलता है । इसे देवताओं में प्रमुख इंद्र के हथियार के रूप में वर्णित किया गया है । इंद्र को पापियों और अज्ञानी व्यक्तियों को मारने के लिए वज्र का उपयोग करने के रूप में वर्णित किया गया है। ऋग्वेद

में कहा गया है कि दैवीय यंत्रों के निर्माता, तवस्तार द्वारा इंद्र के लिए हथियार बनाया गया था ।

कई बाद के पुराणों में वज्र का वर्णन किया गया है, जिसमें कहानी ऋग्वैदिक मूल से संशोधित है। एक प्रमुख जोड़ में ऋषि दधीचि की भूमिका शामिल है । एक कथा के अनुसार असुर नामित वृत्र को एक वरदान प्राप्त था जिसके तहत उसे किसी भी ऐसे हथियार से नहीं मारा जा सकता था, जो उसके वरदान प्राप्त करने की तारीख तक जाना जाता था और इसके अतिरिक्त लकड़ी या धातु से बना कोई भी हथियार उसे नुकसान नहीं पहुंचा सकता था। इंद्र, जिस ने उसके राज्य उबरने के सभी आशा खो दिया था, वह, शिव और ब्रह्मा के साथ विष्णु की सहायता के लिए गए । विष्णु ने इंद्र को बताया कि दधीचि की हड्डियों से बना हथियार ही वृत्रा को हराएगा। इसलिए इंद्र और अन्य देव ऋषि के पास गए, जिसका पूर्व में इंद्र ने एक बार सिर भी काट दिया था और उनसे वृत्र को हराने में उनकी सहायता मांगी। दधीचि ने देव के अनुरोध को स्वीकार कर लिया, लेकिन कहा कि वह चाहते हैं कि उनके पास अपने जीवन को त्यागने से पहले सभी पवित्र नदियों की तीर्थ यात्रा पर जाने का समय हो। इंद्र ने पवित्र नदियों के सभी जल को नैमिशा वन में एक साथ लाया , जिससे ऋषि को बिना समय गंवाए अपनी इच्छा पूरी करने की अनुमति मिली। कहा जाता है कि दधीचि ने योग की कला से अपना जीवन त्याग दिया था जिसके बाद देवताओं ने उनकी रीढ़ से वज्रयुध का निर्माण किया। इस हथियार का इस्तेमाल तब असुर को हराने के लिए किया गया था, जिससे इंद्र देवलोक के राजा के रूप में अपना स्थान पुनः प्राप्त कर सके।

कहानी का एक और संस्करण मौजूद है जहां दधीचि को देवताओं के हथियारों की रक्षा करने के लिए कहा गया था क्योंकि वे उन्हें प्राप्त करने के लिए असुर द्वारा नियोजित रहस्यमय कलाओं से मेल नहीं खा सकते थे। कहा जाता है कि दधीचि ने इस कार्य को बहुत लंबे समय तक रखा और अंत में नौकरी से थककर, कहा जाता है कि उसने पवित्र जल में हथियारों को भंग कर दिया था जिसे उसने पी लिया था। देव बहुत समय बाद लौटे और उनसे अपने हथियार वापस करने को कहा ताकि वे हमेशा के लिए वृत्रा के नेतृत्व वाले असुर को हरा सकें। हालाँकि दधीचि ने उन्हें बताया कि उसने क्या किया है और उन्हें बताया कि उनके हथियार अब उसकी हड्डियों का हिस्सा हैं। हालाँकि, दधीचि ने यह महसूस करते हुए कि उनकी हड्डियाँ ही एकमात्र तरीका है जिसके द्वारा देव असुर को हरा सकते हैं, स्वेच्छा से अपनी तपस्या की शक्ति से बुलाए गए रहस्यमय लपटों के एक गड्ढे में अपना जीवन दे दिया। कहा जाता है कि ब्रह्मा ने दधीचि की हड्डियों से बड़ी संख्या में हथियारों का निर्माण

किया था, जिसमें वज्रयुध भी शामिल था, जिसे उनकी रीढ़ से बनाया गया था। तब कहा जाता है कि देव ने इस प्रकार बनाए गए हथियारों का उपयोग करके असुर को हराया था।

ऐसे भी उदाहरण हैं जहां युद्ध देवता स्कंद (कार्तिकेय) को वज्र धारण करने के रूप में वर्णित किया गया है।

स्कंद महायान बौद्ध धर्म में एक बोधिसत्व का भी नाम है जो वज्र धारण करता है।

थाईलैंड के राजा वजीरावुध की गुप्त मुहर के रूप में इंद्र का वज्र है।

महाभारत में कर्ण को कवच -कुंडल के दान के प्रतिफल में जो अमोघ शक्ति एक बार प्रयोग करने को दी थी, वह वज्र ही था।

परमवीर चक्र , भारत के सर्वोच्च युद्ध समय सैन्य अलंकरण में वज्र का एक रूप है, जो ऋषि दधीचि द्वारा उनके बलिदान को श्रद्धांजलि के रूप में दान की गई हड्डियों द्वारा बनाया गया इंद्र का हथियार है ।

पांच आयामी वज्र (चार मकर और एक केंद्रीय शूल के साथ) सबसे अधिक देखा जाने वाला वज्र है। वज्र के संज्ञा पक्ष के पांच तत्वों और अभूतपूर्व पक्ष के बीच पत्राचार की एक विस्तृत प्रणाली है। पांच ज्ञान के साथ पांच "जहरों" के बीच एक महत्वपूर्ण पत्राचार है। पांच विष मानसिक अवस्थाएं हैं जो किसी व्यक्ति के मन की मूल शुद्धता को अस्पष्ट करती हैं, जबकि पांच ज्ञान प्रबुद्ध मन के पांच सबसे महत्वपूर्ण पहलू हैं। पाँच ज्ञानों में से प्रत्येक एक बुद्ध आकृति से भी जुड़ा है। (पांच बुद्धि बुद्ध व्यक्तित्व के विकास के पांच आयाम भी पढ़ना चाहिए।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 1 - 10.28 ।।

।। व्यक्तित्व के विकास के पांच बुद्धि वज्र ।। विशेष 2- गीता 10.28 ।।

आप को यह जरुर समझना चाहिए कि आप की बुद्धि आप की पांचों इंद्रियों के जरिए ही काम करती है। अगर इंद्रियों के जरिये सूचना नहीं मिल रही है, तो आप की बुद्धि काम नहीं करेगी। **बुद्धि के पांच बुनियादी रूप होते हैं। आकार, ध्वनि, सुगंध, स्वाद और स्पर्श को समझने के लिए बुद्धि के ये पांच अलग-अलग रूप होते हैं। इन में से आकार को समझने**

वाली बुद्धि को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसी से सृष्टि की ज्यामिति समझ में आती है। अतः बुद्धि के उन गुणों के समझिए, जिस से बुद्धि कुशाग्र, पैनी, बज्र के समान मजबूत हो।

हमारे जीवन की सबसे बुनियादी क्षमता विचार, भाव और संवेदनाएं हैं और इन्हें ही संभालने का तरीका लोग जीवन भर नहीं सीख पाते। कुत्ते, बिल्ली जैसे सारे जानवर अपनी सभी क्षमताओं को अपनी खुशहाली के लिए इस्तेमाल करने का तरीका अच्छी तरह जानते हैं, लेकिन इंसान यह सब नहीं सीख पाता। किसी भी दूसरे प्राणी की तुलना में इंसान के पास कहीं ज्यादा उच्च स्तरीय क्षमताएं और योग्यताएं हैं। चूंकि वह इन्हें अपनी खुशहाली के लिए इस्तेमाल करने का तरीका नहीं सीखता, इसलिए उसकी ये क्षमताएं एक बड़ा झमेला बन जाती हैं।

इन्हें बोध धर्म मे पांच बुद्धि बुद्ध भी कहते है।

1. **बुद्ध- वैरोकाना** - अनुकूलता, अनुभव के लिए खुलापन - अज्ञान, भ्रम

2. **कर्म - अमोघसिद्धि** - मानसिक गठन, रक्षा करना, कर्त्तव्य निष्ठां - ईर्ष्या

3. **पद्या - अमिताभः** - जिज्ञासा, धारणा, बहिर्मुखता, ध्यान, वश में करना - स्वार्थ, लगाव

4**. रत्न- रत्नसंभव** - समभाव, समृद्धि, सहमतता- अभिमान, लालच

5. **वज्र - अकोभ्य** - अद्वैतवादी, विज्ञान, मनोविक्षुब्धता, नम्रता - आक्रमण, घृणा

उच्च स्तर यदि मानसिकता उच्च स्तर की हो तो निम्न गुण होंगे।

आविष्कारशील, जिज्ञासु

कुशल, संगठित

आउटगोइंग, ऊर्जावान

मिलनसार, दयालु

संवेदनशील, नर्वस

निम्न स्तर यदि मानसिकता निम्न स्तर की हो तो निम्न गुण होंगे।

सतर्क, रूढ़िवादी

आराम से, लापरवाह

एकान्त आरक्षित

प्रतिस्पर्धी, मुखर

सुरक्षित, आत्मविश्वासी

व्यक्तित्व के आयाम:

1. अनुभव के लिए खुलापन: (आविष्कारशील/जिज्ञासु बनाम सुसंगत/सतर्क):

अनुभव के लिए खुलापन एक व्यक्ति की बौद्धिक जिज्ञासा, रचनात्मकता, कला के लिए प्रशंसा, भावना, रोमांच, असामान्य विचार, जिज्ञासा और अनुभव की विविधता का वर्णन करता है।

इसे उस सीमा के रूप में भी वर्णित किया जाता है जिस हद तक कोई व्यक्ति कल्पनाशील या स्वतंत्र होता है, और एक सख्त दिनचर्या पर विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के लिए व्यक्तिगत वरीयता को दर्शाता है ।

उच्च खुलेपन को अप्रत्याशितता या फोकस की कमी के रूप में माना जा सकता है।

इसके अलावा, उच्च खुलेपन वाले व्यक्तियों के बारे में कहा जाता है, कि वे विशेष रूप से स्काइडाइविंग, विदेश में रहने, जुआ, आदि जैसे गहन, उत्साहपूर्ण अनुभवों की तलाश में आत्म-साक्षात्कार का पीछा करते हैं।

इसके विपरीत, कम खुलेपन वाले लोग दृढ़ता के माध्यम से पूर्णता प्राप्त करना चाहते हैं और उन्हें व्यावहारिक और डेटा-चालित के रूप में चित्रित किया जाता है - कभी-कभी उन्हें हठधर्मी और बंद दिमाग वाला भी माना जाता है।

खुलेपन कारक की व्याख्या और संदर्भ के बारे में कुछ असहमति बनी हुई है।

2. कर्तव्यनिष्ठा (कुशल/संगठित बनाम आसान/लापरवाह):

कर्तव्यनिष्ठा आत्म-अनुशासन दिखाने, कर्तव्यपरायणता से कार्य करने और उपलब्धि का लक्ष्य रखने की प्रवृत्ति है।

कर्तव्यनिष्ठा का तात्पर्य नियोजन, संगठन और निर्भरता से भी है।

उच्च कर्तव्यनिष्ठा को अक्सर हठ और जुनून के रूप में माना जाता है।

कम कर्तव्यनिष्ठा लचीलेपन और सहजता के साथ जुड़ी हुई है, लेकिन यह ढिलाई और विश्वसनीयता की कमी के रूप में भी प्रकट हो सकती है।

3. बहिर्मुखता: (आउटगोइंग/ऊर्जावान बनाम एकान्त/आरक्षित):

बहिर्मुखता ऊर्जा, सकारात्मक भावनाओं, मुखरता, सामाजिकता, बातूनीपन और दूसरों की संगति में उत्तेजना की तलाश करने की प्रवृत्ति का वर्णन करती है।

उच्च अपव्यय को अक्सर ध्यान आकर्षित करने वाले और दबंग के रूप में माना जाता है।

कम बहिर्मुखता एक आरक्षित, चिंतनशील व्यक्तित्व का कारण बनती है, जिसे अलग या आत्म-अवशोषित माना जा सकता है।

4. सहमतता: (मैत्रीपूर्ण/दयालु बनाम विश्लेषणात्मक/अलग):

सहमतता दूसरों के प्रति शंकालु और विरोधी होने के बजाय दयालु और सहयोगी होने की प्रवृत्ति है।

यह किसी के भरोसेमंद और मददगार स्वभाव का भी एक पैमाना है, और क्या कोई व्यक्ति आम तौर पर अच्छे स्वभाव वाला है या नहीं।

उच्च सहमतता को अक्सर अनुभवहीन या विनम्र के रूप में देखा जाता है।

कम सहमत व्यक्तित्व अक्सर प्रतिस्पर्धी या चुनौतीपूर्ण लोग होते हैं, जिन्हें तर्कपूर्ण या अविश्वसनीय के रूप में देखा जा सकता है।

5. विक्षिप्तता:

(संवेदनशील/नर्वस बनाम सुरक्षित/आत्मविश्वास)

विक्षिप्तता आसानी से अप्रिय भावनाओं का अनुभव करने की प्रवृत्ति है, जैसे कि क्रोध, चिंता, अवसाद और भेद्यता।

न्यूरोटिसिज्म भावनात्मक स्थिरता और आवेग नियंत्रण की डिग्री को भी संदर्भित करता है और कभी-कभी इसके निम्न ध्रुव, "भावनात्मक स्थिरता" द्वारा संदर्भित किया जाता है।

स्थिरता की उच्च आवश्यकता एक स्थिर और शांत व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होती है, लेकिन इसे उदासीन और असंबद्ध के रूप में देखा जा सकता है।

स्थिरता की कम आवश्यकता एक प्रतिक्रियाशील और उत्साही व्यक्तित्व का कारण बनती है, अक्सर बहुत गतिशील व्यक्ति, लेकिन उन्हें अस्थिर या असुरक्षित माना जा सकता है।

व्यक्तित्व विकास:

व्यक्तित्व विकास में ऐसी गतिविधियाँ शामिल हैं जो जागरूकता और पहचान में सुधार करती हैं, प्रतिभा और क्षमता का विकास करती हैं, मानव पूंजी का निर्माण करती हैं और रोजगार की सुविधा प्रदान करती हैं, जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करती हैं और सपनों और आकांक्षाओं को साकार करने में योगदान करती हैं।

जब व्यक्तिगत विकास संस्थाओं के संदर्भ में होता है, तो यह उन तरीकों, कार्यक्रमों, उपकरणों, तकनीकों और मूल्यांकन प्रणालियों को संदर्भित करता है जो संगठनों में व्यक्तिगत स्तर पर मानव विकास का समर्थन करते हैं।

व्यक्तित्व विकास में ऐसी गतिविधियाँ शामिल हैं जो प्रतिभा विकसित करती हैं, जागरूकता में सुधार करती हैं, क्षमता को बढ़ाती हैं और जीवन की गुणवत्ता में सुधार करती हैं। इसमें औपचारिक और अनौपचारिक गतिविधियाँ शामिल हैं जो लोगों को उनकी पूरी क्षमता का एहसास करने में मदद करने के लिए नेताओं, मार्गदर्शकों, शिक्षकों और प्रबंधकों की भूमिका में डालती हैं।

इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि व्यक्तित्व में सुधार या परिवर्तन की प्रक्रिया को व्यक्तित्व विकास कहा जाता है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 2- 10. 28 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.29॥

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।

पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्॥

"anantaś cāsmi nāgānāṁ,
varuṇo yādasām aham..।
pitṝṇām aryamā cāsmi,
yamaḥ saṁyamatām aham"..।।

भावार्थ:

मैं सभी नागों (फ़न वाले सर्पों) में शेषनाग हूँ, मैं समस्त जलचरों में वरुणदेव हूँ, मैं सभी पितरों में अर्यमा हूँ, और मैं ही सभी नियमों को पालन करने वालों में यमराज हूँ। (२९)

Meaning:

Among the water snakes I am Ananta and among the marine beings I am Varuna. Among the Pitrs I am Aryamaa and among the controllers I am Yama.

Explanation:

In the previous shloka, Shri Krishna spoke about Ishvara's expressions among snakes that live on land. Here, he says nagaḥ also means snake; and how to differentiate sarpa and nāgāḥ; both mean snakes only. Rememeber; by Nāgās refers to non- poisonous snake; so saviṣa and nirviṣa. So among those Nāgās, I am Ananthaḥ. Also known as Aadishesha, he is depicted with a thousand heads, each head singing the glory of Lord Vishnu, who rests on Aadishesha's coils. His name comes from the Sanskrit root "sis" meaning "that which remains", because Aadishesha remains unaffected after the dissolution of the universe.

So anantha, it is a snake asosciated with Lord Viṣṇu; Lord Viṣṇu is called ananthaśayana. So, he uses the coiled anantha as the bed; and it is like a foam- like bed only and also cool; because snake are supposed to be cool blooded ones; soft to touch and Dayananda swami says, it is the first spring coat in the creation; Bhagavān started it; coil means spring; So therefore

ananthaśayana; of course philosophically speaking, anantha means nirguṇa brahma. So Viṣṇu the saguṇa īśvara is located in his svarūpam of anantha, which is the nirgūṇa brahman; otherwise, it is also called ādiśeṣaḥ; śeṣaḥ means what; that which remains everything is destroyed. In food also śeṣam; after you eat everything; what is left out is śeṣaḥ; in the creation during pralaya; after everything is destoryed; what is left behind is Brahman; and therefore Bhagavān śeṣasāyi; he remains in his svarūpam called śeṣa, which is the brahman, which is the ultimate remainder; therefore anantha śeṣasāyi; śeṣasāyi; that anantha among the Nāgās.

Next, we encounter the world of marine dwelling beings or “Yaadas”. Among these, Shri Krishna says that Ishvara is Lord Varuna, the king of the ocean. He is mentioned as part of the daily prayer ritual known as Sandhyavandanam. Symbolically, “yaadas” refers the to divinity prevalent in any seemingly inert object. Recognizing the divinity in everything, the Indian tradition encourages worship of the Tulsi leaf, of trees, of the earth and so on.

Pitra loka is the realm of the manes or ancestor gods. The seven primary manes are Kavyavaha, Anala, Soma, Yama, Aryama, Agnisvatta and Barhisat. Among these, Shri Krishna says that Ishvara is Aryaman, the chief of the manes.

Ishvara is also Lord Yama among all the controllers. This is because he is also the lord of justice, using the ultimate punishment o death to maintain order and harmony in the universe.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व श्लोक में सर्प वासुकी को अपना स्वरूप बताया था, यहां शेषनाग को अपना स्वरूप बता रहे है। नाग एवम सर्प में कोई अंतर नही दिखते हुए भी यह माना जाता है, नाग एक से ज्यादा सिर वाला होता है। **परमात्मा कहते है मैं नागों में शेषनाग (अनन्त) हूँ** अनेक फणों वाले सर्प नाग कहलाते हैं। उन नागों में सहस्र फनों वाले शेषनाग को भगवान् विष्णु की

शय्या कहा गया है जिस पर वे अपनी योगनिद्रा में विश्राम या शयन करते हैं। यहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं कि, अनेक फणों वाले नागों में, वे सर्वाधिक शक्तिशाली और दिव्य नाग हैं, क्योंकि वे एकमात्र अधिष्ठान है जिस पर सृष्टकर्ता ब्रह्मा और पालनकर्ता विष्णु विश्राम और कार्य करते हैं। शेषनाग विष्णु के ही अवतार माने जाते है एवम पृथ्वी का भार उठाये है। अवतारों में भी इन्होंने परमात्मा के साथ अवतार लिए।

शेषनाग या अदिशेष,ऋषि कश्यप और कद्रू के सबसे बड़े पुत्र हैं। वह नागराज भी थे। परंतु ये राजपाट छोड़कर विष्णु की सेवा में लग गए क्योंकि उनकी माता कद्रू ने अरुण और गरुड़ की माता तथा अपनी बहिन और उनकी विमाता विनता के साथ छल किया था। वह विष्णु भगवान के परम भक्त हैं और उनको शैया के रूप में आराम देते हैं। वह भगवान विष्णु के साथ क्षीरसागर में ही रहते हैं मान्यताओं के अनुसार शेष ने अपने पाश्चात वासुकी और वासुकी ने अपने पश्चात् तक्षक को नागों का राजा बनाया वह सारे ग्रहों को अपनी कुंडली पर धरे हुए हैं। ऐसा माना जाता है कि जब शेषनाग सीधे चलते हैं कब ब्रह्मांड में समय रहता है और जब शेषनाग कुंडली के आकार में आ जाते हैं तो प्रलय आती है। वह भगवान विष्णु के भक्त होने के साथ-साथ उनके अवतारों में भी उनका सहयोग करते हैं। जैसे कि त्रेता युग के राम अवतार में शेषनाग ने लक्ष्मण भगवान का रूप धरा था। वैसे ही द्वापर युग के कृष्ण अवतार में शेषनाग जी ने बलराम जी का अवतार लिया था। जब वसुदेव जी भगवान कृष्ण भगवान को टोकरी में डालकर नंद जी के यहां ले जा रहे थे तब शेषनाग जी उनकी छतरी की तरह उनको बारिश से बचा रहे थे। इनके अन्य छोटे भाई वासुकी , तक्षक , पद्म , महापद्म , कालिया , धनञ्जय , शन्ख आदि नाग थे।

वैज्ञानिक इसे अंतरिक्ष मे ईथर मानते है जो नाग की भांति एक आकर्षण शक्ति की भांति ब्रह्मांड में फैली हुई है जिस के कारण समस्त ग्रह शून्य में भार रहित हो कर अपनी अपनी धुरी पर टिके हुए है। यह शेषनाग ने पृथ्वी का भार उठाया है, का समर्थन करता है। शेषनाग को ब्रह्म के स्वरूप भी कहते है, प्रलय के बाद जो बचता है, उसे ही शेष कहते है। शेषनाग का अर्थ है ब्रह्म का स्वरूप जिस पर परमात्मा विराजमान है।

वरुण सम्पूर्ण जलजन्तुओं के तथा जलदेवताओं के अधिपति हैं और भगवान् के भक्त हैं।पंच महाभूतों में चौथे तत्त्व जल का अधिष्ठाता देवता वरुण है। वैदिक काल में दृश्य जगत् की प्राकृतिक शक्तियों को दैवी आकृति प्रदान कर उनकी पूजा और उपासना की जाती थी।

इसलिये भगवान् ने इनको अपनी विभूति बताया है और कहा है**, मैं जल देवताओं में वरुण हूँ ।**

मैं पितरों में अर्यमा हूँ हिन्दू धर्म में, मृत्यु भी, जीवन का ही एक अनुभव है। इसमें सूक्ष्म शरीर सदैव के लिए अपने वर्तमान निवास स्थान रूपी स्थूल देह को त्याग कर चला जाता है। इस सूक्ष्म शरीर (या जीव) का अपना अलग अस्तित्व बना रहता है, जिसे पितर कहते हैं।ये पितर (अथवा प्रेतात्माएं) एक साथ किसी लोक विशेष में रहते हैं, जिसे पितृलोक कहा जाता है। इसके पूर्व हम बारह आदित्यों के संबंध में वैदिक सिद्धांत को देख चुके हैं, जो बारह महीनों के अधिष्ठाता हैं। उनमें से एक अर्यमा नामक आदित्य को इस पितृलोक का शासक कहा गया है। हिन्दू धर्म तर्पण एवम श्राद्ध इन पितर लोक में रहने वाले पितरों की सेवा एवम सम्मान का प्रतीक है।

प्राणियों पर शासन करनेवाले राजा आदि जितने भी अधिकारी हैं, उन में यमराज मुख्य हैं। ये प्राणियों को उनके पापपुण्यों का फल भुगता कर शुद्ध करते हैं। इनका शासन न्याय और धर्मपूर्वक होता है। ये भगवान् के भक्त और लोकपाल भी हैं। **मैं नियामकों में यम हूँ यमराज मृत्यु के देवता हैं।** भारत में, हम भयंकरता उदासी और दुखान्त को भी पूजते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि ईश्वर शुभ और अशुभ आनन्दप्रद और दुखप्रद सभी वस्तुओं का अधिष्ठान है। हम समझौते के किसी ऐसे सिद्धांत से सन्तुष्ट नहीं होते, जिसमें हम ईश्वर का उन वस्तुओं से कोई संबंध स्वीकार नहीं करते, जो हमें अप्रिय हों।हमें प्रिय प्रतीत हो या न हो, मृत्यु तत्त्व ही हमारे जीवन का नियन्त्रक और नियामक है। मृत्यु ही, प्रत्येक क्षण, रचनात्मक विकास के लिए प्रगतिशील क्षेत्र तैयार करती है। युवावस्था की अभिव्यक्ति के लिए बाल्यावस्था का अन्त होना आवश्यक है। प्रगति अपने आप में जीवन का मात्र आंशिक चित्र और जीवन की सम्पूर्ण गति का एकांगी दर्शन है। प्रत्येक विकास के पूर्व नाश अवश्य होता है। इस प्रकार, नाश का रचनात्मक प्रगति में योगदान मृत्यु की सृजनात्मक कला कहलाती है।

किसी भौतिक वस्तु की वर्तमान अवस्था का नाश किये बिना नवीन वस्तु की निर्मिति नहीं की जा सकती। भौतिक जगत् के इस नियम को समझने से ही हम इस युक्तिसंगत निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। निरीक्षित नियम यह है कि कोई दो वस्तुएँ एक ही समय एक ही स्थान पर साथसाथ नहीं रह सकती हैं। जब एक चित्रकार पट पर फूल का चित्र बना रहा होता है, तब वह न केवल विभिन्न रंगों का प्रयोग ही करता है, वरन् उसकी रचनात्मक कला निरन्तर उस पट के सतह की पूर्वावस्था को नष्ट भी करती जाती है। इस प्रकार, जब जीवन को उसकी

सम्पूर्णता में देखा जाता है, तब ज्ञात होता है कि मृत्यु के देवता का भी उतना ही महत्व है, जितना कि सृष्टि के देवता का।सृष्टि के साथ साथ उसी गति से यदि मृत्यु बुद्धिमत्तापूर्वक कार्य नहीं कर रही होती, तो जगत् में वस्तुओं की असीम और अनियन्त्रित बाढ़ आ गई होती। उस स्थिति में मात्र वस्तुओं की संख्या एवं परिमाण के कारण ही जीवन असंभव हो गया होता। यदि मृत्यु नहीं होती, तो हमारे पूर्व के असंख्य पीढ़ियों के प्रपितामह आदि अभी भी हमारे दो कमरों वाले घरों में रह रहे होते जब कुछ ही मात्रा में जनसंख्या में वृद्धि होने पर प्रकृति का सन्तुलन और जगत् की राजनीतिक शान्ति अस्तव्यस्त हो जाती है, यदि सृष्टिकर्ता के समान मृत्यु देवता भी कार्य नहीं कर रहे होते, तो जगत् की क्या स्थिति होती निश्चय ही, सभी नियामकों में यमराज प्रमुख् हैं।

इस प्रकार सृष्टि यज्ञ चक्र के संचालन में कर्तव्यनिष्ठ को कार्य करने तेज, प्रतापी, न्याय एवम अन्याय की समझने वाले, नियमो का पालन करवाने वाले एवम जीवन का सत्यता की परिचय देने वाले प्रशासनिक समस्त स्वरूप विभूतियो में परमात्मा ही मौजूद है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.29।।

।। वरुण देव ।। विशेष 1 - गीता 10.29 ।।

वरुण (प्रचेता) हिन्दू धर्म के एक प्रमुख देवता हैं। वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड के अनुसार महर्षि वाल्मीकि जी वरुण महर्षि कश्यप और उनकी पत्नी अदिति के पुत्र हैं। वरुणदेव का वाहन मगरमच्छ है वे जललोक के अधिपति हैं | प्राचीन वैदिक धर्म में उनका स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण था पर वेदों में उसका रूप इतना अमूर्त हैं कि उसका प्राकृतिक चित्रण मुश्किल है। माना जाता है कि वरुण की स्थिति अन्य वैदिक देवताओं की अपेक्षा प्राचीन है, इसीलिए वैदिक युग में वरुण किसी प्राकृतिक उपादान का वाचक नहीं है। अग्नि व इंद्र की अपेक्षा वरुण को संबोधित सूक्तों की मात्रा बहुत कम है फिर भी उसका महत्व कम नहीं है। इंद्र को महान योद्धा के रूप में जाना जाता है तो वरुण को नैतिक शक्ति का महान पोषक माना गया है, वह ऋत (सत्य) का पोषक है। अधिकतर सूक्तों में वरुण के प्रति उदात्त भक्ति की भावना दिखाई देती है। ऋग्वेद के अधिकतर सूक्तों में वरुण से किए गए पापों के लिए क्षमा प्रार्थना की गई हैं। वरुण को अन्य देवताओं जैसे इंद्र आदि के साथ भी वर्णित किया गया है। वरुण से संबंधित प्रार्थनाओं में भक्ति भावना की पराकाष्ठा दिखाई देती है। उदाहरण के लिए

ऋग्वेद के सातवें मंडल में वरुण के लिए सुंदर प्रार्थना गीत मिलते हैं। उनको इतिहासकार मानते हैं कि वरुण ही पारसी पंथ में "अहुरा मज़्दा" कहलाए। बाद की पौराणिक कथाओं में वरुण को मामूली जल-देव बना दिया गया। वरुणदेव को प्रचेता भी कहतें हैं| इनके भाई क्रमश: सूर्यनारायण, इन्द्रदेव, पवनदेव, अग्निदेव, महर्षि मार्तण्ड,वामनदेव आदि आदित्य हैं |

पुराणों में वरुण कश्यप के पुत्र कहे गए हैं । भागवत में लिखा है कि चर्षली नाम्नी पत्नी से रुण को भाद्र और वाल्मीकि नामक दो पुत्र हुए थे । वरुण अब तक जल के देवता माने जाते हैं और जलाशयोत्सर्ग में इनका पूजन होता है । साहित्य में ये करुण रस के अधिष्ठाता माने गए हैं ।

मकर पर विराजमान मित्र और वरुण देव दोनों भाई हैं और यह जल जगत के देवता है। उनकी गणना देवों और दैत्यों दोनों में की जाती है। भागवत पुराण के अनुसार वरुण और मित्र को कश्यप ऋषि की पत्नीं अदिति की क्रमशः नौंवीं तथा दसवीं संतान बताया गया है।

मित्र देव का शासन सागर की गहराईयों में है और वरुण देव का समुद्र के ऊपरी क्षेत्रों, नदियों एवं तटरेखा पर शासन हैं। वेदों में इनका उल्लेख प्रकृति की शक्तियों के रूप में मिलता है जबकि पुराणों में ये एक जाग्रत देव हैं। हालांकि वेदों में कहीं कहीं उन्हें देव रूप में भी चित्रित किया गया है। वरुण देव देवों और दैत्यों में सुलह करने के लिए भी प्रसिद्ध हैं।

वेदों में मित्र और वरुण की बहुत अधिक स्तुति की गई है, जिससे जान पड़ता है कि ये दोनों वैदिक ऋषियों के प्रधान देवता थे। वेदों में यह भी लिखा है कि मित्र के द्वारा दिन और वरुण के द्वारा रात होती है। पहले किसी समय सभी आर्य मित्र की पूजा करते थे, लेकिन बाद में यह पूजा या प्रार्थना घटती गई। वेबदुनिया के शोधानुसार पारसियों में इनकी पूजा 'मिथ्र' के नाम से होती थी। मित्र की पत्नी 'मित्रा' भी उनकी पूजनीय थी और अग्नि की आधिष्ठात्री देवी मानी जाती थी। कदाचित् असीरियावालों की 'माहलेता' तथा अरब के लोगों की की 'आलिता देवी' भी यही मित्रा थी।

संतानें:

मित्र और वरुण इन दोनों की संतानें भी अयोनि मैथुन यानि असामान्य मैथुन के परिणामस्वरूप हुई बताई गई हैं। उदाहरणार्थ वरुण के दीमक की बांबी (वल्मीक) पर वीर्यपात स्वरूप ऋषि वाल्मीकि की उत्पत्ति हुई। जब मित्र एवं वरुण के वीर्य अप्सरा उर्वशी की उपस्थिति में एक घड़े में गिर गए तब ऋषि अगस्त्य एवं वशिष्ठ की उत्पत्ति हुई।

मित्र की संतान उत्सर्ग, अरिष्ट एवं पिप्पल हुए जिनका गोबर, बेर वृक्ष एवं बरगद वृक्ष पर शासन रहता है। वरुणदेवता को ईरान में 'अहुरमज्द' तथा यूनान में 'यूरेनस' के नाम से जाना जाता है। वरुण के साथ आप: का भी उल्लेख किया गया है। आप: का अर्थ होता है जल। मित्रःदेव देव और देवगणों के बीच संपर्क का कार्य करते हैं। वे ईमानदारी, मित्रता तथा व्यावहारिक संबंधों के प्रतीक देवता हैं।

उल्लेखनीय है कि भगवान झुलेलाल को वरुणदेव का अवतार माना जाता है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 1 - 10.29 ।।

।। पितर ।। विशेष 2 - गीता 10.29 ।।

पितर के बारे में कुछ जान कारी भी हम लोगो को होनी चाहिये क्योंकि प्रायः हम सभी श्राद्ध करते ही है।

हिंदू धर्म में पितर को 84 लाख योनियों में से एक माना गया है। मान्यता है कि विभिन्न लोकों में रहने वाली ये दिव्य आत्माएं संतुष्ट होने पर व्यक्ति पर अपना आशीर्वाद बरसाती हैं, जिस से मनुष्य को धन, यश, कीर्ति आदि की प्राप्ति होती है और कुल की वृद्धि होती है। इस तरह से देखें तो पितृपक्ष के दौरान किया जाने वाला श्राद्ध पूर्वजों के प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता को व्यक्त करने का माध्यम है। जिस से प्रसन्न होकर पितर सुख-समृद्धि प्रदान करते हैं।

पितृपक्ष में पितरों के किए जाने वाले श्राद्ध के बारे मान्यता है कि इस की शुरुआत महाभारत काल में हुई थी। मान्यता है कि जब मृत्यु के बाद सूर्यपुत्र कर्ण की आत्मा स्वर्ग पहुंची तो उन्हें वहां पर खाने के लिए भोजन की बजाय ढेर सारा स्वर्ण दिया गया। तब उन्होंने इंद्र देवता से इस का कारण पूछा तो उन्होंने कर्ण को बताया कि पृथ्वी पर रहते हुए उन्होंने कभी भी अपने पितरों के निमित्त कभी भी भोजन दान, तर्पण आदि नहीं किया। तब कर्ण ने जवाब दिया कि उन्हें अपने पूवजों के बारे में कुछ भी ज्ञात न था, इसलिए अनजाने में उन से यह भूल हुई। तब उन्हें अपनी भूल को सुधारने के लिए पृथ्वी पर 16 दिन के लिए भेजा गया। जिस के बाद उन्होंने अपने पितरों के मोक्ष के लिए विधि- विधान से श्राद्ध

किया। मान्यता है कि तभी से पितृपक्ष के 16 दिनों में श्राद्ध करने की परंपरा चली आ रही है।

सभी सनातन धर्मावलम्बी इन्हे मानते है और इन के बारे में विसात से शास्त्रों (गरुड़ पुराण, पद्म पुराण) में बताया गया है! ज्यादातर लोग ये जानते है की पितृ हमारे पूर्वज होते है जो अपने अग्रजो द्वारा पूजित होते है! ये बात सही है लेकिन उस से भी ज्यादा कहीं और गूढ़ है पितरो की सच्चाई!

किसी व्यक्ति का ऐसा मृत पूर्वपूरुष जिसका प्रेतत्व छुट चुका हो । विशेष–प्रेत कर्म या अंत्येष्टि कर्म संबंधी पुस्तकों में माना गया है कि अरण और शवदाह के अनंतर मृत व्यक्ति तो आतिवाहिक शरीर मिलता है । इसके उपरांत जब उसके पुत्रादि उस के निमित्त दशगात्र का पिंडदान करते है तब दशपिंडों से क्रमशः उसके शरीर के दश अंग गठित होकर उसको एक नया शरीर प्राप्त होता है । इस देह में उस की प्रेत संज्ञा होती है । षोडश श्राद्ब और सपिंडन के द्बारा क्रमशः उस का यह शरीर भी छुट जाता है और वह एक नया भोगदेह प्राप्त कर अपने बाप दादा और परदादा आदि के साथ पितृलोक का निवासी बनता है अथवा कर्मसंस्कारा- नुसार स्वर्ग नरक आदि में सुखदुःखादि भोगता है । इसी अवस्था में उस को पितृ कहते है । जब तक प्रेतभाव बना रहता है तब तक मृत व्यक्ति पितृ संज्ञा पाने का अधिकारी नहीं होता ।

पितर योनि के लिये पुण्य कर्मों का निर्णय निष्काम, सात्विक एवम व्यवसायिक बुद्धि से किये कर्मो के आधार पर देव पितर ही करते है। सांसारिक दृष्टिकोण एवम देव लोक के दृष्टिकोण में अंतर हो सकता है क्योंकि यहाँ छुपा कर कुछ नही होता। अतः पितर भी देव पितर और मनुष्य पितर होते है।

एक प्रकार के देवता जो सब जीवों के आदिपूर्वज माने गए है । विशेष–मनुस्मृति में लिखा है कि ऋषियों से पितर, पितरों से देवता और देवताओं से संपूर्ण स्थावर जंगम जगत की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मा के पूत्र मनु हुए । मनु के मरोचि, अग्नि आदि पुत्रों को पुत्रपरंपरा ही देवता, दानव, दैत्य, मनुष्य आदि के मूल पूरूष या पितर है ।

श्री विष्णु पुराण के अनुसार सृष्टि के आदि में जब उन्होंने रचना प्रारम्भ की तब ब्रह्मा जी के पृष्ठ भाग अर्थात पीठ से पितरों की उत्पत्ति हुई। पितरों के उत्पन्न होने के बाद ब्रह्मा जी ने उस शरीर का त्याग कर दिया जिससे पितर उत्पन्न हुए थे। पितरों को जन्म देने वाला

ब्रह्माजी का वह शरीर संध्या बन गया, इसलिए पितर संध्या के समय अधिक शक्तिशाली होते हैं।

धर्मशास्त्रों के अनुसार पितरों का निवास चंद्रमा के उर्ध्वभाग में माना गया है। ये आत्माएं मृत्यु के बाद 1 से लेकर 100 वर्ष तक मृत्यु और पुनर्जन्म की मध्य की स्थिति में रहती हैं। पितृलोक के श्रेष्ठ पितरों को न्यायदात्री समिति का सदस्य माना जाता है।

दरअसल पितृ देव, देवताओ के भी देवता होते है! शास्त्रों में 7 स्वर्गो के होने की बात कही है और सभी स्वर्गो में हर एक में एक यानि सात अलग अलग पितृ देवता है जो उन स्वर्गो के अधिपतियों द्वारा पूजित है! साथ ही ये भी जाने की पितृ देव देवो की पूजा करते है और देव पितरो की, मतलब दोनों एक दूसरे के इष्ट है!

यमराज की गणना भी पितरों में होती है। काव्यवाह, अनल, सोम, अर्यमा, अग्निशावत्त, बहिर्षद और यम- ये सात इस जमात के मुख्य गण प्रधान हैं। अर्यमा को पितरों का प्रधान माना गया है और यमराज को न्यायाधीश। श्राद्ध आदि जो भी पिंड दान और पूर्वजों के लिए जीव धरती में कर्म करता है वे कहते है कि अर्यमा के पास पहुंचते है और अर्यमा के पास उस जीव के पूर्वजों की जानकारी होने से वे उसे उन के पास पहुंचा देते है।

इन सातों में प्रत्येक वर्ग की ओर से सुनवाई करने वाले हैं, यथा- अग्निष्व, देवताओं के प्रतिनिधि, सोमसद या सोमपा-साध्यों के प्रतिनिधि तथा बहिर्पद-गंधर्व, राक्षस, किन्नर सुपर्ण, सर्प तथा यक्षों के प्रतिनिधि हैं। इन सबसे गठित जो जमात है, वही पितर हैं। यही मृत्यु के बाद न्याय करती है।

भगवान चित्रगुप्तजी के हाथों में कर्म की किताब, कलम, दवात और करवाल हैं। ये कुशल लेखक हैं और इनकी लेखनी से जीवों को उनके कर्मों के अनुसार न्याय मिलता है।

पितृलोक के श्रेष्ठ पितरों को न्यायदात्री समिति का सदस्य माना जाता है। पुराण अनुसार मुख्यत: पितरों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है- दिव्य पितर और मनुष्य पितर। दिव्य पितर उस जमात का नाम है, जो जीवधारियों के कर्मों को देखकर मृत्यु के बाद उसे क्या गति दी जाए, इसका निर्णय करता है। इस जमात का प्रधान यमराज है।

सामान्य धारणा यह है कि जिन की मृत्यु हो जाती है वह पितर बन जाते हैं। लेकिन गरूड़ पुराण से यह जानकारी मिलती है कि मृत्यु के पश्चात मृतक व्यक्ति की आत्मा प्रेत रूप में यमलोक की यात्रा शुरू करती है। सफर के दौरान संतान द्वारा प्रदान किये गये पिण्डों से प्रेत

आत्मा को बल मिलता है। यमलोक में पहुंचने पर प्रेत आत्मा को अपने कर्म के अनुसार प्रेत योनी में ही रहना पड़ता है अथवा अन्य योनी प्राप्त होती है।

गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि वह पितरों में अर्यमा नामक पितर हैं। यह कह कर श्री कृष्ण यह स्पष्ट करते हैं कि पितर भी वही हैं पितरों की पूजा करने से भगवान विष्णु की ही पूजा होती है।

पितर से यह भी ज्ञात होता है कि मृत्यु के बाद भी जीव का संबंध संसार से नही छूटता और प्रेत से उच्च श्रेणी में जाने के लिए उसे उस के पुत्रों से पिंड दान आदि श्राद्ध की क्रियाएं चाहिए। इसी प्रकार वह जीव अपने परिवार के कार्यों में मदद भी अर्यमा पितर के माध्यम से करता है। अतः यह मान्यता है कि जीव के मृत्यु के बाद उस का मन और बुद्धि का सूक्ष्म रूप बने रहने से उस की कामना, आसक्ति और मोह उसे अपने परिवार की ओर खींचता है। उस से मुक्ति श्राद्ध में पिंड दान आदि से होती है और उसे उस का बल मिलता है जिस से वह प्रेत योनि से मुक्त हो कर पितर बनता है। पितर की उच्च श्रेणी देव योनि है। इसलिए पितर योनि में जीव के सूक्ष्म शरीर में अपने परिवार के प्रति स्नेह बना ही रहता है। इसलिए तीन पीढ़ी के श्राद्ध किए जाते है। अतः सूक्ष्म शरीर में कर्म बन्धन के साथ, संस्कार, संचित ज्ञान और कामना, मोह और आसक्ति की भावनाएं भी रहती है, जो जीव को अपने पूर्व जन्म की ओर आकर्षित करती है। अतः 84 लाख योनियों में पितर और देव भी योनियां ही भोग के लिए निमित्त है।

दिव्य पितर की जमात के सदस्यगण : अग्निष्वात्त, बहिर्पद आज्यप, सोमेप, रश्मिप, उपदूत, आयन्तुन, श्राद्धभुक व नान्दीमुख ये नौ दिव्य पितर बताए गए हैं। आदित्य, वसु, रुद्र तथा दोनों अश्विनी कुमार भी केवल नांदीमुख पितरों को छोड़कर शेष सभी को तृप्त करते हैं।

अर्यमा का परिचय :

आश्विन कृष्ण प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक ऊपर की किरण (अर्यमा) और किरण के साथ पितृ प्राण पृथ्वी पर व्याप्त रहता है। पितरों में श्रेष्ठ है अर्यमा। अर्यमा पितरों के देव हैं। ये महर्षि कश्यप की पत्नी देवमाता अदिति के पुत्र हैं और इंद्रादि देवताओं के भाई। पुराण अनुसार उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र इनका निवास लोक है।

इनकी गणना नित्य पितरों में की जाती है जड़-चेतन मयी सृष्टि में, शरीर का निर्माण नित्य पितृ ही करते हैं। इनके प्रसन्न होने पर पितरों की तृप्ति होती है। श्राद्ध के समय इनके नाम से जलदान दिया जाता है। यज्ञ में मित्र (सूर्य) तथा वरुण (जल) देवता के साथ स्वाहा का 'हव्य' और श्राद्ध में स्वधा का 'कव्य' दोनों स्वीकार करते हैं।

अब यदि हम उन पितरो की पूजा करते है जो देवो के इष्ट है तो देव भी प्रसन्न होते है या यूँ कहें की पितृ देवो से भी प्रथम पूज्य है! इन सात के आलावा जो हमारे गोत्र की आगे पहले की पीढ़िया है जो की या तो स्वर्ग में है या नरक में या तो तिर्यक योनि (जानवरो के जन्म में) या वनस्पति योनि में वो सभी भी हमारे पितृ और पूजनीय है!

रामायण में उल्लेख है की श्री राम चंद्र जी ने भी अपने पितरो (दशरथ जी का) का पिंडदान किया था, महाभारत में भीष्म ने भी शांतनु का श्राद्ध किया था! हर श्राद्ध में अपनी तिथि पर, त्योहारों, विशेष रूप से अमावस्या और पूर्णिमां के दिन सभी पितृ अपने अपने घरो में वायु रूप में आते है!

।। हरि ॐ तत सत।। विशेष 2 - 10.29 ।।

।। यमराज ।। विशेष 3 - 10.29 ।।

आदि शंकराचार्य की रचना भज गोविंदम में कहा है।

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं,

हरति निमेषात्कालः सर्वं।

मायामयमिदमखिलम् हित्वा,

ब्रह्मपदम् त्वं प्रविश विदित्वा ॥११॥

धन, शक्ति और यौवन पर गर्व मत करो, समय क्षण भर में इनको नष्ट कर देता है| इस विश्व को माया से घिरा हुआ जान कर तुम ब्रह्म पद में प्रवेश करो ॥११॥

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः,

शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।

कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि

न मुन्च्त्याशावायुः ॥१२॥

दिन और रात, शाम और सुबह, सर्दी और बसंत बार-बार आते-जाते रहते है काल की इस क्रीडा के साथ जीवन नष्ट होता रहता है पर इच्छाओ का अंत कभी नहीं होता है ॥१२॥

इस काल और मृत्यु को जो नियमित और नियंत्रित करता है, वह काल का देवता यमराज हिन्दू धर्म के अनुसार मृत्यु के देवता हैं। इनका उल्लेख वेद में भी आता है। इन की जुड़वां बहन यमुना (यमी) है। यमराज, महिषवाहन (भैंसे पर सवार) दण्डधर हैं। वे जीवों के शुभाशुभ कर्मों के निर्णायक हैं। वे परम भागवत, बारह भागवताचार्यों में हैं। यमराज दक्षिण दिशा के दिक् पाल कहे जाते हैं और आजकल मृत्यु के देवता माने जाते हैं।

दक्षिण दिशा के इन लोकपाल की संयमनीपुरी समस्त प्राणियों के लिये, जो अशुभ कर्मा हैं, बड़ी भयप्रद है। यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दघ्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त - इन चौदह नामों से यमराज की आराधना होती है। इन्हीं नामों से इनका तर्पण किया जाता है। यमराज की पत्नी देवी धुमोरना थी। कतिला यमराज व धुमोरना का पुत्र था। कुंती और यमराज के पुत्र का नाम युधिष्ठिर था |

विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा से भगवान सूर्य के पुत्र यमराज, श्राद्धदेव मनु और यमुना उत्पन्न हुईं। ऋग्वेद में, यम एक सौर देवता विवस्वत और सरस्वती के पुत्र हैं और उनकी एक जुड़वां बहन है जिसका नाम यमी है।

वे विवान्वन्त के पुत्र अवेस्तान यीमा से परिचित हैं। यम के अधिकांश प्रकटन पहली और दसवीं पुस्तक में हैं। ऋग्वेद में यम का अग्नि के साथ घनिष्ठ संबंध है। अग्नि यम के मित्र और पुजारी दोनों हैं, और कहा जाता है कि यम ने छिपी हुई अग्नि को ढूंढ लिया था। ऋग्वेद में, यम मृतकों का राजा है, और दो राजाओं में से एक है जिसे मनुष्य स्वर्ग में पहुंचने पर देखता है (दूसरा वरुण है)। यम को लोगों का एक संग्रहकर्ता कहा जाता है, जिन्होंने मृत लोगों को आराम करने के लिए जगह दी। तीन ऋग्वैदिक स्वर्गों में से, तीसरा

और उच्चतम यम का है (निचले दो स्वर्ग सावित्री के हैं)। यहीं पर देवता निवास करते हैं और यम संगीत से घिरे हैं। अनुष्ठान बलिदान में, यम को सोम और घी की पेशकश की जाती है, और बलि पर बैठने के लिए, यज्ञ करने वालों को देवताओं के निवास तक ले जाने और लंबी उम्र प्रदान करने के लिए आमंत्रित किया जाता है।

यम और यमी के बीच संवाद भजन में, पहले दो मनुष्यों के रूप में, यमी अपने जुड़वां भाई यम को उसके साथ यौन संबंध बनाने के लिए मनाने की कोशिश करती है। यमी कई तरह के तर्क देते हैं, जिसमें नश्वर रेखा को जारी रखना शामिल है, कि तवश्तर ने उन्हें गर्भ में एक जोड़े के रूप में बनाया, और यह कि द्यौष और पृथ्वी अपने अनाचार के लिए प्रसिद्ध हैं। यम का तर्क है कि उन के पूर्वज, "पानी में गंधर्व और पानी वाली युवती", अनाचार न करने के कारण के रूप में, मित्र-वरुण अपने नियमों में सख्त हैं, और उनके पास हर जगह जासूस हैं। भजन के अंत तक यमी निराश हो जाते हैं लेकिन यम अपने रुख पर अडिग रहते हैं। हिन्दू धर्म मे भाई-बहन के यौन संबंध वर्जित है।

वैदिक साहित्य में कहा गया है कि यम पहले नश्वर हैं, और उन्होंने मरने के लिए चुना, और फिर "दूसरी दुनिया" के लिए एक रास्ता बनाने के लिए आगे बढ़े, जहां मृतक पैतृक पिता रहते हैं। मरने वाले पहले व्यक्ति होने के कारण, उन्हें मृतकों का प्रमुख, बसने वालों का स्वामी और एक पिता माना जाता है। वैदिक साहित्य के दौरान, यम अधिक से अधिक मृत्यु के नकारात्मक पहलुओं से जुड़े, अंततः मृत्यु के देवता बन गए। वह अंतक (एंडर), मृत्यु (मृत्यु), निरति (मृत्यु), और नींद से जुड़ जाता है।

यम के दो चार-आंखों वाले, चौड़े नाक वाले, चितकबरे, लाल-भूरे रंग के कुत्ते हैं, और ये सरमा के पुत्र हैं। हालांकि अथर्ववेद में एक कुत्ते की लगाम लगाई गई है और दूसरे में अंधेरा है। कुत्ते उन लोगों को ट्रैक करने के लिए हैं जो मरने वाले हैं, और यम के दायरे के मार्ग की रक्षा करते हैं। आरवी की थियोडोर औफ्रेच्ट की व्याख्या का पालन करने वाले विद्वानों का कहना है कि कुत्तों को भी दुष्ट पुरुषों को स्वर्ग से बाहर रखने के लिए बनाया गया था।

वाजसनेयी संहिता (श्वेत यजुर्वेद) में कहा गया है कि यम और उन की जुड़वां बहन यमी दोनों सर्वोच्च स्वर्ग में निवास करते हैं।अथर्ववेद में कहा गया है कि यम अतुलनीय है और विवस्वत से भी बड़ा है।

तैत्तिरीय आरण्यक और अस्तंब श्रौत में कहा गया है कि यम के पास सुनहरी आंखों वाले और लोहे के खुर वाले घोड़े हैं।

कठौनिषद में, यम को ब्राह्मण लड़के नचिकेता के शिक्षक के रूप में चित्रित किया गया है।नचिकेता को तीन वरदान देने के बाद, उनकी बातचीत अस्तित्व की प्रकृति, ज्ञान, आत्मा (यानी आत्मा, स्वयं) और मोक्ष (मुक्ति) की चर्चा के रूप में विकसित होती है।

यम कहते हैं: मैं उस ज्ञान को जानता हूं जो स्वर्ग की ओर ले जाता है। मैं इसे आपको समझाऊंगा ताकि आप इसे समझ सकें, हे! नचिकेता, याद रखो यह ज्ञान अनंत संसार का मार्ग है; सभी दुनिया का समर्थन; और बुद्धिमानों की बुद्धि में सूक्ष्म रूप में निवास करता है। – अध्याय 1, खण्ड 1, पद 14

महाकाव्य महाभारत में, यम पांच पांडवों के सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर (जिसे धर्मराज के नाम से भी जाना जाता है) का पिता है। यम सबसे विशेष रूप से यक्ष प्रश्न और वान पर्व में व्यक्तिगत रूप से प्रकट होते हैं, और भगवद गीता में इसका उल्लेख किया गया है।

यक्ष प्रश्न में, यम युधिष्ठिर से सवाल करने और उनकी धार्मिकता का परीक्षण करने के लिए क्रेन के रूप में एक यक्ष (प्रकृति आत्मा) के रूप में प्रकट होते हैं। युधिष्ठिर के धर्म के सख्त पालन और पहेलियों के उन के जवाबों से प्रभावित होकर, यम ने खुद को अपने पिता के रूप में प्रकट किया, उन्हें आशीर्वाद दिया और अपने छोटे पांडव भाइयों को वापस जीवन में लाया-:

यक्ष यम ने पूछा, कौन सा शत्रु अजेय है? एक लाइलाज बीमारी क्या है? किस तरह का आदमी महान है और किस तरह का है"? और युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "क्रोध अजेय शत्रु है। लोभ एक ऐसी बीमारी है जो लाइलाज है। वह महान है जो सभी प्राणियों की भलाई की इच्छा रखता है, और वह अज्ञानी है जो दया के बिना है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 3 - 10.29 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.30॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥

"prahlādaś cāsmi daityānāṁ,
kālaḥ kalayatām aham..।
mṛgāṇāṁ ca mṛgendro 'haṁ,

vainateyaś ca pakṣiṇām"..।।

भावार्थ:

मैं सभी असुरों में भक्त-प्रहलाद हूँ, मै सभी गिनती करने वालों में समय हूँ, मैं सभी पश हूँ, और मैं ही पक्षियों में गरुड़ हूँ। (३०)

Meaning:

Among the demons I am Prahalaad and among the systems of counting I am time. Among animals I am the lion and among the birds I am Vainateya.

Explanation:

The story of Prahalaad is found in the Srimad Bhaagavatam. Son of the demon-king Hiranyakashipu, he was an ardent devotee of Lord Naaraayana. So firm was his devotion that Lord Naaraayana appeared in the form of the half lion half man Narasimha to save Prahalaad from the atrocities committed by his father. Praising the strength of devotion, Shri Krishna says that Ishvara is found in Prahalaad among demons.

I remember the names of all the great bhakthās; and the top most one is Prahlāda; By birth he is asura jāthi; by character he is satva guṇa. From this we also another important thing; jāthi does not make a person great, it is the guṇa that makes a person great; And therefore we can never look down a person based on jaathi, the caste system became notorious because we started looking down upon people purely based on janma; and those people see the so-called brahmanas; who are born from brāhmaṇās; and who are given to lot of vices and I respect a brāhmaṇās, just because he is born a brāhmaṇās, even though he does not have any character, there is something irrational in it; And therefore, jati does not make a person great, but character; and what is the example, Prahlāda was born asura; Rāvaṇa was

a brāhmaṇā; Also, it drives home the message that we can change our destiny no matter what kind of family we are born into.

Next, Shri Krishna takes up the systems of counting. Even today there are various forms of such systems including the metric system, the imperial system and so on. The most accurate system, however, is that of time. Everything and everyone in the universe is under the influence of time and cannot escape its impact. So among the counting systems, Ishvara's foremost expression is that of time.

For those of us who have seen a lion up close, it is no surprise that Shri Krishna finds the lion as prominent among the animals. The king of the jungle is magnificent even if found in a cage. His roar subdues animals that are much larger than he is. The majestic lion is the king of the jungle, and amongst the animals the power of the Lord indeed reveals itself in the lion.

Among the birds, it is Vainateya, also known as Garuda the eagle, who is Ishvara's finest expression. Garuda was the son of sage Kashyapa and Vinata. He is Lord Vishnu's mount, emanating the Vedas from his wings as he flies.

So whenever we see someone succeeding despite their weaknesses, when we observe the passage of time, whenever we see animals or birds, we should remember that everything is Ishvara only.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पर + आह्लाद अर्थात जो दूसरों के लिये प्रेम करे वो प्रह्लाद मै ही हूँ। आसुरी सम्पद में सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में विभिन्न संकट के रहते हुए भी परमात्मा के प्रति दृढ़ निष्ठा रखने वाले हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लाद को परमात्मा ने अपना स्वरूप बताया। कश्यप मुनि की पत्नी दिति से जो उत्पन्न हुए हैं, उनको दैत्य कहते हैं। उन दैत्यों में प्रह्लादजी मुख्य हैं और श्रेष्ठ हैं। ये भगवान् के परम विश्वासी और निष्काम प्रेमी भक्त हैं। इन्होंने कभी किसी का बुरा नही सोचा, यहां तक इन पर अत्याचार करने वालो तक का भला चाहा। अतः

जो भक्त विपरीत परिस्थिति में भी परमात्मा में दृढ़ विश्वास के साथ सात्विक मार्ग पर चलना नही छोड़ता और इस के लिये वह सांसारिक रिश्तों तक का भी यानि कुमार्ग पर चलने वाले पिता की शिक्षा को भी नही स्वीकार करता। ऐसा भक्त जिस का योगक्षेम स्वयं परमात्मा वहन करते है, **वह महान विभूति भक्त योगी प्रहलाद हो सकता है। इसलिये भगवान् ने इनको अपनी विभूति बताया है।**

वर्ण व्यवस्था में यदि जन्म या जाति का आधार रहता तो ब्राहमण कुल में जन्म लेने वाला रावण असुर और तामसी गुण से युक्त हो कर भी परमात्मा की विभूति कहलाता, किंतु सत्यता यह नहीं है। सत्व गुण से युक्त होने के जन्म और जातीय व्यवस्था को वर्ण व्यवस्था में कोई स्थान नहीं था। जीव अपने ज्ञान, आचरण और अभ्यास से सत्व गुण को धारण कर के भी परमात्मा की विभूति हो जाता है। इस का प्रहलाद एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

आधुनिक विज्ञान में काल की गणना के आधुनिक साधन होते हुए भी, ऋषि मुनियों द्वारा उस एक के संकल्प-विकल्प से ब्रह्मांड की रचना की जो खोज करते हुए, काल की गणना की, वह आज भी सार्थक है। मैं गणना करने वालों में काल हूँ। भारत के दार्शनिकों में नैय्यायिकों का अपना विशेष स्थान है। वे सृष्टि की विविधता को सत्य स्वीकार करते हुए ईश्वर के अस्तित्व का निषेध करते हैं। केवल बौद्धिक तर्कों के द्वारा वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि काल ही नित्य तत्त्व है। व्यष्टि मन और बुद्धि ही काल के विभाजक हैं, जो उसमें भूत, वर्तमान और भविष्य की कल्पनायें करते हैं। उनके मत के अनुसार मन का यह खेल ही काल का विभाजन इस प्रकार करता है कि मानो काल कोई खण्डित और परिच्छिन्न तत्त्व हो। सम्भवत, इसी सिद्धांत को ध्यान में रखकर, महर्षि व्यास ने बहुविध सृष्टि के अनन्त अधिष्ठान को दर्शाते के लिए इस उदाहरण को यहाँ दिया है।कुछ व्याख्याकार हैं, जो प्राय इसे एक सरल कथन के रूप में स्वीकार करते हैं उनके अनुसार, अनादि अनन्त काल ही इस जगत् की वस्तुओं की अन्तिम गति है। ज्योतिषशास्त्र में काल (समय) से ही आयु की गणना होती है। इसलिये क्षण, घड़ी, दिन, पक्ष, मास, वर्ष आदि गणना करने से साधनों में काल भगवान् की विभूति है। टाइम मशीन की कल्पना करने वाले लेखक एवम पूर्वज ऋषि मुनि भी मानते है कि काल नित्य एवम अनन्त है, इस मे कुछ भी नष्ट नही होता। हम काल मे गति को प्राप्त होते है। यदि हम पीछे जा सके तो भूतकाल और आगे जा सके तो भविष्य काल को देख सकते है। यह सिनेमा में दिखने वाली रील की तरह है, जो वर्तमान पर्दे पर दर्शाती है और जिस के भूत और भविष्य रील में सिमटा रहता है। किंतु सभी तय

गति से होता है। **ऐसे अनन्त, नित्य एवं सतत काल को परमात्मा ने अपना स्वरूप बताया है।**

काल अनंत है, असीमित है और इस का कोई आदि और अंत नही। फिर जीव अपने भौतिक शरीर से काल की गणना करता है परंतु वह अज्ञान में भूल जाता है कि वह इस शरीर के पहले भी था और बाद में भी रहेगा। प्रकृति के योगमाया के अज्ञान में जीव का अहम और भौतिक शरीर ही जन्म और मृत्यु का सूचक है और इसीलिए अहम में जीव प्रकृति की योगमाया से वशीभूत हो कर अज्ञान में जीवन और अमृतत्व खोजता है, यानि जो मिथ्या है, उस को सत्य समझ कर मनुष्य जीवन को नष्ट कर देता है। मुझे आश्चर्य तब अधिक होता है जब आत्मज्ञान उपलब्ध होने के बाद भी जीव अज्ञान में भटकना पसंद करता है।

बाघ, हाथी, चीता, रीछ आदि जितने भी पशु हैं, उन सबमें सिंह बलवान्, तेजस्वी, प्रभावशाली, शूरवीर और साहसी है। यह सब पशुओं का राजा है। **इसलिये भगवान् ने सिंह को अपनी विभूति बताया है।**

गरुड़ पक्षियों में सर्वश्रेष्ठ माने गए हैं. धर्म ग्रंथों के अनुसार, वह भगवान विष्णु के वाहन हैं. उनकी मां विनिता थीं, जो कि प्रजापति कश्यपजी की पत्नी थीं. गरुड़ एक विशाल, अतिबलिष्ठ और अपने संकल्प को पूरा करने वाले हैं. उनके मन में अपने लिए कोई लालसा नहीं थी, उनसे प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें अमृत्व प्रदान किया। गरुड़ अमृत लेने स्वर्ग में इसलिए गए थे, ताकि अपनी मां को सर्पों की मां कद्रू की दासता से मुक्ति दिला सकें. कद्रू ने यह शर्त रखी थी कि तुम यदि मेरे पुत्रों के लिए अमृत ला दोगे तो तुम्हारी मां दासत्व से मुक्त हो जाएगी. तब गरुड़ उड़कर स्वर्ग पहुंचे. उन्होंने देवताओं को हराया और अमृत को छीन लाए।

इंद्रादि सभी देवताओं ने उन्हें रोकने की खूब कोशिश की लेकिन, गरुड़ उन्हें मात देकर धरती की ओर चल पड़े. रास्ते में भगवान विष्णु प्रकट हुए. भगवान ने देखा कि, गरुड़ के मुंह में अमृत कलश होने के बाद भी उसने खुद अमृत नहीं पीया, जरा भी लालच नहीं था. भगवान ने खुश होकर गरुड़ को वर दिया. तब गरुड़ ने कहा, 'भगवन् मुझसे भी कुछ मांगिए'. गरुड़ की बात सुनकर भगवान विष्णु ने कहा, 'आप मेरे वाहन हो जाओ!'

विनता के पुत्र गरुड़जी सम्पूर्ण पक्षियों के राजा हैं और भगवान् के भक्त हैं। ये भगवान् विष्णु के वाहन हैं और जब ये उड़ते हैं, तब इन के पंखों से स्वतः सामवेद की ऋचाएँ ध्वनित होती हैं। **इसलिये भगवान् ने गरुड़ को अपनी विभूति बताया है।**

परमात्मा की विभूतियां अनगिनत है किन्तु मानव मन हमेशा श्रेष्ठता की ओर देखता है, इसलिये भक्ति की अक्षुण्ण निष्ठा, समय या काल जिसे लोग सब से ताकतवर मानते है एवम जिस को जीत नहीं सकते, पशुओं में तेज, ताकतवर, फुर्तीला सिंह एवम पक्षियों में सब से ताकतवर पक्षी द्वारा परमात्मा अपनी विभूतियो को प्रकट करते है।

।।हरि ॐ तत सत।।10.30।।

।। काल गणना पंचांग ।। विशेष - 1, गीता 10.30 ।।

यदि दुनिया में कोई-सा वैज्ञानिक कैलेंडर या समय मापन-निर्धारण की पद्धति है तो वह है भारत के आप्राचीन वैदिक ऋषियों की पद्धति। इसी पद्धति को ईरानी और यूनानियों ने अपनाया और इसे ही बाद में अरब और मिस्र के वासियों ने अपनाया। किंतु कालांतर में अन्य देशों में बदलते धर्म और संस्कृतियों के प्रचलन ने इसके स्वरूप में परिवर्तन कर दिया गया। उस काल में दुनिया भर के कैलेंडर में मार्च का महीना प्रथम महीना होता था, लेकिन उन सभी कैलेंडरों को हटाकर आजकल अंग्रेजी कैलेंडर प्रचलन में है। अंग्रेजों ने लगभग पूरी दुनिया पर राज किया। ऐसे में उन्होंने अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति सहित ईसा के कैलेंडर को भी पूरी दुनिया पर लाद दिया।

वैदिक ऋषियों ने इस तरह का कैलेंडर या पंचांग बनाया, जो पूर्णत: वैज्ञानिक हो। उससे धरती और ब्रह्मांड का समय निर्धारण किया जा सकता हो। धरती का समय निर्माण अर्थात कि धरती पर इस वक्त कितना समय बीत चुका है और बीत रहा है और ब्रह्मांड अर्थात अन्य ग्रहों पर उनके जन्म से लेकर अब तक कितना समय हो चुका है- यह निर्धारण करने के लिए उन्होंने एक सटीक समय मापन पद्धति विकसित की थी। आश्चर्य है कि आज के वैज्ञानिक यह कहते हैं कि ऋषियों की यह समय मापन पद्धति आज के खगोल विज्ञान से मिलती-जुलती है, जबकि उन्हें कहना यह चाहिए कि ऋषियों ने हमसे हजारों वर्ष पहले ही एक वैज्ञानिक समय मापन पद्धति खोज ली थी।

ऋषियों ने इसके लिए सौरमास, चंद्रमास और नक्षत्रमास की गणना की और सभी को मिलाकर धरती का समय निर्धारण करते हुए संपूर्ण ब्रह्मांड का समय भी निर्धारण कर उसकी आयु का मान निकाला। जैसे कि मनुष्य की आयु प्राकृतिक रूप से 120 वर्ष होती है उसी तरह धरती और सूर्य की भी आयु निर्धारित है। जो जन्मा है वह मरेगा। ऐसे में वैदिक

ऋषियों की समय मापन की पद्धति से हमें जहां समय का ज्ञान होता है वहीं हमें सभी जीव, जंतु, वृक्ष, मानव, ग्रह और नक्षत्रों की आयु का भी ज्ञान होता है।

ऋषियों ने सूक्ष्मतम से लेकर वृहत्तम माप, जो सामान्य दिन- रात से लेकर 8 अरब 64 करोड़ वर्ष के ब्रह्मा के दिन-रात तक की गणना की है, जो आधुनिक खगोलीय मापों के निकट है। यह गणना पृथ्वी व सूर्य की उम्र से भी अधिक है तथा ऋषियों के पास और भी लंबी गणना के माप हैं।

युगमान- 4,32,000 वर्ष में सातों ग्रह अपने भोग और शर को छोड़कर एक जगह आते हैं। इस युति के काल को कलियुग कहा गया। दो युति को द्वापर, तीन युति को त्रेता तथा चार युति को सतयुग कहा गया। चतुर्युगी में सातों ग्रह भोग एवं शर सहित एक ही दिशा में आते हैं।

वैदिक ऋषियों के अनुसार वर्तमान सृष्टि पंच मंडल क्रम वाली है। चन्द्र मंडल, पृथ्वी मंडल, सूर्य मंडल, परमेष्ठी मंडल और स्वायम्भू मंडल। ये उत्तरोत्तर मंडल का चक्कर लगा रहे हैं।

परमाणु समय की सबसे सूक्ष्मतम इकाई है। यहीं से समय की शुरुआत मानी जा सकती है। यह इकाई अति लघु श्रेणी की है। इससे छोटी कोई इकाई नहीं। आधुनिक घड़ी का कांटा संभवत: सेकंड का सौवां या 1000वां हिस्सा भी बताने की क्षमता रखता है। धावकों की प्रतियोगिता में इस तरह की घड़ी का इस्तेमाल किया जाता है। सेकंड के जितने भी हिस्से हो सकते हैं उसका भी 100वां हिस्सा परमाणु हो सकता है।

*1 परमाणु = काल की सबसे सूक्ष्मतम अवस्था

*2 परमाणु = 1 अणु

*3 अणु = 1 त्रसरेणु

*3 त्रसरेणु = 1 त्रुटि

*10 त्रुटि = 1 प्राण

*10 प्राण = 1 वेध

*3 वेध = 1 लव या 60 रेणु

*3 लव = 1 निमेष

*1 निमेष = 1 पलक झपकने का समय

*2 निमेष = 1 विपल (60 विपल एक पल होता है)

*3 निमेष = 1 क्षण

*5 निमेष = 2 सही 1 बटा 2 त्रुटि

*2 सही 1 बटा 2 त्रुटि = 1 सेकंड या 1 लीक्षक से कुछ कम।

*20 निमेष = 10 विपल, एक प्राण या 4 सेकंड

*5 क्षण = 1 काष्ठा

*15 काष्ठा = 1 दंड, 1 लघु, 1 नाड़ी या 24 मिनट

*2 दंड = 1 मुहूर्त

*15 लघु = 1 घटी=1 नाड़ी

*1 घटी = 24 मिनट, 60 पल या एक नाड़ी

*3 मुहूर्त = 1 प्रहर

*2 घटी = 1 मुहूर्त= 48 मिनट

*1 प्रहर = 1 याम

*60 घटी = 1 अहोरात्र (दिन-रात)

*15 दिन-रात = 1 पक्ष

*2 पक्ष = 1 मास (पितरों का एक दिन-रात)

*कृष्ण पक्ष = पितरों का एक दिन और शुक्ल पक्ष = पितरों की एक रात।

*2 मास = 1 ऋतु

*3 ऋतु = 6 मास

*6 मास = 1 अयन (देवताओं का एक दिन-रात)

*2 अयन = 1 वर्ष

*उत्तरायन = देवताओं का दिन और दक्षिणायन = देवताओं की रात।

*मानवों का एक वर्ष = देवताओं का एक दिन जिसे दिव्य दिन कहते हैं।

*1 वर्ष = 1 संवत्सर=1 अब्द

*10 अब्द = 1 दशाब्द

*100 अब्द = शताब्द

*360 वर्ष = 1 दिव्य वर्ष अर्थात देवताओं का 1 वर्ष।

जब भी पंडितजी कोई संकल्प कराते हैं तो निम्नलिखित संस्कृत वाक्य सदियों से बोला जा रहा है। इसमें यदि कुछ परिवर्तन होता है तो वह बस देश, प्रदेश, संवत्सरे, मासे और तिथि का ही परिवर्तन होता रहता है। यह संस्कृत वाक्य यह दर्शाता है कि इस वक्त कितना समय बीत चुका है।

ॐ अस्य श्री विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्राह्मणां द्वितीये परार्धे श्वेत वाराह कल्पे वैवस्वतमन्वंतरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे कलिसंवते या युगाब्दे जम्बु द्वीपे, ब्रह्मावर्त देशे, भारत खंडे, मालवदेशे, अमुकसंवत्सरे, अयने, ऋतौ, मासे, पक्षे, तिथे, समये यथा जातके।

* 12,000 दिव्य वर्ष = एक महायुग (चारों युगों को मिलाकर एक महायुग)

सतयुग : 4000 देवता वर्ष (सत्रह लाख अट्ठाईस हजार मानव वर्ष)

त्रेतायुग : 3000 देवता वर्ष (बारह लाख छियानवे हजार मानव वर्ष)

द्वापरयुग : 2000 देवता वर्ष (आठ लाख चौसठ हजार मानव वर्ष)

कलियुग : 1000 देवता वर्ष (चार लाख ब्तीसहजतार मानव वर्ष)

* 71 महायुग = 1 मन्वंतर (लगभग 30,84,48,000 मानव वर्ष बाद प्रलय काल)

* चौदह मन्वंतर = एक कल्प।

* एक कल्प = ब्रह्मा का एक दिन। (ब्रह्मा का एक दिन बीतने के बाद महाप्रलय होती है और फिर इतनी ही लंबी रात्रि होती है)। इस दिन और रात्रि के आकलन से उनकी आयु 100 वर्ष होती है। उनकी आधी आयु निकल चुकी है और शेष में से यह प्रथम कल्प है।

* ब्रह्मा का वर्ष यानी 31 खरब 10 अरब 40 करोड़ वर्ष। ब्रह्मा की 100 वर्ष की आयु अथवा ब्रह्मांड की आयु- 31 नील 10 अरब 40 अरब वर्ष (31,10,40,00,00,00,000 वर्ष)

मन्वंतर की अवधि : विष्णु पुराण के अनुसार मन्वंतर की अवधि 71 चतुर्युगी के बराबर होती है। इसके अलावा कुछ अतिरिक्त वर्ष भी जोड़े जाते हैं। एक मन्वंतर = 71 चतुर्युगी = 8,52,000 दिव्य वर्ष = 30,67,20,000 मानव वर्ष।

मन्वंतर काल का मान : वैदिक ऋषियों के अनुसार वर्तमान सृष्टि पंच मंडल क्रम वाली है। चन्द्र मंडल, पृथ्वी मंडल, सूर्य मंडल, परमेष्ठी मंडल और स्वायम्भू मंडल। ये उत्तरोत्तर मंडल का चक्कर लगा रहे हैं।

सूर्य मंडल के परमेष्ठी मंडल (आकाश गंगा) के केंद्र का चक्र पूरा होने पर उसे मन्वंतर काल कहा गया। इसका माप है 30,67,20,000 (तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार वर्ष)। एक से दूसरे मन्वंतर के बीच 1 संध्यांश सतयुग के बराबर होता है अत: संध्यांश सहित मन्वंतर का माप हुआ 30 करोड़ 84 लाख 48 हजार वर्ष। आधुनिक मान के अनुसार सूर्य 25 से 27 करोड़ वर्ष में आकाश गंगा के केंद्र का चक्र पूरा करता है।

कल्प का मान : परमेष्ठी मंडल स्वायम्भू मंडल का परिभ्रमण कर रहा है यानी आकाशगंगा अपने से ऊपर वाली आकाशगंगा का चक्कर लगा रही है। इस काल को कल्प कहा गया यानी इसकी माप है 4 अरब 32 करोड़ वर्ष (4,32,00,00,000)। इसे ब्रह्मा का 1 दिन कहा गया। जितना बड़ा दिन, उतनी बड़ी रात अत: ब्रह्मा का अहोरात्र यानी 864 करोड़ वर्ष हुआ।

इस कल्प में 6 मन्वंतर अपनी संध्याओं समेत निकल चुके, अब 7वां मन्वंतर काल चल रहा है जिसे वैवस्वत: मनु की संतानों का काल माना जाता है। 27वां चतुर्युगी बीत चुका है। वर्तमान में यह 28वें चतुर्युगी का कृतयुग बीत चुका है और यह कलियुग चल रहा है। यह कलियुग ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध में श्वेतवराह नाम के कल्प में और वैवस्वत मनु के मन्वंतर में चल रहा है। इसका प्रथम चरण ही चल रहा है।

30 कल्प : श्वेत, नीललोहित, वामदेव, रथनतारा, रौरव, देवा, वृत, कंद्रप, साध्य, ईशान, तमाह, सारस्वत, उडान, गरूढ़, कुर्म, नरसिंह, समान, आग्नेय, सोम, मानव, तत्पुमन, वैकुंठ, लक्ष्मी, अघोर, वराह, वैराज, गौरी, महेश्वर, पितृ।

14 मन्वंतर : स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, (10) ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि तथा इन्द्रसावर्णि।

60 संवत्सर : संवत्सर को वर्ष कहते हैं: प्रत्येक वर्ष का अलग नाम होता है। कुल 60 वर्ष होते हैं तो एक चक्र पूरा हो जाता है। इनके नाम इस प्रकार हैं:-

प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृषप्रजा, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, अव्यय, सर्वजीत, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नंदन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्बी, विलम्बी, विकारी, शार्वरी, प्लव, शुभकृत, शोभकृत, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्ल्वंग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत, परिधावी, प्रमादी, आनंद, राक्षस, नल, पिंगल, काल, सिद्धार्थ, रौद्रि, दुर्मति, दुन्दुभी, रूधिरोद्गारी, रक्ताक्षी, क्रोधन और अक्षय।

ज्योतिर्विदाभरण में अनुसार कलियुग में 6 व्यक्तियों ने संवत चलाए। यथा- युधिष्ठर, विक्रम, शालिवाहन, विजयाभिनन्दन, नागार्जुन, कल्की। इससे पहले सप्तऋषियों ने संवत चलाए थे जिनके आधार पर ही बाद के लोगों ने अपडेट किया। इसमें से सबसे ज्यादा सही विक्रम है। कालगणना में क्रमश: प्रहर, दिन-रात, पक्ष, अयन, संवत्सर, दिव्यवर्ष, मन्वन्तर, युग, कल्प और ब्रह्मा की गणना की जाती है।

चक्रीय अवधारणा के अतर्गत ही हिन्दुओं ने काल को कल्प, मन्वंतर, युग (सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) आदि में विभाजित किया जिनका अविर्भाव बार-बार होता है, जो जाकर पुन: लौटते हैं। चक्रीय का अर्थ सिर्फ इतना ही है कि सूर्य उदय और अस्त होता है और फिर से वह उदय होता है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि समय भी चक्रीय है। सिर्फ घटनाक्रम चक्रीय है। इसकी पुनरावृत्ति होती रहती है लेकिन पुनरावृत्ति में भी वह पहले जैसी नहीं होती है।

चक्रीय काल-अवधारणा के अंतर्गत आज ब्रह्मा की आयु के दूसरे खंड में, श्वेतावाराह कल्प में, वैवस्वत मन्वंर में अट्ठाईसवां कलियुग चल रहा है। इस कलियुग की समाप्ति के पश्चात

चक्रीय नियम में पुन: सतयुग आएगा। हिन्दू कालगणना के अनुसार धरती पर जीवन की शुरुआत आज से लगभग 200 करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 1 - 10.30 ।।

।। काल गणना - वैदिक शास्त्र ।। विशेष - 2, गीता 10.30 ।।

प्राचीन हिन्दू धार्मिक और पौराणिक वर्णित समय चक्र आश्चर्यजनक रूप से एक समान हैं। प्राचीन भारतीय मापन पद्धतियां मुख्यतः मूल सनातन हिन्दू धर्म के धार्मिक उद्देश्यों में, अभी भी प्रयोग में हैं ।

इस के साथ साथ ही हिन्दू वैदिक ग्रन्थों में लम्बाई- क्षेत्र- भार मापन की भी इकाइयाँ परिमाण सहित उल्लेखित हैं। यह सभी योग में भी प्रयोग में हैं।

हिन्दू समय चक्र सूर्य सिद्धांत के पहले अध्याय के श्लोक 11- 23 में आते हैं।

(11) वह जो कि श्वास (प्राण) से आरम्भ होता है, यथार्थ कहलाता है; और वह जो त्रुटि से आरम्भ होता है, अवास्तविक कहलाता है। छः श्वास से एक विनाड़ी बनती है। साठ श्वासों से एक नाड़ी बनती है।

(12) और साठ नाड़ियों से एक दिवस (दिन और रात्रि) बनते हैं। तीस दिवसों से एक मास (महीना) बनता है। एक नागरिक (सावन) मास सूर्योदयों की संख्याओं के बराबर होता है।

(13) एक चंद्र मास, उतनी चंद्र तिथियों से बनता है। एक सौर मास सूर्य के राशि में प्रवेश से निश्चित होता है। बारह मास एक वर्ष बनाते हैं। एक वर्ष को देवताओं का एक दिवस कहते हैं।

(14) देवताओं और दैत्यों के दिन और रात्रि पारस्परिक उलटे होते हैं। उनके छः गुणा साठ देवताओं के (दिव्य) वर्ष होते हैं। ऐसे ही दैत्यों के भी होते हैं।

(15) बारह सहस्र (हज़ार) दिव्य वर्षों को एक चतुर्युग कहते हैं। यह तैंतालीस लाख बीस हज़ार सौर वर्षों का होता है।

(16) चतुर्युगी की उषा और संध्या काल होते हैं। कृतयुग या सतयुग और अन्य युगों का अन्तर, जैसे मापा जाता है, वह इस प्रकार है, जो कि चरणों में होता है:

(17) एक चतुर्युगी का दशांश को क्रमशः चार, तीन, दो और एक से गुणा करने पर कृतयुग और अन्य युगों की अवधि मिलती है। इन सभी का छठा भाग इनकी उषा और संध्या होता है।

(18) इकहत्तर चतुर्युगी एक मन्वन्तर या एक मनु की आयु होती हैं। इसके अन्त पर संध्या होती है, जिसकी अवधि एक सतयुग के बराबर होती है और यह प्रलय होती है।

(19) एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं, अपनी संध्याओं के साथ; प्रत्येक कल्प के आरम्भ में पंद्रहवीं संध्या/उषा होती है। यह भी सतयुग के बराबर ही होती है।

(20) एक कल्प में, एक हज़ार चतुर्युगी होते हैं और फ़िर एक प्रलय होती है। यह ब्रह्मा का एक दिन होता है। इसके बाद इतनी ही लम्बी रात्रि भी होती है।

(21) इस दिन और रात्रि के आकलन से उनकी आयु एक सौ वर्ष होती है; उनकी आधी आयु निकल चुकी है और शेष में से यह प्रथम कल्प है।

(22) इस कल्प में, छः मनु अपनी संध्याओं समेत निकल चुके, अब सातवें मनु (वैवस्वत: विवस्वान (सूर्य) के पुत्र) की सत्ताईसवीं चतुर्युगी बीत चुकी है।

(23) वर्तमान में, अट्ठाईसवीं चतुर्युगी का द्वापर युग बीत चुका है तथा भगवान कृष्ण के अवतार समाप्ति से ५१२३वाँ वर्ष (ईस्वी सन् २०२१ में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से) प्रगतिशील है। कलियुग की कुल अवधि ४,३२,००० वर्ष है।

नक्षत्रीय मापन

एक परमाणु मानवीय चक्षु के पलक झपकने का समय = लगभग ४ सैकिण्ड

एक विघटि = ६ परमाणु = २४ सैकिण्ड

एक घटि या घड़ी = ६० विघटि = २४ मिनट

एक मुहूर्त = २ घड़ियां = ४८ मिनट

एक नक्षत्र अहोरात्रम या नाक्षत्रीय दिवस = ३० मुहूर्त (दिवस का आरम्भ सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक, न कि अर्धरात्रि से)

शतपथ ब्राह्मण के आधार पर वैदिक कालमानम् -शतपथ.१२|३|२|५ इस प्रकार है

द्वयोः (२) त्रुट्योः- एकः (१) लवः|

द्वयोः (२) लवयोः- एकः (१) निमेषः |

पंचशानाम् (१५) निमेषाणाम् एकम् (१) इदानि (कष्ठा) |

पंचदशानाम् (१५) इदानिनाम् एकम् (१) एतर्हि |

पंचदशानाम् (१५) एतर्हिणाम् एकम (१) क्षिप्रम् |

पंचदशानाम् (१५) क्षिप्राणां एकः (१) मुहूर्तः|

त्रिंशतः (३०) मुहूर्तानाम् एकः(१) मानुषोऽहोरात्रः |

पंचदशानाम् (१५) अहोरात्राणाम् (१) अर्धःमासः |

त्रिंशतः (३०) अहोरात्राणाम् एकः (१) मासः |

द्वादशानाम् (१२) मासानाम् एकः (१) संवत्सरः |

पंचानाम् (५) संवत्सराणाम् एकम् (१) युगम् |

द्वादशानाम् (१२) युगानाम् एकः (१) युगसंघः भवति |

वैष्णवं प्रथमं तत्र बार्हस्पत्यं ततः परम् |ऐन्द्रमाग्नेयंचत्वाष्ट्रं आहिर्बुध्न्यं पित्र्यकम्||वैश्वदेवं सौम्यंचऐन्द्राग्नं चाऽऽश्विनं तथा|भाग्यं चेति द्वादशैवयुगानिकथितानि हि||

एके युगसंघे चान्द्राः षष्टिः संवत्सराः भवन्ति|

समय का मापन प्रारम्भ एक सूर्योदयसे और अहोरात्र का मापन का समापन अपर सूर्योदय से होता है |अर्धरात्री से नहीं होता है| जैसा कि कहा है-

सूर्योदयप्रमाणेन अहःप्रामाणिको भवेत्।अर्धरात्रप्रमाणेन प्रपश्यन्तीतरे जनाः ॥

विष्णु पुराण में दी गई एक अन्य वैकल्पिक पद्धति समय मापन पद्धति अनुभाग, विष्णु पुराण, भाग-१, अध्याय तृतीय निम्न है:

१० पलक झपकने का समय = १ काष्ठा

३५ काष्ठा= १ कला

२० कला= १ मुहूर्त

१० मुहूर्त= १ दिवस (२४ घंटे)

३० दिवस= १ मास

६ मास= १ अयन

२ अयन= १ वर्ष, = १ दिव्य दिवस

छोटी वैदिक समय इकाइयाँ

एक तृसरेणु = 6 ब्रह्माण्डीय '.

एक त्रुटि = 3 तृसरेणु, या सैकिण्ड का 1/1687.5 भाग

एक वेध =100 त्रुटि.

एक लावा = 3 वेध.

एक निमेष = 3 लावा, या पलक झपकना

एक क्षण = 3 निमेष.

एक काष्ठा = 5 क्षण, = 8 सैकिण्ड

एक लघु =15 काष्ठा, = 2 मिनट.

15 लघु = एक नाड़ी, जिसे दण्ड भी कहते हैं। इसका मान उस समय के बराबर होता है, जिसमें कि छः पल भार के (चौदह आउन्स) के ताम्र पात्र से जल पूर्ण रूप से निकल जाये, जबकि उस पात्र में चार मासे की चार अंगुल लम्बी सूईं से छिद्र किया गया हो। ऐसा पात्र समय आकलन हेतु बनाया जाता है।

2 दण्ड = एक मुहूर्त.

6 या 7 मुहूर्त = एक याम, या एक चौथाई दिन या रात्रि.[2]

4 याम या प्रहर = एक दिन या रात्रि।

चाँद्र मापन

एक तिथि वह समय होता है, जिसमें सूर्य और चंद्र के बीच का देशांतरीय कोण बारह अंश बढ़ जाता है। तिथि सिद्धान्त का खण्डतिथि और अखण्डतिथि के हिसाब से दो भेद है। वेदांगज्योतिष के अनुसार अखण्ड तिथि माना जाता है। जिस दिन चान्द्रकला क्षीण हो जाता है उस दिन को अमावास्या माना जाता है। दुसरे दिन सूर्योदय होते ही शुक्लप्रतिपदा, तीसरे दिन सूर्योदय होते ही द्वितीया। इसी क्रम से १५ दिन में पूर्णिमा होती है। फिर दुसरे दिन सूर्योदय होते ही कृष्णप्रतिपदा। और फिर तीसरे दिन सूर्योदय होते ही द्वितीया,और इसी क्रम से तृतीया चतुर्थी आदि होते है। १४ वें दिन में ही चन्द्रकला क्षीण हो तो उसी दिन कृष्णचतुर्दशी टूटा हुआ मानकर दर्शश्राद्धादि कृत्य किया जाता है। ऐसा न होकर १५ वें दिन में ही चन्द्रकला क्षीण हो तो तिथियाँ टूटे बिना ही पक्ष समाप्त होता है | इस कारण कभी २९ दिन का और कभी ३० दिन का चान्द्रमास माना जाता है। वेदांगज्योतिष भिन्न सूर्यसिद्धान्तादि लौकिक ज्योतिष का आधार में खण्डतिथि माना जाता है। उनके मत मे तिथियाँ दिन में किसी भी समय आरम्भ हो सकती हैं और इनकी अवधि उन्नीस दिन से अधिक छब्बीस घंटे तक हो सकती है।

एक पक्ष या पखवाड़ा = पंद्रह तिथियाँ

चान्द्रमास दो प्रकारका होता है -एक अमान्त और पूर्णिमान्त। पहला शुक्लप्रतिपदा से अमावास्या तक अर्थात् शुक्लादिकृष्णान्त मास वेदांग ज्योतिष मानता है। इसके अलावा सूर्यसिद्धान्तादि लौकिक ज्योतिष के पक्षधर दूसरा पक्ष मानते हैं पूर्णिमान्त। अर्थात् कृष्णप्रतिपदा से आरम्भ कर पूर्णिमा तक एक मास।

एक मास = २ पक्ष (पूर्णिमा से अमावस्या तक कृष्ण पक्ष; और अमावस्या से पूर्णिमा तक शुक्ल पक्ष)

एक ऋतु = २ मास

एक अयन = 3 ऋतुएं

एक वर्ष = 2 अयनका होता है |

चार युग

2 अयन (छः मास अवधि, ऊपर देखें) = 360 मानव वर्ष = एक दिव्य वर्ष

4,000 + 400 + 400 = 4,800 दिव्य वर्ष = 1 सत युग

4 चरण (1,728,000 सौर वर्ष) सत युग

3,000 + 300 + 300 = 3,600 दिव्य वर्ष = 1 त्रेता युग

3 चरण (1,296,000 सौर वर्ष)

त्रेता युग

2,000 + 200 + 200 = 2,400 दिव्य वर्ष = 1 द्वापर युग

2 चरण (864,000 सौर वर्ष)

द्वापर युग

1,000 + 100 + 100 = 1,200 दिव्य वर्ष = 1 कलि युग

1 चरण (432,000 सौर वर्ष)

कलि युग

12,000 दिव्य वर्ष = 4 युग = 1 महायुग (दिव्य युग भी कहते हैं)

ब्रह्मा की काल गणना

1000 महायुग= 1 कल्प = ब्रह्मा का 1 दिवस (केवल दिन) (चार अरब बत्तीस करोड़ मानव वर्ष; और यही सूर्य की खगोलीय वैज्ञानिक आयु भी है).

(दो कल्प ब्रह्मा के एक दिन और रात बनाते हैं)

30 ब्रह्मा के दिन = 1 ब्रह्मा का मास (दो खरब 59 अरब 20 करोड़ मानव वर्ष)

12 ब्रह्मा के मास = 1 ब्रह्मा के वर्ष (31 खरब 10 अरब 4 करोड़ मानव वर्ष)

50 ब्रह्मा के वर्ष = 1 परार्ध

2 परार्ध= 100 ब्रह्मा के वर्ष= 1 महाकल्प (ब्रह्मा का जीवन काल)(31 शंख 10 खरब 40 अरब मानव वर्ष)

ब्रह्मा का एक दिवस 10,000 भागों में बंटा होता है, जिसे चरण कहते हैं:

यह चक्र ऐसे दोहराता रहता है, कि ब्रह्मा के एक दिवस में 1000 महायुग हो जाते हैं

एक उपरोक्त युगों का चक्र = एक महायुग (43 लाख 20 हजार सौर वर्ष)

श्रीमद्भग्वदगीता के अनुसार "सहस्र-युग अहर-यद ब्रह्मणो विदुः", अर्थात ब्रह्मा का एक दिवस = 1000 महायुग. इसके अनुसार ब्रह्मा का एक दिवस = 4 अरब 32 करोड़ सौर वर्ष. इसी प्रकार इतनी ही अवधि ब्रह्मा की रात्रि की भी है.

एक मन्वन्तर में 71 महायुग (306,720,000 सौर वर्ष) होते हैं. प्रत्येक मन्वन्तर के शासक एक मनु होते हैं.

प्रत्येक मन्वन्तर के बाद, एक संधि-काल होता है, जो कि कृतयुग के बराबर का होता है (1,728,000 = 4 चरण) (इस संधि-काल में प्रलय होने से पूर्ण पृथ्वी जलमग्न हो जाती है.)

एक कल्प में 864,000,0000 - ८ अरब ६४ करोड़ सौर वर्ष होते हैं, जिसे आदि संधि कहते हैं, जिसके बाद 14 मन्वन्तर और संधि काल आते हैं

ब्रह्मा का एक दिन बराबर है:

(14 गुणा 71 महायुग) + (15 x 4 चरण)= 994 महायुग + (60 चरण)= 994 महायुग + (6 x 10) चरण= 994 महायुग + 6 महायुग= 1,000 महायुग

पाल्या

'पाल्या' समय की एक इकाई है. यह इकाई, भेड़ की ऊन का एक योजन ऊंचा घन (यदि प्रत्येक सूत्र एक शताब्दी में चढ़ाया गया हो) बनाने में लगे समय के बराबर है। दूसरी परिभाषा अनुसार, यह एक छोटी चिड़िया (यदि वह प्रत्येक रेशे को प्रति सौ वर्ष में उठाती है) द्वारा किसी एक वर्गमील के सूक्ष्म रेशों से भरे कुएं को रिक्त करने में लगे समय के बराबर है.यह इकाई भगवान आदिनाथ के अवतरण के समय की है। यथार्थ में यह 100,000,000,000,000 पाल्य पहले था।

हम वर्तमान में वर्तमान ब्रह्मा के इक्यावनवें वर्ष में सातवें मनु, वैवस्वत मनु के शासन में श्वेतवाराह कल्प के द्वितीय परार्ध में, अठ्ठाईसवें कलियुग के प्रथम वर्ष के प्रथम दिवस में विक्रम संवत 2078 में हैं। इस प्रकार अबतक १५ नील, ५५ खरब, २१ अरब, ९७ करोड़, १९ लाख, ६१ हज़ार, ६२5 वर्ष इस ब्रह्मा को सृजित हुए हो गये हैं।

ग्रेगोरियन कैलेण्डर के अनुसार वर्तमान कलियुग दिनाँक 17 फरवरी / 18 फरवरी को 3102 ई० पू० में हुआ था। इस बात को वेदांग ज्योतिष के व्यख्याकार नहीं मानते। उनका कहना है कि यह समय महाभारत के युद्ध का है । इसके ३६ साल बाद यदुवंश का विनाश हुआ और उसी दिन से वास्तविक कलियुग प्रारम्भ हुुआ। इस गणित से आज वि॰ सं॰ २०७३।४।१५ दिनांक को कलिसंवत् ५०८१।८वें मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी तिथि चल रही है |

ब्रह्मा जी के एक दिन में १४ इन्द्र मर जाते हैं और इनकी जगह नए देवता इन्द्र का स्थान लेते हैं।

इतनी ही बड़ी ब्रह्मा की रात्रि होती है। दिन की इस गणना के आधार पर ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष होती है फिर ब्रह्मा मर जाते है और दूसरा देवता ब्रह्मा का स्थान ग्रहण करते हैं। ब्रह्मा की आयु के बराबर विष्णु का एक दिन होता है। इस आधार पर विष्णु जी की आयु १०० वर्ष है। विष्णु जी १०० वर्ष का शंकर जी का एक दिन होता है। इस दिन और रात के अनुसार शंकर जी की आयु १०० वर्ष होती है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 2 - 10.30 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.31॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥

"pavanaḥ pavatām asmi,
rāmaḥ śastra-bhṛtām aham..।
jhaṣāṇāṁ makaraś cāsmi,
srotasām asmi jāhnavī"..।।

भावार्थ:

मैं समस्त पवित्र करने वालों में वायु हूँ, मैं सभी शस्त्र धारण करने वालों में राम हूँ, मैं सभी मछलियों में मगर हूँ, और मैं ही समस्त नदियों में गंगा हूँ। (३१)

Meaning:

Among the purifiers I am the wind and among the weapon wielders I am Raama. Among the sea creatures I am the crocodile and among the rivers I am Ganga.

Explanation:

Shri Krishna begins this shloka with the topic of purification. He says that wind is the foremost expression of Ishvara among all of the purifiers in the world.

In nature, wind performs the work of purification very effectively. It converts impure water into water vapor; it carries away the dirty smells of the earth; it makes fire burn by fuelling it with oxygen. It is thus the great purifier of nature. We know this from experience. Deep inhalation and exhalation remove several toxins from the body. If a room has been locked in a long time, the first thing we do is to open the window.

Lord Raama is also known as “Kodanda Paani”, the wielder of weapons. Among all of the weapon wielders in the world, Lord Raama is the foremost. This is because although he was adept at wielding several types of weapons, he only used them as a last resort when no other methods of diplomacy worked. In the Raamayana, we can see numerous instances when he killed Rakshasaas after they did not heed his warning.

we have to use four upāyās; sāma, dhāna, bhēda and dhanda; sāma, dhāna bhēda are non-violent methods of protecting dharma; and we should attempt initially to protect dharma by non-violent method only and if non-violent methods fail; ultimately we will have to use violent method and violence for

dharma rakṣṇam is not wrong. Not only it is not wrong; it is right; and not only it is right, but that alone is also right.

For Kṣatriya, dharma yuddham is a duty. Dharma yuddham produces puṇyam; and if a person takes to dharma yuddha; he will attain only veera svarga and never pāpam and naragam. And not only Krishna advised Arjuna to take to dharmayuddha; all our gods wield weapons only for the sake of dharma rakṣanam.

Therefore, Lord should wield weapon to destroy the external enemy as well as the internal enemy. And all Gods are great; but here Krishna says among the weapon wielders, I am Rāmaḥ; Rāma is the greatest God among śastrabhṛt; And Rāma has got what bow, I told you, Khōdandapāṇi; So Sastrabhr̥tām Rāmaḥ aham.

Now, just like we saw power and majesty in the Lion, we see power and majesty in the giant whale and the crocodile. “Makara” refers either to crocodile or the giant whale. Both of these are powerful sea creatures. Shri Krishna says that among the sea creatures, Ishvara’s foremost expression is the Makara.

Among the rivers, Ishvara is Jaahnavi or Ganga. Jaahnavi refers to the daughter of sage Jahnu. It is said that the Ganga’s turbulent waters disturbed the meditation of sage Jahnu. Angered, he drank her, and only released her when the gods prayed to him. Furthermore, knowledge, just like the river Ganga, flows from a higher plane to a lower plane, and is perennial. Also, knowledge purifies, just like a river purifies.

The Ganges is a holy river that has its beginning from the divine feet of the Lord. It descended on earth from the celestial abodes. Many great sages have performed austerities on its banks, adding to the holiness of its waters. Unlike normal water, if water from the Ganges is gathered in a vessel, it does not putrefy for years. This phenomenon was very pronounced earlier

but has reduced in intensity in modern times because of the millions of gallons of pollutants being poured into the Ganges.

So, whenever we feel the wind, when we see weapons used justly, when we behold the giant whale or the mighty river, we should know that all these are Ishvara's manifestations.

।। हिंदी समीक्षा ।।

मैं पवित्र कर्त्ताओं में वायु हूँ किसी स्थान की स्वच्छता के लिए सूर्य और वायु के समान प्रभावशाली अन्य कोई स्वास्थयकर और अपूतिक (घाव को सड़ने से रोकने वाली औषधि) साधऩ उपलब्ध नहीं है। यदि यहाँ केवल वायु का ही उल्लेख किया गया है, तो उस का कारण यह है कि महर्षि व्यास जानते थे कि सूर्य की उष्णता में ही वायु की गति हो सकती है। जहाँ सदा वायु बहती है, वहाँ सूर्य का होना भी सिद्ध होता है। किसी गुफा में न सूर्य का प्रकाश होता है और न वायु का स्पन्दन। यहां बहती पवन को परमात्मा अपनी विभूति कहते है क्योंकि पवित्र बहती पवन मन, आत्मा एवम प्रकृति को न केवल सौंदर्य प्रदान करती है, वरन जीवन को भी संचालित करती है।

भारतीय अनुभूति में सृष्टि पांच महाभूतों (तत्वों) से बनी है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच महाभूत हैं। इनमें 'वायु' को प्रत्यक्ष देव कहा गया है। वायु प्रत्यक्ष देव हैं और प्रत्यक्ष ब्रह्म भी। विश्व के प्राचीनतम ज्ञानकोष 'ऋग्वेद' में स्तुति है '**नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रहमासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि।' 'तन्मामवतु'** -वायु को नमस्कार है, आप प्रत्यक्ष ब्रह्म है, मैं तुमको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा। आप हमारी रक्षा करें। 'ऋग्वेद' का यही मन्त्र 'यजुर्वेद' , 'अथर्ववेद', व 'तैत्तिरीय उपनिषद्' में भी जस का तस आया है। सभी जीवों में प्राण की सत्ता है, प्राण नहीं तो जीवन नहीं। प्राण वस्तुतः वायु है। प्राण वायु को आत्मतत्व भी माना गया है।

वैदिक पूर्वज वायु को देवता जानते हैं, उसे बहुवचन 'मरूद्गण' कहते हैं। वायु प्राण है, अन्न भी प्राण है। अन्न का प्राण वर्षा है। वायुदेव/मरूतगण वर्षा लाते हैं। 'ऋग्वेद' में मरूतों की ढेर सारी स्तुतियां हैं। ऋषियों का भाव बोध गहरा है। वायु प्राण है, वायु जगत् का स्पंदन है। ऋषियों की दृष्टि मेंे वे देवता हैं इसीलिए वायु का प्रदूषण नहीं करना चाहिए। वे जीवन है, जीवन दाता भी हैं। वायु से वर्षा है, वायु से वाणी है। कण्ठ और तालु में वायु संचार की

विशेष आवृत्ति ही मन्त्र है। गीत-संगीत के प्रवाह का माध्यम वायु हैं। गंध-सुगंध और मानुष गंध के संचरण का उपकरण भी वायु देव हैं। वायु नमस्कारों के योग्य हैं।

शरीर और प्राण-वायु का संयोग जीवन है, दोनो का वियोग मृत्यु है। वाग्भट्ट ने ठीक कहा है वह विश्वकर्मा, विश्वात्मा, विश्वरूप प्रजापति है। वह सृष्टा, धाता, विभु, विष्णु और संहारक मृत्यु है। 'चरक संहिता' में कहते हैं वह भगवान (परम ऐश्वर्यशाली) स्वयं अव्यय हैं, प्राणियों की उत्पत्ति व विनाश के कारण है, सुख और दुख के भी कारण हैं, सभी छोटे बड़े पदार्थो को लांघने वाले हैं, सर्वत्र उपस्थित हैं। यहां आगे शरीर के भिन्न अंगों में प्रवाहित 5 वायु का वर्णन है। फिर इनसे जुड़े रोगों का विस्तार से विवेचन है। भारतीय मनीषा से वायु को समग्रता में देखा और प्रतीकों में गाया। परम बलशाली हनुमान पवनपुत्र हैं। लंकादहन में यों ही 49 पवन नहीं चले थे। बेशक भारतीय ग्रन्थों में काव्य का प्रवाह है लेकिन कौन इंकार करेगा कि वायु का प्रदूषण हजारों रोगों की जड़ है। प्राणवायु के लिए ही लोग सुबह-सुबह टहलने निकलते हैं, जहां वायु सघन है, वहां के जीवन में नृत्य है। जंगलों में वायु सघन है। भारत का अधिकांश प्राचीन ज्ञान वनों/अरण्यों में ही पैदा हुआ था।

वायु देव के अध्ययन और उपासना पर भी हमारे पूर्वजों ने बड़ा परिश्रम किया था। अध्ययन चिन्तन की भारतीय दृष्टि में वायु प्रकृति की शक्ति है। उन्होंने वायु का अध्ययन एक पदार्थ की तरह किया है। भारतीय दृष्टि में वे सृष्टि निर्माण के पांच महाभूतों से एक महाभूत हैं, उनका अध्ययन जरूरी है लेकिन दिव्य शक्ति की तरह उनको प्रणाम भी किया जाना चाहिए। 'ऋग्वेद' के ऋषि मरूद्गणों का जन्म, स्वभाव वर्षा लाने का उनका काम ठीक से जाना चाहते हैं लेकिन नमस्कारों के साथ। यूरोपीय विद्वान सूर्य का भी अध्ययन कर रहे हैं, भारतीय ऋषि सूर्य का अध्ययन उनसे ज्यादा कर चुके हैं। सूर्य यहां देवता हैं, तेजोमय सविता हैं, सो तत्सवितुर्वरेण्य है। 'चरक संहिता', 'आयुर्विज्ञान' का आदरणीय महाग्रन्थ है। इसके 28वें अध्याय (श्लोक 3) में आत्रेय ने बताया है - 'वायुरायुर्बलं वायुर्वायु र्धाता शरीरिणाम'। वायु ही आयु है। वायु ही बल है, शरीर को धारण करने वाले भी वायु ही हैं। कहते हैं यह संसार वायु है, उसे सबका नियन्ता गाते है - 'वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुवायुश्च कीर्तितः।' यहां 'कीर्तितः' शब्द ध्यान देने योग्य है। अर्थात् वायु को सर्वशक्तिमान बताने की परम्परा पुरानी है, पहले से ही गायी जा रही है।

पंच महाभूत में वायु तत्व को पवित्र करने वाला कहने का उद्देश्य यही है, समस्त सृष्टि में वायु से प्रदूषण का हरण होता है। वायु प्रत्येक जीव का प्राण है जो उस मे पाचन, ऊर्जा,

एवम क्रियाशीलता का संचालन करती है, अग्नि पवन से सहयोग से जलती है, वर्षा का जीवनचक्र, वनस्पति, नदिया और प्रकृति के सौंदर्य सभी का श्रेय वायु के बहते स्वरूप में है। पृथ्वी का वायुमंडल पृथ्वी की अंतरिक्ष से होने वाले उल्कापिंडों से रक्षा भी करता है। **इसलिये वायु की पवित्रता को भगवान अपनी विभूति कहते है।**

मैं शस्त्रधारियों में राम हूँ भारत के आदि कवि महर्षि बाल्मीकि ने एक सम्पूर्ण काव्य की छन्दबद्ध रचना के लिए रामायण के नायक मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र का चित्रण किया है। यह चित्रण अत्यन्त विस्तृत एवं विशुद्ध है, जिसमें श्री राम को जीवन के समस्त क्षेत्रों में एक पूर्ण पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। श्रीराम एक पूर्ण एवं आदर्श पुत्र, पति, भ्राता, मित्र, योद्धा, गुरु, शासक और पिता थे। सामान्य जनता के दोषों तथा अत्यन्त उत्तेजना और भ्रम उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में श्रीराम की सार्वपाक्षिक पूर्णता और भी अधिक चमक उठती है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ आदर्श पुरुष के हाथ में ही वह योग्यता है, जो उस धनुष को धारण करे, जिसमें से सदैव अमोघ बाणों की ही वर्षा होती है। राक्षसों का वध करने वाले, मर्यादा पुरुषोत्तम राम की महिमा का वर्णन करना यहां उचित नही, क्योंकि उन्हें ऐसा कौन है जो नहीं जानता। भगवान राम ने शस्त्रों का प्रयोग साधु-सज्जन और सामान्य जन के रक्षार्थ एवम शत्रु पर भी बिना किसी वैरभाव और बिना किसी अभिमान के आत्मविश्वास के साथ किया, इसलिये बल और शक्ति जो किसी की रक्षा एवम कल्याण के हेतु उठे, वह शस्त्रधारी राम को परब्रह्म अपनी विभूति कहते है।

परमात्मा का मानवीय रूप में भगवान विष्णु के सातवें अवतार में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अवतार है, जिन्होंने मर्यादा का पाठ पढ़ाते हुए, अन्याय एवम अत्याचार का सामना किया और उसे समाप्त भी किया। राम के चरित्र और साहस यहां तक था कि उन्होंने अत्यंत बलशाली रावण का सामना वानर और भालू की सेना ले कर किया। ऐसे शस्त्रधारी राम का सामना करने लायक कोई भी योद्धा उस युग मे नही था। उन के द्वारा मर्यादा का पालन और दी हुई शिक्षा के कारण, आज भी जो जन मानस के आराध्य है, उन को अपनी विभूति बताने का एक ही अर्थ है, कि भगवान श्री कृष्ण भी परमात्मा का ही स्वरुप है। वह विभूति राम के रूप में 12 कलाओ के साथ भी प्रकट होती है और 16 कलाओ के साथ कृष्ण के रूप में भी प्रकट होती है। भगवान राम को अपनी विभूति बता कर अपने अवतार की भी पुष्टि कर दी गयी है।

धर्म की रक्षा करना प्रत्येक क्षत्रिय का कर्तव्य धर्म है। धर्म की रक्षा के लिए साम, दाम, दंड और भेद यह चार कूट नीति में कर्म करने को होते है। भगवान राम ने शस्त्रों को धारण कर के इसी नीति में धर्म की रक्षा हेतु रावण से युद्ध किया और साम से शुरू कर के दंड तक कार्य किया। युद्ध भूमि में अर्जुन के समक्ष दुर्योधन को भी इसी नीति से कार्य करते हुए, जब दंड की बारी आई तो अर्जुन द्वारा निराशा का कोई औचित्य नहीं है। उसे भी शस्त्र धारी राम के अनुसार की व्यवहार करना होगा।

आज के संदर्भ में सनातन धर्म की रक्षा के लिए और आत्म रक्षा के लिए यह संदेश गीता द्वारा प्रत्येक सनातन धर्म के लोग को समझना चाहिए, कि कैसे राम के आदर्श पर चल कर धर्म की रक्षा करे।

हिंदू पौराणिक कथाओं, के अनुसार मकर, एक मिथकीय प्राणी है और देवी गंगा और वरुण का वाहन है। यह प्रेम और वासना के हिन्दू देवता कामदेव का प्रतीक चिह्न भी है और उनके ध्वज जिसे कर्कध्वज कहा जाता है पर चित्रित है।

अपने वाहन मकर पर सवार माता गंगा परंपरागत रूप से मकर को एक जलीय प्राणी माना जाता है और कुछ पारंपरिक कथाओं में इसे मगरमच्छ से जोड़ा गया है, जबकि कुछ अन्य कथाओं में इसे एक सूंस (डॉल्फिन) माना गया है। कुछ स्थानों पर इसका चित्रण एक ऐसे जीव के रूप में किया गया है जिसका शरीर तो मीन का है किंतु सिर एक गज का. पारंपरिक रूप से मकर जल से संबंधित जीव है, वह जल जो अस्तित्व और प्रजनन का स्रोत है। ज्योतिष में, मकर, बारह राशियों में से एक है।

मैं मत्स्यों में मकर हूं, भगवान ने जलचर में मकर को अपनी विभूति बताया क्योंकि जलचर में मकर किसी भी प्राणी से ज्यादा ताकतवर है। एक पुरानी कहावत भी है कि जल में रह कर मकर से वैर नही किया जाता, अर्थात सामान्य रूप जल में मकर जल के प्राणियों में इतना शक्तिशाली माना गया है कि उसे हम जल के प्राणियों का राजा भी कह सकते है। मकर वरुणदेव, गंगा एवम नर्मदा के वाहन भी है। इसलिये अपने क्षेत्र में शक्तिशाली होने से भगवान से मकर यानि मगर को अपनी विभूति कहा है।

नदियों में जाह्नवी हूँ जह्नु ऋषि की पुत्री जाह्नवी कहलाती है, जो गंगानदी का एक नाम हैं। आख्यायिका यह है कि एक बार जह्नु ऋषि ने सम्पूर्ण गंगा नदी का पान कर उसे सुखा दिया और तत्पश्चात्, लोककल्याण के लिए उसे अपने कानों के द्वार से बाहर बहा दिया हम पहले भी देख चुके हैं कि गंगा नदी का यह रूप सांकेतिक है। हिन्दू लोग गंगा को अध्यात्म

ज्ञान अथवा भारत की आध्यात्मिक संस्कृति का प्रतीक मानते हैं। अपने गुरु से प्राप्त ऋषियों की ज्ञान सम्पदा को, साधक शिष्य ध्यानाभ्यास के द्वारा आत्मसात् कर लेता है यही नदी का आचमन है। ज्ञान के झरने से पान कर ज्ञानपिपासा को शान्त करना आदि वाक्यों का प्रयोग प्राय सभी भाषाओं में होता है, जिनका मूल संस्कृत भाषा है। आख्यायिका में कहा गया है कि इस नदी का उद्गम ऋषि के कानों से हुआ। वास्तव में, यह अत्यन्त सुन्दर काव्यात्मक कल्पना है, जो कान का संबंध श्रुति से स्थापित करती है। उपनिषद् ही श्रुति हैं, जिस में गुरु शिष्य के संवाद द्वारा आत्मज्ञान का बोध कराया गया है। भारत में, समय समय पर आचार्यों का अवतरण होता है, जो अपने युग के सन्दर्भ से प्राचीन ज्ञान की पुर्नव्यवस्था करते हैं परन्तु यह प्रचार कार्य वे तभी प्रारम्भ करते हैं, जब उन्होंने स्वयं वैदिक सत्य का साक्षात् अनुभव कर लिया हो। इस स्वानुभूति के बिना कोई भी श्रेष्ठ आचार्य जगत् में आकर इस प्राचीन सत्य का नवीन भाषा में प्रचार करने का साहस नहीं करेगा। गंगा के अनेक पर्यायवाची नामों में से जाह्नवी का यहाँ उल्लेख उपर्युक्त विशेष अभिप्राय को दर्शाने के लिए ही किया गया है।

कहा जाता है कि गंगा सप्तमी पर मोक्षदायिनी मां गंगा में डुबकी लगाने से दस पापों का हरण होता है। गंगा सप्तमी के दिन गंगा पूजन एवं स्नान से यश-सम्मान की प्राप्ति होती है। मां गंगा तीनों लोक देवलोक, मृत्युलोक और पाताल लोक को अपने पवित्र जल से तृप्त करती हैं। स्वर्ग में मां गंगा को मंदाकिनी और पाताल में भागीरथी कहते हैं। नदियों के पवित्र नदी जो सब प्राणियों का कल्याण कर उन्हें पाप मुक्त करने के लिये स्वर्ग से धरती पर अवतरित हुई है, वो गंगा में मैं ही हूँ।

परमात्मा अपनी विभूति में सौम्यता, पवित्रता, वेग, गति बल को महत्व देते हुए इन सब को अपना स्वरूप बताया।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.31।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.32॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्॥

"sargāṇām ādir antaś ca,
madhyaṁ caivāham arjuna..।

adhyātma-vidyā vidyānāṁ,
vādaḥ pravadatām aham"..।।

भावार्थ:

हे अर्जुन! मैं ही समस्त सृष्टियों का आदि, मध्य और अंत हूँ, मैं सभी विद्याओं में ब्रह्मविद्या हूँ, और मैं ही सभी तर्क करने वालों में निर्णायक सत्य हूँ। (३२)

Meaning:

Among the creations, I only am the beginning, end and middle, O Arjuna. Among the sciences I am spiritual science and among the debates I am Vaada.

Explanation:

To ensure that we do not get carried away by getting stuck in specific manifestations of Ishvara, Shri Krishna addresses Arjuna and reiterates that Ishvara is in everything and at all times. As Brahma, he creates the universe, as Vishnu he sustains the universe and as Shiva, he dissolves the universe. But Ishvara is ever present, he does not go away during any of these activities.

In 10.20, we have listened by Krishna saying that I am the beginning, middle and end; He has told there; and He is telling here; how to reconcile, because repetition is supposed to be a dōṣā. So, it is called punarukthi dōṣā; repeating mistake, how do we reconcile; the commentators point out that the one indicates the beginning, middle and end space, another indicates beginning, middle and end, timewise. So, whether you look at space or whether you look at timewise, I am the beginning, middle and end of the creation; one is sr̥ṣṭi, sthithi laya kāraṇam; and time wise and space-wise I am the pātāla loka also and I am brahma lōkā also and I am the middle, Bhūlōkā also. Everything I am.

Next, Shri Krishna takes up the subject of knowledge. For most of us, knowledge refers either to academic knowledge, career- enhancing knowledge or knowledge about something we enjoy doing such as arts or literature. Although such knowledge has its place in our life, it is secondary or lower knowledge. It is “aparaa vidyaa”.

Vidyā is the education that a person acquires in relation to subjects of knowledge. The scriptures describe eighteen types of vidyās. Amongst them, fourteen are prominent: “Śhikśhā, Kalp, Vyākaraṇ, Nirukti, Jyotiṣh, Chhanda—these are the six types of knowledge known as Vedāṅg (limbs of the Vedas). Ṛig, Yajur, Sāma, Atharva—these are the four branches of Vedic knowledge. Along with Mīmānsā, Nyāya, Dharma Śhāstra, and the Puranas, these comprise the fourteen chief vidyās.” Practice of these vidyās cultivates the intellect, deepens the knowledge, and increases awareness of the path of dharma. Additionally, the science of spirituality liberates human beings from material bondage and gives them immortality. Thus, it is superior to the previously mentioned vidyās. This is mentioned in the Śhrīmad Bhāgavatam as well: “The best knowledge is that by which the intellect becomes attached to the lotus feet of God.”

Why is it secondary? Such knowledge keeps us engaged in the material world, in Prakriti or in Maaya. We tend to correct, change and rearrange our life situations, but none of this yield lasting happiness. We do not look to correcting the real problem, which is our understanding of our own self. Only spiritual knowledge, knowledge of our own self, has the power to take us out of the material world and towards Ishvara. This is why Shri Krishna praises “adhyaatma vidyaa”, spiritual knowledge among all types of knowledge.

Scientists, Newton or ,1Edison who said; I was only playing on the shore with a few pebbles; thousands of discoveries he made and at the time of

death, he declared that I was playing with a few pebbles on the shore, while the vast ocean of truth is in front. Therefore, material sciences will only increase the sense of limitation. whereas this is the only knowledge which makes me say, pūrṇamadaḥ pūrṇamidaṃ pūrṇātpūrṇamudacyate.

We now come to the topic of debates. In all spheres of life, a conversation between two people where one is trying to influence other is extremely important. In the US, debates between two presidential candidates can make or break their chances of winning. In general, there are three kinds of debates.

In the field of argument and logic, jalpa means to find fault with the opponent's statements, for the sake of establishing one's own opinion. In "Jalpa", the speaker wants to prove his point and bring down his opponent, no matter how sound or logical the opponent's argument. In "Vitanda", the speaker does not have any point to make, he just wants to bring down his opponent. Vitaṇḍa means to avoid proper deliberation on the truth through evasion and frivolous arguments. Vāda is the logical conclusion of the discussion. Logic is the basis for communication of ideas and establishment of truths. It is because of a universal sense of logic that knowledge can be easily cultivated, taught, and learnt in human society. Only in "Vaada" do both speakers listen to each other and push each other to ensure that the most logical argument prevails, not that one or the other speaker wins. The universal principles of logic are a manifestation of the power of God. Shri Krishna says that such a debate that places logic above ego is Ishvara's foremost expression.

।। हिंदी समीक्षा ।।

मैं सृष्टियों का आदि, अन्त और मध्य भी हूँ अपनी विभूतियों का वर्णन प्रारम्भ करने के पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण का सामान्य कथन ही यहाँ प्रतिध्वनित होता है। वहाँ उन्होंने यह बताया है कि आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह नक्षत्र, प्राणी, दिशाएं, वृक्ष, लता, नदी, समुंदर

सभी परमात्मा की विभूतियां है, वे किस प्रकार प्रत्येक वस्तु और प्राणी की आत्मा हैं जबकि यहाँ वे सम्पूर्ण सृष्टि के अधिष्ठान के रूप में स्वयं का परिचय करा रहे हैं। कोई भी पदार्थ अपने मूल उपादानस्वरूप ऋ (मूल तत्व) त्याग कर के नहीं रह सकता। स्वर्ण के बिना आभूषण, समुद्र के बिना तरंग और मिट्टी के बिना घट का अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता। समस्त नाम और रूपों में उनके उपादान कारण का होना अपरिहार्य है। समस्त सृष्टि का आशय समस्त लोक, ब्रह्मा जी के महासर्ग एवम महाप्रलय से ही लेना चाहिए, क्योंकि यही माना गया है कि ब्रह्मांड की रचना उस परब्रह्म के संकल्प- विकल्प से हुई है और उसी में विलीन होनी है।

इस से पहले 20वें श्लोक में श्रीकृष्ण ने व्याख्या की थी कि वे सभी प्राणियों के आदि, मध्य और अंत हैं। अब वे यही बात सभी सृष्टियों के लिए कह रहे हैं। सभी प्रकार की सृष्टियाँ जैसे अंतरिक्ष, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को सर्ग कहा जाता है। मैं इन का 'सृजक' अर्थात आदि, 'पालक' अर्थात मध्य और 'संहारक' अर्थात अंत हूँ। इसलिए सृष्टि का सृजन, पालन और संहार मेरी विभूतियों द्वारा किया जाता है।

अतः परमात्मा की उपस्थिति न केवल प्रत्येक स्थान पर है, अपितु वह कालातीत होने से प्रत्येक समय उपलब्ध है। किसी पौधे की जानकारी के लिये जड़ से ले कर तने, टहनियों और पत्ते, फूल और फल तक की जानकारी पर्याप्त नही है, जब तक बीज से बीज तक की जानकारी न हो। परब्रह्म से जो सृष्टि उत्पन्न होती है और परब्रह्म में ही विलीन हो जाती है उस समस्त सृष्टि के आदि, मध्य और अंत मे जो कुछ भी व्यक्त और अव्यक्त है, वह समस्त परमात्मा की ही विभूति है।

विद्या वह शिक्षा है जिसके द्वारा मनुष्य को किसी विषय से संबंधित ज्ञान प्राप्त होता है। धार्मिक ग्रंथों में 18 प्रकार की विद्याओं का वर्णन किया गया है जिनमें से प्रमुख चौदह का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है:

अग्नि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्याय विस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्याताश्चर्तुदश ।।विभूति योग आयुर्वेदा धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः।अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः।। (विष्णु पुराण-3.6.27.28)

"शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्ति, ज्योतिष और छंद, ये छः प्रकार की विद्याओं को वेदों का अंग कहा जाता है। ऋग, यजुर, साम, अथर्व ये वैदिक ज्ञान की चार शाखाएँ हैं। मीमांसा, न्याय, धर्म शास्त्र और पुराणों सहित प्रमुख चौदह विद्याएँ हैं।" इन विद्याओं का अभ्यास बुद्धि, दिव्य ज्ञान और धर्म के मार्ग के प्रति जागरूकता को बढ़ाता है। इस के अतिरिक्त आध्यत्मिक ज्ञान मनुष्य को माया के बंधनों से मुक्त कर उसे अमरत्व प्रदान करता है। इस प्रकार से यह पहले उल्लिखित विद्याओं में सर्वोत्कृष्ट है। श्रीमद्भागवतम् में भी इस का उल्लेख किया गया है।

सा विद्या तन्मतिर्यया (श्रीमद्भागवतम्-4.29.49)

"सर्वोत्तम ज्ञान वह है जिसके द्वारा मनुष्य में भगवान के चरण कमलों में अनुराग उत्पन्न हो।"

परमात्मा का कहना है कि उन की विभूतियां को जानना तभी संभव है जब कोई उन के जैसा ही हो। इसलिये उन्होंने अध्यात्मविद्या या ब्रह्म विद्या जो आत्मतत्व का ज्ञान कराती है, अन्य विद्याओं से श्रेष्ठ बताया है। क्योंकि अन्य सब विद्या सांसारिक होती है, इसलिए हमें अज्ञान की गांठ से बंधी रहती है। ब्रह्म विद्या से अज्ञान की गांठ सदा के लिये खुल जाती है और परमात्मा के साक्षात स्वरूप का ज्ञान होता है और उन की विभूतियां समझ मे आती है। ज्यामिति का सिंद्धान्त है जैसे जैसे किसी गोलाकार आकृति का दायरा बढ़ता है उस का संपर्क भी बाहर के क्षेत्र से बढ़ता है, वैसे ही जैसे जैसे ज्ञान का घेरा बढ़ता है, उस का क्षेत्र भी अज्ञान के संपर्क में ज्यादा आता है, अतः परिसीमा के बाहर पूर्णब्रह्म का ज्ञान, जिसे आत्मज्ञान की संज्ञा दी गई है, जब तक प्राप्त नही होता, परमात्मा को समझना और उन की विभूतियों को देख पाना संभव नही। आत्मज्ञान ही वह पूर्ण ज्ञान है जिस में जीव का अज्ञान संपूर्ण रूप से मिट जाता है।

कहते है रावण आत्मविद्या को छोड़ कर समस्त विद्याओं का ज्ञानी था, यहां तक वो ब्रह्मा की विद्या तक को पढ़ लेता था, इसलिये वो शिव को मराल एवम भागवत आचार्यों को कुछ भी नही सम्मान नही देता था। जब कि प्रह्लाद, तुलसीदास, बाल्मीकि आदि अनेक ज्ञानी आत्मविद्या मात्र को जानते थे। इसलिये रावण का नाश एवम इन का उद्धार हुआ।

आधुनिक युग मे शिक्षा या शिक्षित का अर्थ अर्थोपार्जन के सक्षम शिक्षा से ज्यादा है, यह ज्ञान प्रकृति का ज्ञान है जो शरीर से शुरू हो कर, शरीर के साथ समाप्त हो जाता है। इसलिए जो शिक्षा संसार मे आय का साधन मात्र हो, वह जीवात्मा के ब्रह्म से साक्षात्कार के

सहायक नही होती, जीव अपने से परिचित न हो तो वह अपना, परिवार, समाज, देश और मानव जाति के उद्धार के कार्यरत नही हो सकता। आध्यत्मिक शिक्षा ही एक मात्र शिक्षा है, जो व्यक्तित्व के विकास के साथ जीव को जन्म-मृत्यु के रहस्य और बन्धन से मुक्त कर सकती है और संसार मे रहने की कला सिखाती है। आत्मज्ञान ही वह ज्ञान है जो मोक्ष की ओर ले जाता है, जो नष्ट नही होता और यदि एक जन्म में यह प्राप्त हो कर आत्मसात न हो तो, जीव को उस ज्ञान को पूरा करने का अवसर भी अगले जन्मों में मिलता रहता है।

वाद - विवाद आपस मे चर्चा का स्वरूप है। वाद तीन प्रकार के बताए गए है।

(1) **जल्प** - युक्ति प्रयुक्ति से अपने पक्ष का मण्डन और दूसरे पक्ष का खण्डन कर के अपने पक्ष की जीत और दूसरे पक्ष की हार करने की भावना से जो शास्त्रार्थ किया जाता है, उस को जल्प कहते हैं। विवाद और तर्क के क्षेत्र में 'जल्प' का अर्थ प्रतिद्वन्दी के कथनों में दोष ढूँढ कर अपने मत को स्थापित करने से है।

(2) **वितण्डा** - अपना कोई भी पक्ष न रखकर केवल दूसरे पक्ष का खण्डन ही खण्डन करने के लिये जो शास्त्रार्थ किया जाता है, उसको वितण्डा कहते हैं। 'वितण्डा' से तात्पर्य कपटपूर्ण और असार तर्कों द्वारा स्पष्ट रूप से जानबूझकर सत्य को अस्वीकार करने से है।

आज कल TV चैनलों में जो कुछ भी परिचर्चा में दिखाया जाता है वो उपरोक्त दो ही तरह का निर्रथक वाद ही है। यह निरर्थक वाद (जल्प - वितण्डा) से द्वैष, क्रोध, हिंसा, अभिमान, अशांति, असन्तुष्टि और अज्ञान ही बढ़ता है।

किसी भी व्यक्ति से वाद- विवाद तभी करना चाहिये, जब वह ज्ञान पर आधारित बिना पक्षपात के हो। इसलिये अज्ञानी और मूर्ख व्यक्ति से बहस करने करने का कोई औचित्य नही है।

(3) **वाद** - वेद, वाद- विवाद का तार्किक निष्कर्ष हैं। तर्क विचारों के संप्रेषण और सत्य की स्थापना का आधार है। इसलिए तर्क के सार्वभौमिक बोध के कारण मानव समाज में ज्ञान को सरलता से सीखा, सिखाया और विकसित किया जा सकता है। तर्क का सार्वभौमिक सिद्धान्त भगवान की विभूतियों का प्रकटीकरण है। बिना किसी पक्षपात के केवल तत्वनिर्णय के लिये आपस में जो शास्त्रार्थ (विचार विनिमय) किया जाता है उसको वाद कहते हैं। उपर्युक्त तीनों प्रकार के शास्त्रार्थों में वाद श्रेष्ठ है। इसी वाद को परमात्मा ने अपनी विभूति बताया है। अतः जो वाद व्यक्तित्व विकास, ज्ञान, आध्यात्मिक शांति और उन्नति में सहायक हो, वह

परमात्मा की विभूति है, यहाँ उपस्थित हो पाना भर भी परमात्मा की कृपा से ही संभव है। वाद में तत्व या विषय के ज्ञान की जिज्ञासा दोनो पक्षो में बिना किसी पद या शिक्षा के अहम या अभिमान के होती है। दोनों पक्ष अपनी बात सार्थक भाव से एक दूसरे के प्रति सम्मान रखते हुए कहते है, अर्थात कोई किसी को नीचा दिखाने या जीतने का लक्ष्य रख कर वाद नही करता। आदि गुरु शंकराचार्य और मंडल मिश्र के मध्य का वाद इस का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

गुरु की तलाश में अपने संशय का निवारण करना वाद-विवाद का सार्थक स्वरूप हो सकता है, किन्तु गुरु की क्षमता या ज्ञान को परखने के लिये वाद-विवाद और उन की प्रत्येक बात का विरोध करना कोरा अभिमान है। वाद-विवाद के बाद ज्ञान की वृध्दि होती है और आत्मिक शांति का अनुभव होता है।

भूतों में अपनी विभूतियो को बताने के बाद यह श्लोक अत्यन्त महत्व पूर्ण है जिस में सम्पूर्ण सृष्टि आदि, मध्य एवम अंत को अपनी विभूति बता कर परमात्मा ने अपना सम्पूर्ण स्वरूप बता दिया। यह विभूतियां समझने वाली आध्यात्मविद्या को भी अपनी विभूति बताया और इस विषय मे सार्थक वाद विवाद को ही अपनी विभूति बताया जिस से परमात्मा को जाना जा सके। अतः परब्रह्म की सम्पूर्ण जड़-चेतन के उद्गम, मध्यम एवम विनाश में परमात्मा की विभूति, जीवन दर्शन के ज्ञान एवम सार्थक वाद-विवाद में परमात्मा की विभूति को बता कर परमात्मा ने व्यक्तित्व के विकास के प्रत्येक चरण में अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

।।हरि ॐ तत सत।। 10.32।।

।। आदि शंकराचार्य - वाद विवाद ।। विशेष - गीता 10.32 ।।

आदि शंकराचार्य, संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, चैतन्य महाप्रभु, तुलसीदास आदि आदि महान संत महाभारत की गीता के बाद मध्यकालीन भारत की विभूतियां है जिन्हें गीता में विभूतियों के रूप में यद्यपि स्थान नही भी मिला हो, किन्तु उन का जीवन एवं दर्शन परमात्मा की विभूति ही है। वाद- विवाद से सनातन संस्कृति को पुनः स्थापित करने में आदि शंकराचार्य के योगदान को ध्यान में रखते हुए, यह प्रसंग प्रस्तुत करना भी आवश्यक है।

भारत के इतिहास में एक ऐसा भी समय आया है जब देश में धर्म और अध्यात्म के नाम पर अराजकता फैल रही थी। चार्वाक, लोकायत, कापालिक, शाक्त, सांख्य, बौद्ध, माध्यमिक तथा अन्य बहुत से सम्प्रदाय और शाखाएं बन गई थी। इस प्रकार के सम्प्रदायों की संख्या लगभग 72 हो गई थी। सब आपस में एक दूसरे के विरोधी थे। कहीं कोई शान्ति नहीं। अनाचार, अन्धविश्वास, द्वन्द और संघर्ष का बोलबाला था। लगता था हर तीसरे व्यक्ति का अपना दर्शन, अपना सिद्धान्त और अपना अनुगामी दल है। आध्यात्मिक क्षेत्र में हुए ऐसे पतन के समय शंकराचार्य का अवतरण हुआ।

आदि शंकराचार्य का जन्म केरल प्रदेश के कालडी नाम के गांव में सन् 788 में हुआ। यह गांव कल- कल करती सदानीरा पेरियार नदी के किनारे है। परिवार में काफी समय तक कोई बच्चा न होने के कारण शंकर का जन्म परिवार के लिए अत्यधिक प्रसन्नता दायक था। कहते हैं शंकर की माता आर्यम्बा के स्वप्न में साक्षात भगवान शंकर ने दर्शन दिए और आशीर्वाद दिया कि वे स्वयं उनकी कोख से जन्म लेंगे। इसी कारण से नवजात शिशु का नाम शंकर रखा गया। बालक शंकर बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि थे और इन्होंने बालपन में ही वेद, पुराण, वेदांग, उपनिषदों आदि का अध्ययन कर लिया था। साथ ही इन की रूचि अन्य धर्मों और सम्प्रदायों के धर्मग्रंथों को पढ़ने में भी थी।

बचपन से ही इन्हें प्राकृत, अवधी और संस्कृत भाषाओं का ज्ञान था। ‘‘माधवैय शंकर विजया’’ नामक पुस्तक के अनुसार बालक शंकर ने एक वर्ष की आयु में संस्कृत, दो वर्ष की आयु में अपनी भाषा मलयालम और तीन वर्ष की आयु में पढ़ना सीख लिया था। बालपन से ही काव्य और पुराणों में इन की रूचि थी। पांच वर्ष की आयु में इन का उपनयन संस्कार हुआ। कहते हैं एक बार संस्कृत कालिज में चतुश्पाठी विद्यार्थी और उनके गुरू किसी तर्क- वितर्क में संलग्न थे। पांच वर्षीय बालक शंकर उस वाद-विवाद को सुन रहे थे। किसी को भी इस बात का ज्ञान नहीं था कि एक छोटा सा बालक उन की बातें सुन रहा है। लेकिन बालक अधिक देर तक शान्त नहीं बैठ सका। गुरु- शिष्यों के संवाद के बीच अचानक हस्तक्षेप कर उसने अपना मत रखा। वे सभी हतप्रभ थे। उसने कहा कि वह काफी समय से उन की बातचीत सुन रहा था परन्तु एक बिन्दु पर आकर वह स्वयं को रोक नहीं सका क्योंकि आप दोनों ही अपने-अपने तर्कों से विमुख हो रहे थे। मैंने इस विषय पर एक समन्वित पक्ष आपके सामने रखा है। यह थी पांच वर्ष के बालक की प्रतिभा।

जब ये सात वर्ष के थे कि इन के पिता का देहान्त हो गया और आठ वर्ष की आयु में ये सन्यासी हो गये। इन के सन्यास लेने की कथा भी विचित्र है। कहते हैं एक दिन शंकर अपनी माता के साथ पेरियार नदी में स्नान के लिए गए। वहां इन का पैर फिसल गया और इन्हें लगा कि एक मगरमच्छ ने इन की टांग पकड़ ली है। ये वहीं से ज़ोर से चिल्लाये, "मां, मुझे मगरमच्छ खींच रहा है, यह मुझे खा जायेगा, मुझे सन्यासी बन जाने की आज्ञा दे दें। मैं सन्यासी बनकर मरना चाहता हूं।" माता के सामने और कोई विकल्प नहीं था। उसने हां कर दी। शंकर ने नदी में ही अपथ- सन्यास की दीक्षा अपने मन ही मन में ली। अवश्यम्भावी मृत्यु के समय लिए गए सन्यास को अपथ सन्यास कहते हैं। कहते हैं, मगरमच्छ ने इन्हें तुरन्त छोड़ दिया। ये पानी से बाहर आये, सन्यासी बन ही गए थे। अपनी माता को अपने सम्बन्धियों की देखभाल में छोड़ कर ये देशाटन के लिए निकल गये।

घूमते-घूमते शंकर हिमालय में बदरीनाथ पहुंच गए और उन्होंने वहां स्वामी गोविन्दपाद आचार्य से भेंट की। शंकर को लगा - ये ही उसके वास्तविक गुरु हैं। शंकर ने उनके चरण स्पर्श किए स्वामी ने शंकर से पूछा, "तुम कौन हो?" शंकर ने कहा, "गुरुदेव, न तो मैं अग्नि हूं, न वायु, न मिट्टी, न पानी, मैं एक सनातन आत्मा हूं जो सर्व व्याप्त है।" शंकराचार्य की यह रचना शिवाष्टक के रूप में उपलब्ध है। गोविन्दाचार्य जी इस उत्तर से अत्यन्त प्रसन्न हुए और शंकर को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया। गुरु ने शंकर को अद्वैतवाद की शिक्षा दी और बाद में उसे काशी जाने का आदेश दिया।

काशीवास शंकर के लिए वरदान सिद्ध हुआ। काशी प्रवास में ही इन्हें भगवान विश्वनाथ के साक्षात दर्शन हुए। भगवान विश्वनाथ ने इन्हें आशीर्वाद दिया और आज्ञा दी कि वेदान्त शास्त्रों पर भाष्य की रचनाकर सनातन धर्म की रक्षा करो। भगवान विश्वनाथ की इस आज्ञा को शिरोधार्य कर इन्होंने प्रस्थानत्रयी भाष्यों की रचना की। यहां रहकर उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों की व्याख्याएं लिखी। अनेक स्तोत्रों की रचना की जिनमें शिवभुजयं, शिवानन्द लहरी, शिवपादादि के शान्तस्तोत्र, वेदसार शिवस्तोत्र, शिवपराधक्षमापनस्तोत्र, दक्षिणामूर्ति अष्टक, मृत्युंजयमानसिकपूजा, शिव पंचाक्षरस्तोत्र, द्वादशलिंगस्तोत्र, दशशलोकी स्तुति आदि उल्लेखनीय हैं। यही समय था जब शंकर शंकराचार्य बन गए और इन्होंने सम्पूर्ण देश की यात्रा और सनातन धर्म की पुनःस्थापना की। बड़े-बड़े विद्वानों से शास्त्रार्थ किए और उन सबको अपने दृष्टिकोण की ओर मोड़ा। उन्होंने भास्कर भट्ट, दण्डी, मयूरा हर्ष, अभिनव गुप्ता, मुरारी मिश्रा, उदयनाचार्य, धर्मगुप्त, कुमारिल, प्रभाकर आदि मूर्धन्य विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया।

इस के बाद उन की भेंट महिष्मति के मण्डन मिश्र से हुई। मण्डन मिश्र कर्म मीमांसा के विद्वान थे और सन्यासियों के प्रति उन के मन में एक प्रकार की घृणा थी। जब शंकराचार्य मण्डन मिश्र से मिले, उस समय वे अन्य विद्वानों से घिरे बैठे थे। **शंकराचार्य और मण्डन मिश्र में किसी धार्मिक विषय पर वाद- विवाद हो गया। शंकर ने मिश्र जी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। मण्डन मिश्र सहमत हो गए।** निर्णायक के रूप में उपस्थित विद्वानों ने मण्डन मिश्र की पत्नी उदया भारती को चुना जो विदुषी थी। निश्चित हुआ कि यदि शंकर हार गए तो वे गृहस्थ हो जाएंगे और यदि मण्डन मिश्र हार गए तो वे सन्यासी हो जाएंगे। शास्त्रार्थ 17 दिन तक चला। मण्डन मिश्र की पत्नी ने निर्णायक की भूमिका में दोनों विद्वानों के गले में एक-एक माला डाल दी और कहा, "जिस किसी की माला के फूल पहले मुरझाने लगे तो वह स्वयं को पराजित मान लें।" यह कहकर वो अपने घर के कामकाज में व्यस्त हो गई। सत्रहवें दिन मण्डन मिश्र की माला के फूल मुरझाने लगे। उन्होंने पराजय स्वीकार कर ली।

लेकिन, "नहीं - अभी नहीं।" उदया भारती ने यह पराजय स्वीकार नहीं की। उन्होंने शंकर से कहा, "मैं मण्डन मिश्र की अर्धांगिनी हूं। आपने अभी मण्डन के अर्धभाग को पराजित किया है, अभी आपने मुझ से शास्त्रार्थ करना है।" शंकर ने महिला से शास्त्रार्थ करने से मना किया। भारती ने अनेक उदाहरण दिए जहां महिलाओं ने शास्त्रों और अध्यात्म का अध्ययन किया था। शंकर अनिच्छा से भारती से शास्त्रार्थ के लिए सहमत हुये। इस बार फिर शास्त्रार्थ की प्रक्रिया 17 दिन तक चली। अन्त में जब भारती को लगा कि शंकर को पराजित करना कठिन है, तब उन्होंने कामशास्त्र का सहारा लिया। उन्होंने शंकर से कामशास्त्र सम्बंधी प्रश्न पूछने शुरू किये।

शंकर ने पहले इसमें आनाकानी की। भारती अपनी जिद्द पर अड़ी रही। अन्ततः शंकर ने एक महीने का समय मांगा क्योंकि वे इस ज्ञान से अनभिज्ञ थे। शंकर काशी गए। वहां योग विद्या से अपने शरीर को छोड़ा। अपने शिष्यों से अपने शरीर की रक्षा करने का कहा और स्वयं एक सद्यमृत राजा अमरूक के शरीर में प्रवेश कर गए। राजा जीवित हो गया। यद्यपि राजा के रूप में जीवित व्यक्ति के कर्म, गुण, व्यवहार वास्तविक राजा से भिन्न थे। फिर भी वे राजा के रूप में राजगृह में रहे। गृहस्थ जीवन, पारिवारिक व्यवहार और दाम्पत्य रहस्यों को समझा। वे एक महीने बाद पुनः अपने चोले में आ गए और लौटकर उन्होंने मण्डन मिश्र की पत्नी से फिर शास्त्रार्थ करने के लिए कहा। अब वे उन के काम शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर देने के लिए तैयार हो गए, परन्तु मण्डन मिश्र और भारती ने पराजय मान कर शंकर

का नमन किया। शंकर ने मण्डन मिश्र का नामकरण सुरेश्वराचार्य किया और उन्हें श्रृंगेरी मठ का भार सौंप दिया।

इन के बालपन से ही जुड़ी एक और अलौकिक घटना इस प्रकार है। इनकी माता का नियम था कि प्रतिदिन प्रातः नदी में स्नान किए बगैर कुछ भी खाना-पीना अनास्था है। एक दिन इनकी माता नदी स्नान करने गई तो वे काफी समय तक लौटी नहीं। प्रतीक्षा करने के बाद बालक शंकर माता को ढूंढने निकले। रास्ते में देखा कि इनकी माता अधमरी-सी सड़क पर लेटी हैं। इन्होंने माता को उठाया, उन्हें स्नान कराया और धीरे-धीरे घर ले आये। उसी दिन निश्चय किया कि यदि माता नदी तक जाने में असमर्थ हैं तो क्यों नहीं नदी को गांव तक लाया जाये। प्राचीन समय में भगीरथ ने भी तो ऐसा ही किया था। बालक शंकर ने हृदय से अभ्यर्थना की और अन्ततः नदी ने अपना रूख शंकर के गांव की ओर, नहीं, उनके घर की ओर मोड़ दिया। शंकर की माता गद्‌गद थी। आज भी नदी इनके घर के पास से उसी प्रकार बहती है।

शंकराचार्य को हिन्दू, बौद्‌ध तथा जैन मत के लगभग 80 प्रधान सम्प्रदायों के साथ शास्त्रार्थ में प्रवृत्त होना पड़ा था। हिन्दू धर्मावलम्बी लोग यथार्थ वैदिक धर्म से विच्युत होकर अनेक संकीर्ण मतवादों में विभक्त हो गए थे। आचार्य शंकर ने वेद की प्रामाणिकता की प्रतिष्ठा की और हिन्दु धर्म के "सभी मतवादों का संस्कार कर जनसाधारण को वेदानुगामी बनाया। वेद का प्रचार उनका अन्यत्र प्रधान अवदान है। शंकर को वेदान्त के अद्‌वैतवाद सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इन्होंने अनेक शास्त्रों का भाष्य लिखा। इनके अद्‌वैतवाद के अनुसार संसार का अन्तिम सत्य 'दो नहीं' एक होता है। इसी का नाम ब्रह्म है। 'एकमेव हि परमार्थसत्यं ब्रह्म।' अर्थात् ब्रह्म ही सर्वोच्च सत्य है। यही एक सत्य है शेष सभी असत्य है। शंकर ने हिन्दुत्व को पौराणिक धर्म से मोड़कर उपनिषदों की ओर उन्मुख कर दिया। 1200 वर्ष पूर्व के उस अस्त-व्यस्त बौद्‌धिक वातावरण में यह कार्य कितना कठिन साध्य था, इसका अनुमान लगाना भी सम्भव नहीं है।

इनका एक अत्यंत महत्वपूर्ण परन्तु सबसे छोटा ग्रंथ है 'भज गोविन्दम्'। इसमें वेदान्त के मूल आधार की शिक्षा अत्यंत सरल गेय शब्दों में दी गई है। इसके श्लोकों की लय अत्यधिक मधुर है और इन्हें सरलता से याद किया जा सकता है। इसमें मात्र 31 श्लोक हैं। इसकी गणना भक्तिगीतों में की जाती है। इनमें पहले बारह श्लोक "द्‌वादष मंजरिका स्तोत्रम" के नाम से प्रसिद्‌ध हैं। इसका अर्थ है बारह श्लोक रूपी फूलों का गुच्छा। चौदह श्लोक "चतुर्दश

मंजरिका स्तोत्रम्' के नाम से विख्यात हैं। आचार्य के प्रत्येक शिष्य ने एक-एक श्लोक को गुरु प्रेरणा के रूप में कहा। इसके बाद आचार्य शंकर ने पुनः चार श्लोकों के माध्यम से सभी सच्चे साधकों को आशीर्वाद दिया। पहला श्लोक टेक रूप में है।

भज गोविन्दम् भज गोविन्दम्
गोविन्दम भज मूढमते।
सम्प्राप्ते सान्निहिते काले
न हि न हि रक्षति डुकृकरणें।

सभी ग्रंथों की रचना के पीछे उनका एक ही भाव था कि मनुष्य को ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त करने का मार्ग स्पष्ट दिखायी देना चाहिए। अद्वैत को प्रमुखता देते हुए भी शंकर ने शिव, विष्णु, शक्ति और सूर्य पर स्तोत्र लिखे। इनका आग्रह समाज में समन्वय लाने का था। इन्हें आध्यात्मिक सुधारक भी माना जाता है क्योंकि शाक्त मन्दिरों में बलि देने की प्रथा का इन्होंने विरोध किया।

बदरिकाश्रम, द्वारका, जगन्नाथपुरी और श्रृंगेरी देश की चार दिशाओं में चार मठों की स्थापना का काम सबसे अहम था। इस तरह से देश की भौगोलिक एकता को प्रत्यक्ष करने का गम्भीर कार्य शंकराचार्य ही कर सकते थे। इन मठों के अध्यक्ष आचार्य श्री शंकराचार्य के नाम से ही जाने जाते हैं। शंकर ने देश के घुमक्कड़ साधुओं और सन्तों को एकत्र कर दस प्रमुख समूहों में एकत्रित किया। प्रत्येक मठ को इन्होंने एक- एक वेद का उत्तरदायित्व सौंपा - बदरिकाश्रम के ज्योतिर्मठ को अथर्ववेद दिया, श्रृंगेरी के शारदापीठ को यजुर्वेद, जगन्नाथपुरी के गोवर्धनमठ को ऋग्वेद और द्वारका के कलिका मठ को सामवेद सौंपा।

ब्रह्मसूत्र, श्रीमदभगवद्गीता और उपनिषदों के भाष्य, शंकराचार्य ने कहते हैं, श्री बदरीनाथ की व्यास गुफा और ज्योर्तिमठ की गुफा में रहते हुए लिखे थे। इन्हें प्रस्थानत्रयी भी कहते हैं। ज्योर्तिमठ में इन्हें दिव्य ज्योतिर्मठ के दर्शन हुए। स्वामी अपूर्वानन्द ने अपनी पुस्तक 'आचार्य शंकर' में आचार्य के जीवन की अनेक अलौकिक और चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख किया है। प्रदेश के राजा राजशेखर शंकर के बालपन से इनसे प्रभावित थे और समय रहते वे इनके परम शिष्य हो गए। राजा राजशेखर एक साहित्यिक व्यक्ति थे और साहित्य रचना ही उनकी रूचि थी। एक बार काफी समय बाद राजा और शंकर की जब भेंट हुई तो शंकराचार्य ने उनसे उनकी साहित्यिक गतिविधियों के बारे में चर्चा की। राजा ने अत्यंत खिन्न स्वर में उत्तर दिया कि ''उन्होंने अब साहित्यिक गतिविधियां समाप्त कर दी हैं क्योंकि कुछ समय पूर्व ही उनके तीन नाटक, संभवतः इश्वर शाप के कारण, अग्नि में भस्मीभूत हो

गए हैं। इस चोट के कारण अब मेरा कुछ लिखने का मन नहीं करता।" शंकर भी यह सुनकर अत्यंत क्षुब्ध हुए। उन्होंने कहा, "आपका कष्ट मैं समझता हूं क्योंकि ग्रंथकार के लिए ग्रंथ उसकी सनातन के समान होते हैं। यह आपकी मानस सृष्टि थी। आपने ये तीनों नाटक मुझे पढ़कर सुनाये थे। मुझे तीनों ही नाटक आदि से अन्त तक अक्षरषः याद हैं। आप चाहें तो उन्हें मुझसे लिख कर पुनरूद्धार कर सकते हैं।" राजा को इससे आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी हुई। राजा ने पुलकित होकर कहा, "आचार्य, कृपया सुनायें, मैं लिपिक बुलाता हूं, वह लिख लेगा।" कुछ ही दिनों में तीनों नाटक पुनः लिख लिए गए। राजा ने पढ़ा और देखा कि यह उनकी रचना की अविकल पुनःस्थापना थी। आनन्द, विस्मय और कृतज्ञता से राजा ने बार-बार आचार्य को प्रणाम किया। यह आचार्य की अलौकिक स्मरण शक्ति का चमत्कार था।

जगदगुरु आदि शंकराचार्य बहुत कम आयु में ही ऐसे संत-विद्वान-गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे कि उनकी कीर्ति पताका आज तक फहरा रही है। उनके मठ-शिक्षा केन्द्र आज भी विराजमान हैं और ज्ञान-धन से समृद्ध हैं। उनके हजारों शिष्य थे, जिनमें से चार शिष्यों को उन्होंने जगदगुरु शंकराचार्य बनाया। उनके एक परम प्रिय शिष्य थे सनन्दन, जो गुरु के ज्ञान में आकंठ डूबे रहते थे। सनन्दन को गुरु पर अटूट विश्वास था। एक बार सनन्दन किसी काम से अलकनन्दा के पार गए हुए थे। आदि शंकराचार्य अपने दूसरे शिष्यों को यह दिखाना चाहते थे कि सनन्दन उन्हें क्यों ज्यादा प्रिय हैं। उन्होंने तत्काल सनन्दन को पुकारा, सनन्दन शीघ्र आओ, शीघ्र आओ। अलकनन्दा के उस पर आवाज सनन्दन तक पहुंची, उन्होंने समझा गुरुजी संकट में हैं, इसलिए उन्होंने शीघ्र आने को कहा है। वे भाव विह्वल हो गए। नदी का पुल दूर था, पुल से जाने में समय लगता। गुरु पर अटूट विश्वास था, उन्होंने गुरु का नाम लिया और तत्क्षण जल पर चल पड़े। नदी पार कर गए। आदि शंकराचार्य ने प्रभावित होकर उनका नाम रखा - पद्मपाद। पद्मपाद बाद में गोवद्र्धन मठ पुरी के पहले शंकराचार्य बने।

उनके दूसरे परम शिष्य मंडन मिश्र उत्तर भारत के प्रकाण्ड विद्वान थे, जिनको शास्त्रार्थ में आदि शंकराचार्य ने पराजित किया था। मंडन मिश्र की पत्नी उभयभारती से आदि शंकराचार्य का शास्त्रार्थ जगत प्रसिद्ध है। यहां सिद्ध हुआ कि अध्ययन और मनन ही नहीं, बल्कि अनुभव भी अनिवार्य है। अनुभव से ही सच्चा ज्ञान होता है। मंडन मिश्र को उन्होंने सुरेश्वराचार्य नाम दिया और दक्षिण में स्थित शृंगेरी मठ का पहला शंकराचार्य बनाया।

एक गांव में प्रभाकर नामक प्रतिष्ठित सदाचारी ब्राह्मण रहता था। उन्हें केवल एक ही बात का दुख था कि उनका एक ही पुत्र पृथ्वीधर जड़ और गूंगा था। लोग उसे पागल भी समझ लेते थे, बच्चे उसकी पिटाई करते थे, लेकिन वह कुछ न कहता था। परेशान माता-पिता पृथ्वीधर को आदि शंकराचार्य के पास ले गए और बालक को स्वस्थ करने की प्रार्थना की। आदि शंकराचार्य ने कुछ सोचकर उस बालक से संस्कृत में कुछ सवाल किए। चमत्कार हुआ, बालक भी संभवत: ऐसे प्रश्न की प्रतीक्षा में था, उसने संस्कृत में ही बेजोड़ जवाब दिए। गुरु ने एक जड़ से दिखने वाले बच्चे में भी विद्वता को पहचान लिया था, उन्होंने उस बालक को शिष्य बनाते हुए नया नाम दिया - 'हस्तामलक। हस्तामलक ही बाद में भारत के पश्चिम में स्थित शारदा पीठ-द्वारकाधाम के प्रथम शंकराचार्य बने।

शृंगेरी में निवास करते समय आदि शंकराचार्य को गिरि नामक एक शिष्य मिला। वह विशेष पढ़ा-लिखा नहीं था, लेकिन आज्ञाकारिता, कर्मठता, सत्यवादिता और अल्पभाषण में उसका कोई मुकाबला न था। वह गुरु का अनन्य भक्त था। एक दिन वह गुरुजी के कपड़े धोने गया, उधर आश्रम में कक्षा का समय हो गया, बाकी शिष्य आदि शंकराचार्य से अध्ययन प्रारम्भ करने को कहने लगे, जबकि गुरुजी गिरि की प्रतीक्षा करना चाहते थे। कुछ शिष्यों ने गिरि के ज्ञान और उसके अध्ययन की उपयोगिता पर प्रश्न खड़े किए, तो आदि शंकराचार्य को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने गिरि को तत्क्षण व्यापक ज्ञान उपलब्ध कराकर असीम कृपा की और यह प्रमाणित कर दिया कि अनन्य गुरु भक्ति से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। गिरि को उन्होंने तोटकाचार्य नाम दिया और बाद में उत्तर में स्थापित ज्योतिर्पीठ का प्रथम शंकराचार्य बनवाया।

जीवन भर वैदिक धर्म की पुनप्र्रतिष्ठा के लिए शंकराचार्य ने जो प्रयत्न किए, उन्हें भविष्य में क्रियाशील रखने का प्रबन्ध करके उन्होंने 32 वर्ष की अल्पायु में महाप्रस्थान करने का निश्चय किया। अपने शिष्यों के साथ केदारधाम पहुंचे और उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा, ‘‘वत्स, इस शरीर का कार्य समाप्त हो गया है। अब स्वरूप में लीन होने का समय आ गया है। तुम लोगों को कुछ ज्ञातव्य हो तो पूछ लो।’’ परमशिष्य पद्मपाद ने सजल नयनों से कहा, ‘‘हे देव, आप की कृपा से हम लोग कृतकृत्य तथा सफल मनोरथ है।’’ शिष्यों को आशीर्वचन देते हुए शंकराचार्य ने स्वर्गारोहण किया।

इस अपूर्व विचारक, ब्रह्मज्योति से देदीप्यमान, दर्षनाचार्य, दैवीय प्रतिभा युक्त, युगद्रष्टा आचार्य को हमारा शत शत नमन।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 10.32 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.33॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः॥

"akṣarāṇām a-kāro 'smi,
dvandvaḥ sāmāsikasya ca..।
aham evākṣayaḥ kālo,
dhātāhaṁ viśvato- mukhaḥ"..।।

भावार्थ:

मैं सभी अक्षरों में ओंकार हूँ, मैं ही सभी समासों में द्वन्द्व हूँ, मैं कभी न समाप्त होने वाला समय हूँ, और मैं ही सभी को धारण करने वाला विराट स्वरूप हूँ। (३३)

Meaning:

Among the alphabets I am “A” and among grammatical compounds I am Dvandva. I only am the inexhaustible time. I am the provider facing all directions.

Explanation:

The word “akshara” means letter, but also means imperishable. Shri Krishna says that among the aksharas, the imperishable letters, Ishvara is manifested foremost in the letter “a”. In Sanskrit, all letters are formed by combining a half-letter with “a.” For example, क् + अ = क (k + a = ka). Hence, the letter “a” is the most important in the Sanskrit alphabet. “A” is also the first vowel of the alphabet, and since the vowels are written before the consonants, “A” comes at the very beginning.

So, because अ is the most fundamental letter or the most fundamental sound; and why do we say that it is the most fundamental sound, because

when you open your mouth and allow the wind to pass out, what will be the sound; what will come? Ah; when you open the mouth and allow the sound to come; letter anyone Chinese, Russian, Japanese, let them open the mouth clearly and allow the sound to come, it will be ah alone; and that is why when we want the children to open the mouth, what we say, you say show ah.

Although Sanskrit is such an ancient language, it is highly refined and sophisticated. A common procedure in Sanskrit language is to combine words to form compound words. When, in the process of making one compound word, two or more words give up their case endings, it is called samāsa, and the resulting word is called samāsa pada, or compound word. There are primarily six kinds of samāsa: 1) dwandva, 2) bahubṛihi, 3) karm dhāray, 4) tatpuruṣh, 5) dwigu, 6) avyayī bhāv. Amongst these, dwandva is the best because both words remain prominent in it, while in the others, either one word becomes more prominent, or both words combine together to give the meaning of a third word. The dual word Radha-Krishna is an example of dwandva. Shree Krishna highlights it as his vibhūti.

Previously, time was mentioned as the ultimate counter. Here, time is taken up in its infinite nature. It is that infinite time, “kaala”, which is prevalent before, during and after the creation of the universe. I am the kāla tatvam which puts an end to everything; but which itself does not have an end. So therefore, ākṣayaḥ kālaḥ means inexhaustible time. So, everything else gets exhausted in time, but the time continues throughout. In fact, even during pralaya kālam; everything is resolved, but kāla is there, working potentially. And because of the continuity of kāla alone, the next cycle of sr̥sti is possible. Do therefore Krishna say I am the kāla tatvam which is inexhaustible.

And dhātā ahaṃ; dhātā means the one who gives appropriate result for appropriate action; to the appropriate person, at the appropriate time; so I have got a cosmic computer; which cannot have (what virus, red hover) which will never be struck by any virus; a computer which has got in records, all the karmas of all the jīvās, done during all the time; the karma of ant, plant, animals, birds, living beings, dēvās, asurās, everything I have got, and at the right time, I give the karma phalam; And therefore only viśvatōmukhaḥ; my face is turned in all the 10 directions; because I have to see who is doing what karma; who is doing the mischief; so I observe all the karmas of all the people, register them and give the result at the appropriate time; therefore vishvato mukha; the face turned in all directions.

So, whenever we read literature in both prose and poetry form, or when we contemplate the results of our actions, we should always realize that it is Ishvara working through all of them.

।। हिंदी समीक्षा ।।

कोई भी संवाद बिना भाषा के सम्भव नही, अभिव्यक्ति चेहरे से, शरीर से एवम आचरण से हाव भाव या मनोदशा से व्यक्त तो की जा सकती है किंतु बिना संवाद के वो भी पूर्ण रूप से व्यक्त नही होती। फिर उस को विभिन्न स्थानों अपनी बात रखने एवम संजो कर रखने के लिए भाषा का सब से ज्यादा महत्व है। हिंदी की देवनागरी में स्वर एवम व्यंजन वर्ण है। यह संस्कृत से उत्पन्न है। जिस में किसी भी व्यंजन को बिना 'अ' के साथ व्यक्त नहीं किया जा सकता।

मैं अक्षरों में अकार हूँ यह सर्वविदित तथ्य है कि भाषा में स्वरों की सहायता के बिना शब्दों का उच्चारण नहीं किया जा सकता। सभी भाषाओं में संस्कृत की विशेष मधुरता उस में किये जाने वाले अकार के प्रयोग की प्रचुरता के कारण है। वस्तुत प्रत्येक व्यंजन में अ जोड़कर ही उसका उच्चारण किया जाता है। यह अ मानो उस में स्निग्ध पदार्थ का काम करता है, जिस के कारण नाद की कर्कशता दूर हो जाती है। इस अ के सहज प्रवाह के कारण शब्दों के मध्य एक राग और वाक्यों में एक प्रतिध्वनि सी आ जाती है। किसी सभागृह में संस्कृत मन्त्रों के दीर्घकालीन पाठ के उपरान्त, संवेदनशील लोगों के लिए एक ऐसे संगीतमय वातावरण का

अनुभव होता है, जो मानव मन के समस्त विक्षेपों को शान्त कर सकता है। प्रत्येक अक्षर का सारतत्त्व अकार है वह शब्दों और वाक्यों की सीमाओं को लांघकर वातावरण में गूंजता है और सभी भाषाओं की वर्णमालाओं में वह प्रथम स्थान पर प्रतिष्ठित है। अकार के इस महत्व को पहचान कर ही उपनिषदों में इसे समस्त वाणी का सार कहा गया है। पद्म पुराण में एवम पराशर भट्ट ने अष्टश्लोकी ग्रंथ में लिखा है ' अकारार्थो विष्णु:' अर्थात अकार का अर्थ विष्णु है। अतः भगवान भी यहाँ 'अ' को अपनी विभूति कहते है।

"अ" का उच्चारण स्वत: ही मुख के खोलने से ही होता है क्योंकि मुख के खोलने से जो वायु आती या जाती है, उस के साथ ही अ की ध्वनि भी उत्पन्न होती है। इसलिए प्रत्येक व्यंजन में अ जुड़ा है।

प्रणव अक्षर ॐ का प्रथम अ ही ओंकार स्वरूप है। यह 'अ' मैं ही हूँ।

यद्यपि संस्कृत ऐसी प्राचीन भाषा है जो अति परिष्कृत और सशक्त है। संस्कृत भाषा की सामान्य प्रक्रिया में एकल शब्दों को मिलाकर समास शब्द बनाए जाते हैं। जब दो या अधिक शब्द अपने सम्बन्धी शब्दों या विभक्तियों को छोड़कर एक साथ मिल जाते हैं तब उनके इस मेल को समास कहते हैं। समास द्वारा मिले हुए शब्दों को सामासिक शब्द अथवा समास पद कहा जाता है। प्रमुख रूप से छः प्रकार के समास हैं-1. द्वन्द, 2. बहुब्रीहि, 3. कर्मधारय, 4. तत्पुरुष, 5. द्विगु, 6. अव्यवीभाव।

दो शब्दों के समास में यदि पहला शब्द प्रधानता रखता है तो वह अव्ययी भाव समास होता है। यदि आगे का शब्द प्रधानता रखता है तो वह तत्पुरुष समास होता है। यदि दोनों शब्द अन्य के वाचक होते हैं तो वह बहुब्रीहि समास होता है। यदि दोनों शब्द प्रधानता रखते हैं तो वह द्वन्द्व समास होता है। जितने कि एक वैय्याकरण के लिए द्वन्द्व समास के दो पद। इन में से द्वन्द्व सर्वोत्तम है क्योंकि इनमें दोनों शब्दों की प्रमुखता होती है जबकि अन्य समासों में किसी एक शब्द की तुलना में दूसरे शब्द की अधिक प्रमुखता होती है या दोनों शब्दों का संयोग तीसरे शब्द का अर्थ स्पष्ट करता है। 'राधा-कृष्ण' यह दो शब्द द्वन्द समास का उदाहरण है।

जब आत्मा एवम परमात्मा में भेद मिट जाए एवम दोनों समान रूप से एक ही अर्थ बिना ऊंच नीच के हो, उस द्वंद समास को यहाँ भगवान श्रीकृष्ण अपनी विभूति बनाते हैं क्योंकि इसमें उभय पदों का समान महत्व है और इस की रचना भी सरल है। अध्यात्म ज्ञान के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि आत्मा और अनात्मा दोनों इस प्रकार मिले हैं कि हमें

वे एक रूप में ही अनुभव में आते हैं और उनका भेद स्पष्ट ज्ञात नहीं होता, परन्तु विवेकी पुरुष के लिए वे दोनों उतने ही विलग होते हैं

तीसवें श्लोक के पदों में आये काल का अर्थ कल्प, युग, वर्ष, अयन, मास, दिन, घड़ी और क्षण अर्थात गणना किये जाने वाले काल में और यहाँ आये अक्षय काल में यही अन्तर है वहाँ का जो काल है, वह एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता, बदलता रहता है। वह काल ज्योतिष शास्त्र का आधार है और उसी से संसार मात्र के समय की गणना होती है। काल की गति ही सृष्टि और उस के प्रत्येक जीव और जड़ की गति है। इसलिए काल के कारण ही जीव जन्म लेता और फिर बालक, युवा, वृद्ध हो कर मृत्यु को प्रदान होता है। परन्तु यहाँ का जो अक्षय काल है। टाइम मशीन की कल्पना काल की यात्रा ही है जो भूतकाल और भविष्य काल की यात्रा कर के जीव को उस के और सृष्टि के स्वरूप को दर्शा सके।

अक्षय काल जो महासर्ग से पहले और जो महाप्रलय के बाद भी विद्यमान है और समय की गणना करने वाले काल को भी अपने साथ महाप्रलय में समाप्त कर देता है। यह सनातन, शाश्वत, अनादि, अनन्त, नित्य और अक्षय परब्रह्म का स्वरूप ही है, इसलिये वह परमात्मस्वरूप होने से कभी बदलता नहीं। सामान्य भाषा मे जब बोला जाता है उस का काल आ गया, उस का अर्थ हम उस काल की करते है जो जीव की मृत्यु से करते है। यह अक्षय काल सब को खा जाता है और स्वयं ज्यों का त्यों ही रहता है अर्थात् इस में कभी कोई विकार नहीं होता। इस के अतिरिक्त जीव के विशिष्ट समय पर होने वाली समस्त घटनाओ का प्रतीक उस के विशिष्ट काल का प्रतीक है, जिस की गणना चाहे ज्योतिषी कर पाए या न कर पाए। उसी अक्षय काल जो प्रकृति और ब्रह्मांड से अतीत है, जिस की गणना नही हो सकती, उस काल को यहाँ भगवान् ने अपनी विभूति बताया है।

काल को तीन भेद 1) समय वाचक काल, 2) प्रकृति रूपी काल जो महाप्रलय के साम्यावस्था प्रकृति ही होती है 3) नित्य शाश्वत विज्ञानानन्द घन परमात्मा। सम्यवाचक स्थूल काल की अपेक्षा तो बुद्धि की समझ मे न आने वाला प्रकृति रूप काल सूक्ष्म और पर है और इस प्रकृति रूप काल से भी परमात्मा रूप काल अत्यंत सूक्ष्म, परातिपर और पराम श्रेष्ठ है, परमात्मा कहते है यही काल मै ही हूँ।

ईश्वर धाता अर्थात् कर्मफल विधाता है। संस्कारों के अनुसार मनुष्य कर्म करता है जिस का नियमानुसार उसे फल प्राप्त होता है। वह सृष्टि के प्रत्येक जड़ चेतन के कार्य के फलों का हिसाब रखता है और उस के अनुसार जीव अपने कर्मो के भोग भोगने के लिए विभिन्न

लोकों में जाता है और मोक्षके लिए पुनः पृथ्वी पर जन्म लेता है। असंख्य जीव की 84 लाख योनियों और कर्मों का पूरा लेखा जोखा रखने वाला धाता परमात्मा ही है। वह दशों दिशाओं की ओर मुख रखता है, इसलिए वह विश्वतोमुख है। विश्वतोमुख शब्द द्वारा यह कहा गया है कि आत्मा न केवल सब में एक है, किन्तु सब से विलक्षण भी है और वह प्रत्येक प्राणी में स्थित हुआ सर्वत्र देखता है। इस सम्पूर्ण भाव को केवल एक शब्द विश्वतोमुख में व्यक्त किया गया है।

विश्वतोमुख कह कर परमात्मा ने प्रत्येक जड़-चेतन में अपने ही स्वरूप का वर्णन किया है कि सभी ऐन्द्रिक मानसिक और बौद्धिक ग्रहणों के लिए चैतन्य आत्मा की कृपा आवश्यक है। इसलिये सब के कर्मो का फल लिखने वाले, सृष्टि की रचना करने वाले चार मुख वाले ब्रह्मा मै ही हूँ। ऐसा कहा जाता है कि चारो वेदों की रचना ब्रह्मा के चतुर्थ मुखों से हुई है, इसलिये मै ही विराट स्वरूप अर्थात सर्वत्र व्याप्त, सब को धारण, पालन पोषण करने वाला हूँ। अतः विभूति स्वरूप जन्म से लेकर धारण-पोषण करने वाला समस्त स्वरूप में एक ही परमात्मा जो जन्म से मृत्यु तक और मृत्यु के उपरांत भी, कर्म फल और मोक्ष और प्रकृति और योगमाया के द्वारा सभी प्राणी को धारण भी करते है और पोषण भी करते है।

समस्त श्रुतियो और भावनाओ को व्यक्त करने के आधार में अक्षर के मूल में, कभी भी नष्ट नही होने वाले समय में, असंख्य जीव के कर्म फलों के धाता में और जीव और ब्रह्म की समानता में जो भी हम जान सकते है, वह परमात्मा ही है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.33।।

।। स्वर और व्यंजन में 'अ' ।। विशेष 1 - गीता 10.33 ।।

हिंदी राष्ट्रभाषा होते हुए भी, हम लोगो की व्याकरण के मामले में कमजोर ही है। अतः समझने के लिए व्याकरण भी पढ़ लेते है।

हिन्दी वर्णमाला हिन्दी वर्णमाला के समस्त वर्णों को व्याकरण में दो भागों में विभक्त किया गया है- स्वर और व्यंजन। वर्णमाला स्वर- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ अनुस्वार- अं विसर्ग- अ: व्यंजन- क, ख, ग, घ, ङ च, छ, ज, झ, ञ ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़ त, थ, द, ध, न प, फ, ब, भ, म य, र, ल, व श, ष, स, ह गृहीत- ज़, फ़, ऑ संयुक्त

व्यंजन- क्ष, त्र, ज्ञ, श्र स्वर जिन वर्णों का उच्चारण करते समय साँस, कंठ, तालु आदि स्थानों से बिना रुके हुए निकलती है, उन्हें 'स्वर' कहा जाता है। व्यंजन जिन वर्णों का उच्चारण करते समय साँस कंठ, तालु आदि स्थानों से रुककर निकलती है, उन्हें 'व्यंजन' कहा जाता है। प्राय: व्यंजनों का उच्चारण स्वर की सहायता से किया जाता है। हिन्दी वर्णमाला के समस्त वर्णों को व्याकरण में दो भागों में विभक्त किया गया है- स्वर और व्यंजन। पंचमाक्षर अर्थात वर्णमाला में किसी वर्ग का पाँचवाँ व्यंजन। जैसे- 'ङ', 'ञ', 'ण' आदि। आधुनिक हिन्दी में पंचमाक्षरों का प्रयोग बहुत कम हो गया है और इसके स्थान पर अब बिन्दी (ं) का प्रचलन बढ़ गया है। विशेष :- भाषा की सार्थक इकाई वाक्य हैं। वाक्य से छोटी इकाई उपवाक्य , उपवाक्य से छोटी इकाई पदबंध , पदबंध से छोटी इकाई पद , पद से छोटी इकाई अक्षर और अक्षर से छोटी इकाई ध्वनि होती है ध्वनि को वर्ण भी कहते हैं।

जैसे :- पुन: = इसमें दो अक्षर हैं - पु , न । लेकिन इसमें वर्ण चार हैं = प् ,उ , न , ह आदि।

हिंदी भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि होती है। इसी ध्वनि को ही वर्ण कहा जाता है। वर्णों को व्यवस्थित करने के समूह को वर्णमाला कहते हैं। हिंदी में उच्चारण के आधार पर 45 वर्ण होते हैं। इनमें 10 स्वर और 35 व्यंजन होते हैं। लेखन के आधार पर 52 वर्ण होते हैं इसमें 13 स्वर , 35 व्यंजन तथा 4 संयुक्त व्यंजन होते हैं। वर्णमाला के दो भाग होते हैं :- 1. स्वर 2. व्यंजन 1. स्वर क्या होता है :- जिन वर्णों को स्वतंत्र रूप से बोला जा सके उसे स्वर कहते हैं। परम्परागत रूप से स्वरों की संख्या 13 मानी गई है लेकिन उच्चारण की दृष्टि से 10 ही स्वर होते हैं। 1. उच्चारण के आधार पर **स्वर 9** होते है :- अ, आ , इ , ई , उ , ऊ , ए , ऐ , ओ , औ आदि। 2. लेखन के आधार पर स्वर :- अ, आ, इ , ई , उ , ऊ , ए , ऐ , ओ , औ , अं , अ: , ऋ आदि। **व्यंजन क्या होता है** :- जो वर्ण स्वरों की सहायता से बोले जाते हैं उन्हें व्यंजन कहते हैं। **हर व्यंजन के उच्चारण में अ स्वर लगा होता है। अ के बिना व्यंजन का उच्चारण नहीं हो सकता।**

वर्णमाला में कुल 25 व्यंजन होते हैं।

कवर्ग : क , ख , ग , घ , ङ

चवर्ग : च , छ , ज , झ , ञ

टवर्ग : ट , ठ , ड , ढ , ण (ड़ ढ़) तवर्ग : त , थ , द , ध , न

पवर्ग : प , फ , ब , भ , म अंतस्थ : य , र , ल , व् (4)

उष्मा : श , ष , स , ह (4)

संयुक्त व्यंजन : क्ष , त्र , ज्ञ , श्र

इस के अतिरिक्त आ, अं, अः आदि अक्षर अ पर ही बिंदु, विसर्ग, आदि से हुए है।

कवर्ग से पवर्ग तक 25 व्यंजन स्पर्श भी कहलाते है।

यह वर्णमाला देवनागरी लिपि में लिखी गई है। देवनागरी लिपि में संस्कृत , मराठी , कोंकणी , नेपाली , मैथिलि भाषाएँ लिखी जाती हैं। हिंदी वर्णमाला में ऋ , ऌ , ॡ का प्रयोग नहीं किया जाता है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 1-गीता 10.33 ।।

।। समास ।। विशेष 2 - गीता 10.33 ।।

परमात्मा ने समास में द्वंद समास में अपनी विभूति को देखने को कहा तो द्वंद समास भी समझना जरूरी है।

समास दो अथवा दो से अधिक शब्दों से मिलकर बने हुए नए सार्थक शब्द को कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि "समास वह क्रिया है, जिसके द्वारा कम-से-कम शब्दों मे अधिक-से-अधिक अर्थ प्रकट किया जाता है।

समास का शाब्दिक अर्थ है- 'संक्षेप'। समास प्रक्रिया में शब्दों का संक्षिप्तीकरण किया जाता है।

समास के भेद या प्रकार - समास के छः भेद होते है-

अव्ययीभाव समास - (Adverbial Compound)

तत्पुरुष समास - (Determinative Compound)

कर्मधारय समास - (Appositional Compound)

द्विगु समास - (Numeral Compound)

द्वंद्व समास - (Copulative Compound)

बहुव्रीहि समास - (Attributive Compound)

अव्ययीभाव समास: जिस समास का पहला पद प्रधान हो और वह अव्यय हो उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं। जैसे - यथामति (मति के अनुसार), आमरण (मृत्यु तक) इन में यथा और आ अव्यय हैं।

कुछ अन्य उदाहरण -

आजीवन - जीवन-भर

यथासामर्थ्य - सामर्थ्य के अनुसार

यथाशक्ति - शक्ति के अनुसार

यथाविधि- विधि के अनुसार

यथाक्रम - क्रम के अनुसार

भरपेट- पेट भरकर

हररोज़ - रोज़-रोज़

हाथोंहाथ - हाथ ही हाथ में

रातोंरात - रात ही रात में

प्रतिदिन - प्रत्येक दिन

बेशक - शक के बिना

निडर - डर के बिना

निस्संदेह - संदेह के बिना

प्रतिवर्ष - हर वर्ष

अव्ययीभाव समास की पहचान - इसमें समस्त पद अव्यय बन जाता है अर्थात समास लगाने के बाद उसका रूप कभी नहीं बदलता है। इसके साथ विभक्ति चिह्न भी नहीं लगता। जैसे - ऊपर के समस्त शब्द है।

तत्पुरुष समास: जिस समास का उत्तरपद प्रधान हो और पूर्वपद गौण हो उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे - तुलसीदासकृत = तुलसी द्वारा कृत (रचित)

ज्ञातव्य- विग्रह में जो कारक प्रकट हो उसी कारक वाला वह समास होता है।

विभक्तियों के नाम के अनुसार तत्पुरुष समास के छह भेद हैं-

कर्म तत्पुरुष

(गिरहकट - गिरह को काटने वाला)

करण तत्पुरुष

(मनचाहा - मन से चाहा)

संप्रदान तत्पुरुष

(रसोईघर - रसोई के लिए घर)

अपादान तत्पुरुष

(देशनिकाला - देश से निकाला)

संबंध तत्पुरुष

(गंगाजल - गंगा का जल)

अधिकरण तत्पुरुष

(नगरवास - नगर में वास)

तत्पुरुष समास के प्रकार

नञ तत्पुरुष समास: जिस समास में पहला पद निषेधात्मक हो उसे नञ तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे -असभ्य, अंत, अनादि

संभवकर्मधारय समास: जिस समास का उत्तरपद प्रधान हो और पूर्वपद व उत्तरपद में विशेषण-विशेष्य अथवा उपमान-उपमेय का संबंध हो वह कर्मधारय समास कहलाता है। जैसे -

चंद्रमुख -चंद्र जैसा मुख

कमलनयन -कमल के समान नयन

दहीबड़ा - दही में डूबा बड़ा

द्विगु समास : जिस समास का पूर्वपद संख्यावाचक विशेषण हो उसे द्विगु समास कहते हैं। इससे समूह अथवा समाहार का बोध होता है। जैसे -

नवग्रह - नौ ग्रहों का समूह

दोपहर - दो पहरों का समाहार

त्रिलोक- तीन लोकों का समाहार

चौमासा - चार मासों का समूह

नवरात्र - नौ रात्रियों का

द्वंद्व समास: जिस समास के दोनों पद प्रधान होते हैं तथा विग्रह करने पर 'और', अथवा, 'या', एवं लगता है, वह द्वंद्व समास कहलाता है। जैसे-

पाप-पुण्य - पाप और पुण्य

अन्न-जल - अन्न और जल

सीता-राम - सीता और राम

खरा-खोटा - खरा और खोटा राधा-कृष्ण - राधा और कृष्ण

बहुव्रीहि समास: जिस समास के दोनों पद अप्रधान हों और समस्तपद के अर्थ के अतिरिक्त कोई सांकेतिक अर्थ प्रधान हो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। जैसे

दशानन - दश है आनन (मुख) जिसके अर्थात् रावण

नीलकंठ - नीला है कंठ जिसका अर्थात् शिव

सुलोचना - सुंदर है लोचन जिसके अर्थात् मेघनाद की पत्नी

पीतांबर - पीला है अम्बर (वस्त्र) जिसका अर्थात् श्रीकृष्ण

लंबोदर - लंबा है उदर (पेट) जिसका अर्थात् गणेशजी

कर्मधारय और बहुव्रीहि समास में अंतर; कर्मधारय में समस्त-पद का एक पद दूसरे का विशेषण होता है। इसमें शब्दार्थ प्रधान होता है। जैसे - नीलकंठ = नीला कंठ। बहुव्रीहि में समस्त पद के दोनों पदों में विशेषण-विशेष्य का संबंध नहीं होता अपितु वह समस्त पद ही किसी अन्य संज्ञादि का विशेषण होता है। इसके साथ ही शब्दार्थ गौण होता है और कोई भिन्नार्थ ही प्रधान हो जाता है। जैसे - नील+कंठ = नीला है कंठ जिसका अर्थात शिव।.

पदों की प्रधानता के आधार पर वर्गीकरण-

पूर्वपद प्रधान - अव्ययीभाव

उत्तरपद प्रधान - तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु

दोनों पद प्रधान - द्वंद्व

दोनों पद अप्रधान - बहुव्रीहि (इसमें कोई तीसरा अर्थ प्रधान होता है)

संधि और समास में अंतर: संधि वर्णों में होती है। इसमें विभक्ति या शब्द का लोप नहीं होता है। जैसे - देव+आलय = देवालय। समास दो पदों में होता है। समास होने पर विभक्ति या शब्दों का लोप भी हो जाता है। जैसे - माता-पिता = माता और पिता।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 2 - गीता 10.33 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.34॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥

"mṛtyuḥ sarva-haraś cāham,
udbhavaś ca bhaviṣyatām..।
kīrtiḥ śrīr vāk ca nārīṇāṁ,
smṛtir medhā dhṛtiḥ kṣamā"..।।

भावार्थ:

मैं ही सभी को नष्ट करने वाली मृत्यु हूँ, मैं ही भविष्य में सभी को उत्पन्न करने वाली सृष्टि हूँ, स्त्रीयों वाले गुणों में कीर्ति, सोन्दर्य, वाणी की मधुरता, स्मरण शक्ति, बुद्धि, धारणा और क्षमा भी मै ही हूँ। (३४)

Meaning:

I am death, destroyer of all. I am what emerges in the future. Among women I am fame, wealth, speech, memory, retention, fortitude and forgiveness.

Explanation:

We continue our journey through the manifestations of Ishvara. In order to remind us of the ephemeral nature of life, Shri Krishna says that among those forces that destroy things, Ishvara is death, the ultimate destroyer. Death is closely intertwined with time since everything is destroyed in the course of time.

There is a phrase in English, “as sure as death.” For one who is born, death is certain. All life inevitably ends in death, and thus the phrase, “dead end.” God is not merely the force of creation; he is also the force of destruction. He devours everything in the form of death. In the cycle of life and death, those who die are born again. Shree Krishna states that he is also the generating principle of all future beings.

So, I am the greatest robber, as it were, who will take away everything from a jīva. So, a robber may take away so of the things; but kala is one which snatches everything from us, because we can never carry anything with us at the time of death. So, one by one you drop, and when you leave this body, you cannot carry anything; what you carry is your own puṇyam and papam; other than that nothing can you carry. It is taken away by whom;

mṛtyuḥ. Therefore mṛtyuḥ, yama dharma rāja is called sarvaharaḥ; the one who takes away everything from you.

In the Puranaas, Lord Shiva commences the act of dissolution by performing a dance called “taandava nritya”, his drum called “damru” in hand. After dissolution is complete, Ishvara then emerges as the creative principle to begin the next round of creation. Ishvara is the “stuff” of the universe, as well as the energy pervading it.

So far, we have come across several manifestations of Ishvara. At times, we may find hard to connect some of these manifestations because we are not familiar with them. Shri Krishna is careful to not alienate us. He now provides a list of qualities that we see in ourselves and in others every day.

And I am the udbhavaḥ; the resource or source of all the future prosperity or future wealth; because if you have to produce anything in future, they all must be there potentially; we can never generate anything if that provision is not there, and Krishna says that provision is myself. Therefore, udbhavaḥ means I am the source or womb of all future prosperity.

Similarly, every organ of ours is governed by so many laws; Thunder, lightning, gravitation; anything you mention; anything within creation must be governed by inexorable laws of the Lord and if those laws are functioning, it is only because of an intelligence principle governing those laws. Because any law can function perfectly only when there is a governing principle and that is why whenever government introduces a law, an officer is required to take care of that. Once there are traffic laws, you require traffic police; only then the law will be maintained. Any law can exist, only if there is a law governing intelligence principle. And therefore, any object in creation is governed by laws and any law is governed by an intelligent principle and adding these two together, we require an intelligent principle to preside over every object.

Certain qualities are seen as adornments in the personality of women, while other qualities are viewed as especially praiseworthy in men. Ideally, a well-rounded personality is one that possesses both kinds of qualities. Here, Shree Krishna lists fame, prosperity, perfect speech, memory, intelligence, courage, and forgiveness, as virtues that make women glorious. The first three of these qualities manifest on the outside, while the next four manifest on the inside.

Besides this, the progenitor of humankind Prajapati Daksha had twenty- four daughters. Five of these were considered the best of women—Kirti, Smriti, Medha, Dhriti, and Kshama. Shree was the daughter of Sage Bhrigu. Vak was the daughter of Brahma. In accordance with their respective names, these seven women are the presiding deities of the seven qualities mentioned in this verse.

These qualities are : keerti (name and fame on account of performing virtuous deeds), shree (beauty and wealth), vaak (refined speech), smiriti (memory of events), medhaa (ability to retain information that was read), dhriti (fortitude in the face of exhaustion) and kshama (forgiveness in the face of sorrow). In Sanskrit grammar these words are feminine nouns. Shri Krishna says that Ishvara manifests himself as one or all of these qualities in people. Here, Shree Krishna enlists these qualities also as his vibhūtis.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जन्म से प्रतिक्षण मृत्यु को प्राप्त करता जीव, अपने अंतिम आघात में अपने साथ कुछ नही ले जा सकता। खाली हाथ आना और खाली हाथ जाना, यह संसार का नियम है, इसलिये मृत्यु को सर्वहर माना गया है, यह अपने साथ किसी भी जीव के समस्त सांसारिक रिश्ते-नाते, धन-संपत्ति, आशा- निराशा, पद और सम्मान सब को हरते हुए ले जाती है, कुछ शेष जाता है तो कर्म संस्कार और फलासक्ति से प्राप्त कर्मफल। मृत्यु एक सकून और शांति के रूप में एक देवी के समान स्वीकार किया जाने वाला किसी भी जीव का इस धरती का सत्य है। जिसे परमात्मा अपनी विभूति कह रहे है।

धनादि का नाश करने वाला और प्राणों का नाश करने वाला ऐसे दो प्रकार का मृत्यु सर्वहर कहलाता है, वह सर्वहर मृत्यु मैं हूँ अथवा परम ईश्वर प्रलयकाल में सब का नाश करने वाला होने से सर्वहर है। मृत्यु में हरण करने की ऐसी विलक्षण सामर्थ्य है कि मृत्यु के बाद यहाँ की स्मृति तक नहीं रहती, सब कुछ अपहृत हो जाता है। वास्तव में यह सामर्थ्य मृत्यु की नहीं है, प्रत्युत परमात्मा की है। अगर सम्पूर्ण का हरण करने की, विस्मृत करने की भगवत्प्रदत्त सामर्थ्य मृत्यु में न होती तो अपनेपन के सम्बन्ध को लेकर जैसी चिन्ता इस जन्म में मनुष्य को होती है, वैसी ही चिन्ता पिछले जन्म के सम्बन्ध को ले कर भी होती। मनुष्य न जाने कितने जन्म ले चुका है। अगर उन जन्मों की याद रहती तो मनुष्य की चिन्ताओं का, उस के मोह का कभी अन्त आता ही नहीं। परन्तु मृत्यु के द्वारा विस्मृति होने से पूर्वजन्मों के कुटुम्ब, सम्पत्ति आदि की चिन्ता नहीं होती। इस तरह मृत्यु में जो चिन्ता, मोह मिटाने की सामर्थ्य है, वह सब भगवान् की है। मैं सर्वभक्षक मृत्यु हूँ। मैं ही शिव हूँ।

शिव मृत्यु के देवता के रूप में संहारक माने जाते है। इसलिए कहा जाता है कि प्रलय काल में शिव तांडव नृत्य करना शुरू कर देते है। इसलिए सृष्टि का सौदर्य और संचालन का आधार उस का संहार और उद्भव में ही निहित है।

समानता की समर्थक मृत्यु, शासक के राजदण्ड और मुकुट को भी भिक्षु के भिक्षापात्र और दण्ड के स्तर तक ले आती है। प्रत्येक प्राणी केवल अपने जीवन काल में अनेक वस्तुओं और व्यक्तियों के संबंधों के द्वारा अपना एक भिन्न अस्तित्व बनाये रखता है। मृत्यु के पश्चात् विद्वान और मूढ़, पुण्यात्मा और पापात्मा, बलवान और दुर्बल, शासक और शासित ये सब धूलि में मिल जाते हैं, एक समान रूप बन जाते हैं जिन में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जा सकता।

मृत्यु यहां जड़ एवम चेतन्य के अलग अलग होने को कहा गया है जो इस प्रकृति का अटल सत्य है, किन्तु इस का समय और कारण का निर्धारण परमात्मा ही करता है।

कोई भी जीव जन्म, वृद्धि, स्थान या स्थिरता, सन्तानोपत्ति , क्षय और मृत्यु, यह छह परिवर्तनों से गुजरना पड़ता है। इसलिये जैसे मृत्यु अटल है, वैसे ही सृष्टि को चलायमान रखने के लिये जन्म में अटल है। भविष्य में होने वालों का मैं उत्पत्ति कारण हूँ परमात्मा केवल सर्वभक्षक ही नहीं, सृष्टिकर्ता भी है। हम देख चुके हैं कि वस्तुत एक अवस्था के नाश के बिना अन्य अवस्था का जन्म नहीं हो सकता है। किसी पक्ष को ही देखना माने जीवन का

एकांगी दर्शन करना ही हैं। वस्तु के नाश से शून्यता नहीं शेष रहती वरन् अन्य वस्तु की उत्पत्ति होती है।

समुद्र में उठती लहरों को अलग अलग देंखे तो सदा नाश ही होता दिखाई देगा, परन्तु एक के लय के साथ ही समुद्र में कितनी ही लहरें उत्पन्न होती रहती हैं, जिसका हमे ध्यान भी नहीं रहता है। इस सम्पूर्ण विवेचन का बल इसी पर है कि अनन्त परमात्मा अपने में ही रचना और संहार की क्रीड़ा निरन्तर कर रहा है जिस क्रीड़ा को हम विश्व कहते हैं। सब उत्पन्न होनेवालों की उत्पत्ति का हेतु भी मैं ही हूँ। तात्पर्य है कि संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाला मैं ही हूँ। अतः मृत्यु से अमृत तक परमात्मा की ही विभूति है।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे भविष्य में उत्पन्न होने वाले सभी प्राणियों के प्रजनन सिद्धान्त हैं। स्त्रियों के व्यक्तित्त्व में कुछ गुण अलंकारों के रूप में देखे जाते हैं जबकि पुरुषों में अन्य गुणों को विशेषतः प्रशंसनीय रूप में देखा जाता है। आदर्श रूप से बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व वह है जो दोनों प्रकार के गुणों से सम्पन्न हो। यहाँ श्रीकृष्ण ने कीर्ति, समृद्धि, मृदुवाणी, स्मृति, बुद्धि, साहस और क्षमा आदि गुणों का उल्लेख किया है जो स्त्रियों को गौरवशाली बनाते हैं। इनमें प्रथम तीन बाह्य रूप से और अगले चार आंतरिक रूप में प्रकट होते हैं।

इन में से कीर्ति, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा - ये पाँच प्रजापति दक्ष की कन्याएँ हैं। श्री - महर्षि भृगु की कन्या है और वाक् ब्रह्माजी की कन्या है। कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा - ये सातों स्त्रीवाचक नाम वाले गुण भी संसार में प्रसिद्ध हैं। सद्गुणों को लेकर संसार में जो प्रसिद्धि है, प्रतिष्ठा है, उसे कीर्ति कहते हैं।

कीर्ति, मेधा और क्षमा का विवाह धर्म से हुआ, स्मृति अंगिरा जी से, क्षमा पुलह ऋषि से और श्री विष्णु से हुआ। श्री कीर्ति की पुत्री है।

जन सामान्य की भाषा मे - स्थावर और जङ्गम - यह दो प्रकार का ऐश्वर्य होता है। जमीन, मकान, धन, सम्पत्ति आदि स्थावर ऐश्वर्य है और नकद, बैंक बैलेंस, आभूषण, गाड़ी आदि जङ्गम ऐश्वर्य हैं। इन दोनों ऐश्वर्यों को श्री कहते हैं। जिस वाणी को धारण करने से संसार में यश प्रतिष्ठा होती है और जिस से मनुष्य पण्डित, विद्वान् कहलाता है, उसे वाक् कहते हैं। पुरानी सुनी समझी बात की फिर याद आने का नाम स्मृति है। बुद्धि की जो स्थायीरूप से धारण करने की शक्ति है अर्थात् जिस शक्ति से विद्या ठीक तरह से याद रहती है, उस शक्ति का नाम मेधा है। मनुष्य को अपने सिद्धान्त, मान्यता आदि पर डटे रखने तथा उन

से विचलित न होने देने की शक्ति का नाम धृति है। दूसरा कोई बिना कारण अपराध कर दे, तो अपने में दण्ड देने की शक्ति होने पर भी उसे दण्ड न देना और उसे लोक परलोक में कहीं भी उस अपराध का दण्ड न मिले - इस तरह का भाव रखते हुए उसे माफ कर देनेका नाम क्षमा है। कीर्ति, श्री और वाक् - ये तीन प्राणियों के बाहर प्रकट होनेवाली विशेषताएँ हैं तथा स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा - ये चार प्राणियों के भीतर प्रकट होने वाली विशेषताएँ हैं। इन सातों विशेषताओँ को भगवान् ने अपनी विभूति बताया है। जिस किसी व्यक्ति में एवम स्वयं ये गुण दिखायी दें तो उसे भगवान् की ही विशेषता माननी चाहिये। कारण कि यह दैवी (भगवान् की) सम्पत्ति है। इन गुणों को अपना मान लेने से अभिमान पैदा होता है और अभिमान सम्पूर्ण आसुरी सम्पत्ति का जनक है।

प्रकृति को नारी स्वरूप माना गया है और जीव पुरुष। इसलिये देह पिंड नारी या पुरुष के अंतर को त्याग कर इन सात गुणवान स्त्रियों की बात की गई है जो हर जीव का लक्ष्य होना चाहिए। स्त्रियोचित गुणों में स्त्री प्रकृति की सुंदरतम रचना है तो उस का कारण उस का सौंदर्य, कोमल एवम ममतामयी स्वभाव, धारण और जन्म देने की क्षमता है। इसलिये किसी के संसार मे रहने के श्रेष्ठतम गुणों को भी स्त्रियोचित गुण बताया गया। उस के निष्काम कर्म में कर्तव्य पालन के लक्ष्य इन सात स्त्रियों को वरण करना है, इन के पीछे नही भागना। **अर्जुन महान योद्धा हो कर अपनी कीर्ति एवम श्री तो त्यागने को तैयार हो गया। उस की वाक, स्मृति, मेधा एवम घृति मोह, भय एवम अहम से नष्ट हो गए एवम वो शास्त्रों की आड़ ले कर युद्ध से पलायन करने को तैयार था। ऐसे में निष्काम भाव से कर्तव्य का पालन क्यों आवश्यक है यह पुरुष द्वारा जिन स्त्रियों का वरण करना चाहिए, उस के हिसाब से इस श्लोक को समझना चाहिए।**

वरण का अर्थ, हमारी स्वयं की मनोदशा है, जब अनियंत्रित मन द्वारा जिस स्त्री के दर्शन से चित्त का, स्पर्श से बल का एवम संभोग से वीर्य का नाश हो, वह स्त्री वरण पुरुष के लिये व्यभिचारिणी -राक्षसी स्वभाव का होता है, उस से सावधान रहने की आवश्यकता है। हिन्दू धर्म मे कर्म की प्रधानता एवम मोक्ष की प्राप्ति को अत्यधिक बल दिया गया है, अतः गृहस्थ आश्रम भी सामाजिक एवम नैतिक सृष्टि यज्ञ चक्र का हिस्सा माना गया है। सन्तानोपत्ति के कामदेव को अपना स्वरूप कहते हुए, परमात्मा ने वासना युक्त काम से सावधान रहने को कहा है क्योंकि जब वासना का मन मे वास होता है तो वह सब से पहले चित्त अर्थात विवेक का हरण कर लेती है और विवेक के हरण से जीव अपनी कार्य क्षमता एवम बल और बुद्धि का नाश कर देता है और आसुरी वृति के गर्त में चला जाता है। **इसलिये मनुष्य को नारी को**

पराभक्ति स्वरूप में धारण या वरण करना चाहिए। पराभक्ति स्वरूप में नारी का रूप एवम लावण्य माया रूपी नारी के समान उस के मन, बुद्धि और विवेक का हरण नही करता। हिन्दू संस्कृति में नारी के विभिन्न रूपो में पूजा पराभक्ति स्वरूप नारी का वरण है, जिस से नारी के रूप में वासना का त्याग हो कर कीर्ति, श्री, वाक, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा स्वरूपी नारी का वरण किया जा सके। अतः इन का वरण वही कर सकता है जो निष्काम कर्मयोगी हो कर ज्ञान एवम धर्म द्वारा इन्द्रिय, मन, बुद्धि के संयम को प्राप्त कर चुका है। भावार्थ में कीर्ति, श्री, वाक, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा गुण के प्रति लोभ या वासना हो तो यह प्राप्त नहीं हो सकती।

इस ब्रह्मांड में प्रत्येक ग्रह, नक्षत्र, सौर मंडल और आकाश गंगा अपने नियम में कार्य कर रहा है। सूर्य अपनी धुरी पर घूम रहा है और पृथ्वी अपनी धुरी और सूर्य के चारो ओर घूम रही है। इसलिए सभी अपने अपने कार्य को नियमित गति में कर रहे है।

इसी प्रकार हमारा प्रत्येक अंग अनेक कानूनों द्वारा संचालित होता है; गड़गड़ाहट, बिजली, गुरुत्वाकर्षण; आप जो कुछ भी उल्लेख करते हैं; सृष्टि के भीतर कुछ भी भगवान के कठोर कानूनों द्वारा शासित होना चाहिए और यदि वे कानून कार्य कर रहे हैं, तो यह केवल उन कानूनों को नियंत्रित करने वाले एक खुफिया सिद्धांत के कारण है। क्योंकि कोई भी कानून तभी पूर्ण रूप से कार्य कर सकता है जब उसके पास एक शासकीय सिद्धांत हो और इसीलिए जब भी सरकार कोई कानून लाती है तो उसकी देखभाल के लिए एक अधिकारी की आवश्यकता होती है। एक बार यातायात कानून बन जाने पर, आपको यातायात पुलिस की आवश्यकता होती है; तभी कानून कायम रहेगा. कोई भी कानून तभी अस्तित्व में रह सकता है, जब खुफिया सिद्धांत को नियंत्रित करने वाला कोई कानून हो। और इसलिए सृष्टि में कोई भी वस्तु कानूनों द्वारा शासित होती है और कोई भी कानून एक बुद्धिमान सिद्धांत द्वारा शासित होता है और इन दोनों को एक साथ जोड़ने पर, हमें प्रत्येक वस्तु की अध्यक्षता करने के लिए एक बुद्धिमान सिद्धांत की आवश्यकता होती है।

इसलिए जीवन में कुछ पाना है तो हम उस सिद्धांत के बाहर जा कर वही प्राप्त करेंगे, जो उस अनियमित कार्य के लिए लिखा है। बुरे कर्म का फल भी वही होगा, जिसके लिए कर्म किया है।

'कर्म प्रधान विश्व करि राखा' तुलसीकृत यह कथन इस बात का प्रतीक है कि इस सृष्टि की रचना का आधार या उत्पति रूप में कर्म की प्रधानता है। इसलिये भगवान युद्ध भूमि में

खड़े अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा देते हुए कहते है कि त्यागने की चीज कर्म के फल की आसक्ति है, कर्म की नही। कर्म का त्याग तो परमात्मा के त्याग के समान होगा।

मृत्यु, जन्म परमात्मा के हाथ मे है तो जीव को निष्काम भाव से कर्म करते हुए इस प्रकार से कर्म करे जिस से इन सात स्त्रियों वरण करे। कर्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य आदि में इन गुणों को देखा जा सकता है जिस के कारण लोग उन्हें आज भी महान कहते है।

।। हरि ॐ तत सत। 10.34।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.35॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः॥

"bṛhat-sāma tathā sāmnāṁ,
gāyatrī chandasām aham..।
māsānāṁ mārga-śīrṣo 'ham,
ṛtūnāṁ kusumākaraḥ"..।।

भावार्थ:

मैं सामवेद की गाने वाली श्रुतियों में बृहत्साम हूँ, मैं छंदों में गायत्री छंद हूँ, मैं महीनों में मार्गशीर्ष और मैं ही ऋतुओं में वसंत हूँ। (३५)

Meaning:

Among the Saamas I am Brihat-saama, also, among the poetic metres I am Gaayatri. Among the months I am Maargasheersha, and among the seasons I am spring.

Explanation:

Previously, we came across the Saama Veda as one of Ishvara's manifestations. Within the Saama Veda, there is a chant called the **Brihat-Saama mantra,** an invocation that is sung for praising Lord Indra.

Brihad sāma is supposed to be a very auspicious mantra: it starts with au ho e thaavam iti havamahe; which is glorification of the Lord and the Lord being great and since this mantra is glorified the great Lord; it is called brihad sāma. It is not the mantra is big; mantra is relatively small only. only 2 minutes or 3 minutes chanting; even though the mantra is smaller; mantra is glorifying the Lord, who is the infinite one and therefore it is called Brihad sāma; Brihadīśvara sthavana sāma; Brihadīśvara temple you have called; why called Brihadīśvara; huge one; so this mantra glorifies the infinite Lord; it is called brihad sāma; a very popular one; among sāma vēdīs, Since it is Brihat, the most potent and powerful among the Saama Veda mantras, Shri Krishna terms it as a foremost expression of Ishvara.

In prior chapters of the, we have seen the use of the poetic metre as a tool to emphasize the change in topic. Let us delve deeper into this. The Gita is composed in the “Anushtup chandas” . Chandas means metre. It is made up of 4 lines or padas, each comprising 8 syllables. For example, let us see a famous shloka: “ya-da-ya-da-hi-dharm-as-ya”. It contains 8 syllables. There are 3 more lines like this. So we get 8 times 4 equals 32 syllables.

The Gaayatri mantra is considered to be the root and essence of all Vedic mantras. It is composed in a metre of the same name. The Gaayatri metre is made up of 4 lines each comprising 6 syllables. The first line is “tat-sa-vi-tur-vareni-yam”. Therefore, the Gaayatri mantra as well as the associated metre, foremost among all the mantras, are Ishvara’s expression.

The Sanskrit language, like other languages, has distinctive systems of rhymes and meters for writing poetry. The poetry of the Vedas is in many meters. Amongst these, the Gayatri meter is very attractive and melodious. A famous mantra set in this meter is the Gayatri mantra. It is also a deeply meaningful prayer:

bhūrbhuvaḥ swaḥ tatsaviturvareṇyaṁ bhargo devasya dhīmahi dhiyo yo naḥ prachodayāt (Rig Veda 3.62.10)[v31]

“We meditate upon the Lord who is illuminating the three worlds and is worthy of our worship. He is the remover of all sins and the destroyer of ignorance. May he illumine our intellects in the proper direction.” The Gayatri mantra is a part of the sacred thread ceremony for young males and is recited as a part of the daily rituals. The Devi Gayatri, the Rudra Gayatri, the Brahma Gayatri, the Paramhansa Gayatri, and several other Gayatri mantras are also found in the Vedas.

Next, Shri Krishna elaborates upon weather and seasons. He says that among all the months, Ishvara is the month of Maargasheersha of the Indian calendar. It corresponds to the November- December time period and culminates in the festival of Makara Sankranti. The crops in the field are harvested at this time of the year. For these reasons it is often the favorite month of the people.

Basant (spring season) is known as ṛitu rāja, or the king of seasons. It is a time when nature seems to be euphorically bursting forth with life. Many festivals are celebrated in spring, epitomizing the joy that pervades the atmosphere. Thus, amongst the seasons, spring manifests God’s opulence the most.

He then goes on to say that among the seasons, Ishvara is Kusumaakara, which refers to spring, the flower- bearing season. Both Margasheersha and Kusumaakara are not too hot and not too cold. They are conducive to generating serenity in the mind, and that is why they are considered foremost expressions of Ishvara.

।। हिंदी समीक्षा ।।

मैं सामों में बृहत्साम हूँ भगवान् ने पहले कहा था कि वेदों में सामवेद मैं हूँ। अब यहाँ सामवेद में भी विशेषता बताते हैं कि मैं सामों में बृहत्साम हूँ। ऋग्वेद की जिन ऋचाओं को सामवेद में गाया जाता है उन्हें साम कहते हैं। उनमें एक साम वह है जिस में इन्द्र की सर्वेश्वर के रूप में स्तुति की गई है, जिसे बृहत्साम कहते हैं।

बृहद साम साम मंत्र का उचित नाम है; यह एक बहुत ही शुभ मंत्र माना जाता है: यह औ हो ए थवम् इति हवामहे से शुरू होता है; जो भगवान की महिमा है और भगवान महान हैं और चूँकि यह मंत्र महान भगवान की महिमा करता है; इसे बृहद समा कहा जाता है। ऐसा नहीं है कि मंत्र बड़ा है; मन्त्र अपेक्षाकृत छोटा ही है। केवल 2 मिनट या 3 मिनट का जप; यद्यपि मन्त्र छोटा है; मंत्र भगवान की महिमा कर रहा है, जो अनंत है और इसलिए इसे बृहद साम कहा जाता है; बृहदेश्वर स्थावन समा; आपने बृहदेश्वर मंदिर बुलाया है; बृहदीश्वर क्यों कहा जाता है; बहुत बड़ा; तो यह मंत्र अनंत भगवान की महिमा करता है; इसे बृहद साम कहा जाता है; एक बहुत लोकप्रिय; साम वेदियों के बीच, इसलिए कृष्ण कहते हैं; मैं बृहद साम मंत्र हूं.

बृहत्साम में स्तुति के दो मुख्य स्तुति इस प्रकार है।

त्वमिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

हे इन्द्ररूप परमेश्वर! हम श्रोता अन्नवृद्धि के लिये आप का ही आह्वान करते हैं। विवेकशील मनुष्य भी शत्रुओं की शत्रुता से आक्रान्त होने पर जब सब प्रयत्न कर के भी हारने लगते हैं, तो आप को ही पुकारते हैं ॥ १ ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महस्तवानो अद्रिवः । गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

हे अतुल पराक्रमी, हाथ में विचित्र वज्र धारण करनेवाले, स्वयं के तेज से प्रकाशित इन्द्ररूप परमेश्वर ! आप हमें गोधन, रथ के योग्य कुशल अश्व, अन्न तथा ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ २ ॥

वस्तुतः यह परमात्मा के प्रति अनुग्रह और समर्पण के अनूठे श्लोक है, इसलिये इन्हें विभूति कहा गया है।

मैं छन्दों में गायत्री हूँ वेद मन्त्रों की रचना विविध छन्दों में की गई है। इन छन्दों में गायत्री छन्द मैं हूँ। जन्मत सभी मनुष्य संस्कारहीन होते हैं। हिन्दू धर्म में बालक का उपनयन संस्कार गायत्री मन्त्र के द्वारा ही होता है, जिसकी रचना गायत्री छन्द में है। अत इस छन्द को विशेष महत्व प्राप्त है। ब्राह्मण लोग प्रातकाल और सांयकाल संध्यावन्दन के समय इस मन्त्रोच्चार के द्वारा सूर्य को अर्ध्य प्रदान करते हैं। यह मन्त्र अत्यन्त शक्तिशाली एवं प्रभावशाली माना जाता है। गायत्री को वेदजननी कहते हैं क्योंकि इसी से वेद प्रकट हुए हैं। स्मृतियों और शास्त्रों में गायत्री की बड़ी भारी महिमा गायी गयी है। गायत्री में स्वरूप, प्रार्थना और ध्यान - तीनों परमात्मा के ही होने से इस से परमात्मतत्त्व की प्राप्ति होती है। इसकि रचना अपने लक्ष्य से तीन बार विचलित होने पर विश्वामित्र जी द्वारा तीनों लोकों में तत्व रूप में व्याप्त भू:, भुव एवम स्व: देव को वरेण्य कहते हुए स्थिर बुद्धि देने एवम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रेरणा देने के लिये प्रार्थना स्वरूप में की गई है। जब असमंजस की स्थिति हो, बुद्धि निर्णय लेने में असमर्थ हो तो यह समर्पित रूप में प्रार्थना के रूप में की जाती है। इसलिये भगवान् ने अपनी विभूति बताया है। गायत्री मंत्र भी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये परमात्मा के प्रति समर्पण भाव की स्तुति है।

अन्य भाषाओं के समान संस्कृत भाषा में काव्य रचना के लिए विशिष्ट पद्यों और छंदो की व्यवस्थाएँ हैं। वेदों के काव्यों में कई छंद हैं। इनमें गायत्री अति आकर्षक और मधुर है। जिस छंद में प्रसिद्ध मंत्र सम्मिलित है वह गायत्री मंत्र ही है। यह गहन सार्थक प्रार्थना भी है।

ओउम् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् (ऋग्वेद-3.62.10)

"हम तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले और हमारे लिए पूजनीय भगवान का ध्यान करते हैं। वह सभी पापों का और अज्ञानता का विनाश करता है। वह हमारी बुद्धि को उचित दिशा की ओर प्रकाशित करे।" गायत्री मंत्र युवा पुरुषों के लिए पवित्र जनेऊ संस्कार का भी अंग है और दैनिक धार्मिक अनुष्ठानों में गाया जाता है। इसके अतिरिक्त देवी गायत्री, रुद्र गायत्री, ब्रह्म गायत्री, परमहंस गायत्री और कुछ अन्य गायत्री मंत्र भी वेदों में मिलते हैं।

गायत्री शब्द के भी दो अर्थ हैं; एक विशेष प्रकार का मीटर है जिसे गायत्री मीटर कहा जाता है। तो किस प्रकार का मीटर; एक मीटर जिसमें तीन लाइनें होती हैं; और प्रत्येक पंक्ति में 8 अक्षर हैं। तो अष्टाक्षर त्रिपथ गायत्री; 3 पद, 3 पंक्तियाँ तथा प्रत्येक में 8 अक्षर होने को गायत्री छंद कहते हैं और इसका एक दूसरा अर्थ भी है; गायत्री का तात्पर्य एक

विशेष मंत्र से भी है; गायत्री मंत्र जो बहुत लोकप्रिय है, आजकल कुछ लोगों के लिए गायत्री जपम होता है जिसमें वे गायत्री जप आवृति करते हैं।

मैं मासों में मार्गशीर्ष हूँ अंग्रेजी महीनों के अनुसार दिसम्बर और जनवरी के भाग मार्ग शीर्ष हैं। भारत में, इस मास को पवित्र माना गया है। जलवायु की दृष्टि से भी यह सुखप्रद होता है, क्योंकि इस मास में न वर्षा की आर्द्रता या सांद्रता होती है और न ग्रीष्म ऋतु की उष्णता। महाभारतकाल में नया वर्ष मार्गशीर्ष से ही आरम्भ होता था। इन विशेषताओं के कारण भगवान् ने मार्गशीर्ष को अपनी विभूति बताया है।

मार्गशीर्ष यानी अगहन महीना श्रीकृष्ण और विष्णु पूजा के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है। इस महीने में शंख पूजा, नदी स्नान, दान, भजन- कीर्तन और पूजा-पाठ करने का विशेष महत्व है। अगहन महीने में श्रीकृष्ण और भगवान विष्णु की पूजा करने से हर तरह के पाप खत्म हो जाते हैं और पुण्य प्राप्त होता है। इस के साथ ही भागवत महापुराण और विष्णु पुराण के अनुसार इस महीने क्या करें और क्या नहीं, ऐसी ही कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए।

मैं ऋतुओं में बसन्त हूँ प्रकृति को सुस्मित करने वाली बसन्त ऋतु मैं हूँ। समस्त सृष्टि की दृश्यावलियों को अपने सतरंगी सन्देश और सुरभित संगीत से हर्ष विभोर करने वाला ऋतुराज पर्वत पुष्पों के परिधान पहनते हैं। भूमि हरितवसना होती है। सरोवर एवं जलाशय उत्फुल्ल कमलों की हंसी से खिलखिला उठते हैं। मैदानों में हरीतिमा के गलीचे बिछ जाते हैं। सभी हृदय किसी उत्सव की उमंग से परिपूर्ण हो जाते हैं। सृष्टि के हर्षातिरेक को राजतिलक करने के लिए चन्द्रिका स्वयं को और अधिक सावधानी से सँवारती है। वसन्त ऋतु में बिना वर्षा के ही वृक्ष, लता आदि पत्रपुष्पों से युक्त हो जाते हैं। इस मौसम भी सर्द-गर्म में सम भाव होता है और पतझड़ के बाद प्रकृति पुनः पल्लवित होने से वातावरण रमणीक रहता है। जिस से प्रकृति सौदर्य और आनन्द के कारण मन भी आनंद मय रहता है। इसलिये भगवान् ने वसन्त ऋतु को अपनी विभूति कहा है।

लक्ष्य के प्रति व्यक्ति के कर्म में समर्पण भाव, अभिमान रहित होने से लक्ष्य प्राप्त होता है और जो समय श्रेष्ठ होता है, उस का आनन्द लेना ही परमात्मा की विभूति है।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.35।।

।। गायत्री मंत्र ।। विशेष - गीता 10.35 ।।

गायत्री मंत्र की अधिष्ठाता गायत्री देवी के बारे में कुछ किदवंतियाँ प्रचलित है, जिस में पुष्कर में ब्रह्मा द्वारा यज्ञ और सरस्वती द्वारा उन को श्राप की भी एक किदवंती है। वस्तुतः गायत्री मंत्र विश्वामित्र के ब्रह्मऋषि बनने के संकल्प में तीन बार निष्फल होने के बाद परमात्मा की शरण हो कर आराधना से विश्वामित्र जी तैयार किया हुआ मंत्र है, जिस से उन का अहम एवम भोक्तत्व भाव समाप्त हो कर, उन्हें ब्रह्मऋषि का पद प्राप्त हुआ। गायत्री मंत्र को देवी स्वरूप परमात्मा द्वारा संरक्षण देने के ममतामयी स्त्रीत्व स्वरूप में गायत्री देवी के स्वरूप की कल्पना की गई।

ऐसा भी कहा जाता है कि प्रमेष्टि प्रजापति ब्रह्माजी ने मुख्य तीन वेद लिये। तो तीन वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद हैं और मुख्य माने जाते हैं, क्योंकि इन का उपयोग मुख्य रूप से अनुष्ठानों में किया जाता है; अथर्ववेद का अनुष्ठानों में अधिक उपयोग नहीं किया जाता है और इसलिए वे इसमें शामिल नहीं हैं।
तीन वेद में से ब्रह्माजी सार को बाहर निकालना चाहते है; क्योंकि वेद विशाल हैं,इसलिये फिर वेदों को मथा और ऋग्वेद सार आया; तस्ता विधुर वरेण्यम; गायत्री की पहली पंक्ति ऋग्वेद है। फिर उन्होंने यजुर्वेद को मथा और यजुर्वेद का सार मिला; भर्गो देवस्य थिमहि;
फिर उन्होंने सामवेद को मथा, किंतु उस से तपस मिला और फिर तप से सार मिला; धिह्यो योना प्रचोदयात्; इसलिए यह श्लोक कहता है. थिस्रेवेतु वेदेभ्य पदं पदं अदु दुहत्; जिस का अर्थ है, ब्रह्माजी ने गायत्री का एक एक पद निकाला; पाद, पाद का अर्थ है पंक्ति, तीन वेदों से और उन्हें मंत्र मिल गया जिसे मूल रूप से सावित्री मंत्र कहा जाता है।

अन्य किदवंती है, यह मन्त्र सर्वप्रथम ऋग्वेद में उद्धृत हुआ है। इस के रचियता ऋषि विश्वामित्र हैं और देवता सविता हैं। वैसे तो यह मन्त्र विश्वामित्र के इस सूक्त के 18 मन्त्रों में केवल एक है, किन्तु अर्थ की दृष्टि से इसकी महिमा का अनुभव आरम्भ में ही ऋषियों ने कर लिया था और सम्पूर्ण ऋग्वेद के 10 सहस्र मन्त्रों में इस मन्त्र के अर्थ की गम्भीर व्यंजना सब से अधिक की गई। इस मन्त्र में 24 अक्षर हैं। उनमें आठ आठ अक्षरों के तीन चरण हैं। किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में और कालान्तर के समस्त साहित्य में इन अक्षरों से पहले तीन व्याहृतियाँ और उनसे पूर्व प्रणव या ओंकार को जोड़कर मन्त्र का पूरा स्वरूप इस प्रकार स्थिर हुआ:

(१) ॐ(२) भूर्भव: स्व:(३) तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्।

मन्त्र के इस रूप को मनु ने सप्रणवा, सव्याहृति का गायत्री कहा है और जप में इसी का विधान किया है।

गायत्री तत्व क्या है और क्यों इस मन्त्र की इतनी महिमा है, इस प्रश्न का समाधान आवश्यक है। आर्ष मान्यता के अनुसार गायत्री एक ओर विराट् विश्व और दूसरी ओर मानव जीवन, एक ओर देवतत्व और दूसरी ओर भूततत्त्व, एक ओर मन और दूसरी ओर प्राण, एक ओर ज्ञान और दूसरी ओर कर्म के पारस्परिक सम्बन्धों की पूरी व्याख्या कर देती है। इस मन्त्र के देवता सविता हैं, सविता सूर्य की संज्ञा है, सूर्य के नाना रूप हैं, उन में सविता वह रूप है जो समस्त देवों को प्रेरित करता है। जाग्रत् में सवितारूपी मन ही मानव की महती शक्ति है। जैसे सविता देव है वैसे मन भी देव है। मन ही प्राण का प्रेरक है। मन और प्राण के इस सम्बन्ध की व्याख्या गायत्री मन्त्र को इष्ट है। सविता मन प्राणों के रूप में सब कर्मों का अधिष्ठाता है, यह सत्य प्रत्यक्षसिद्ध है। इसे ही गायत्री के तीसरे चरण में कहा गया है।

गायत्री मंत्र में 'सविता' शब्द बहुत महत्वपूर्ण अर्थ रखता है। यही इस मंत्र का प्राण है। पूरे गायत्री में सविता ही अधिष्ठान है। शब्द की दृष्टि से भी सविता बहुआयामी अर्थ का द्योतक है। सविता केवल प्रकाशवान ही नहीं है, अपितु सृष्टा, पोषक, रक्षक व दाता है। गायत्री महाविद्या के सिद्ध पुरुष पूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्यजी ने कहा है कि यह सविता समस्त प्राणियों के स्वामी हैं, प्रसविता और परित्राता हैं। मनुष्यों का परित्राण करने में परमात्मा की यही एकमात्र स्थूल अभिव्यक्ति माध्यम है जिसका आश्रय लेकर मनुष्य अपना बेड़ा पार लगा सकता है। उन्होंने सविता पर गहन शोध किया और गायत्री के इस सविता को या कहें कि सविता प्राण रूपी गहन गायत्री को सबके लिए सुलभ बना दिया।

वैसे सविता शब्द से साधारणत: सूर्य का अर्थ प्रकट होता है क्योंकि प्रत्यक्षत: वही तेजस्वी और प्रकाशवान है। परमात्मा की वह अप्रत्यक्ष शक्ति, जो तेज के रूप में हमारे स्थूल नेत्रों के सामने आती है वह सूर्य है, इसलिए स्थूल अर्थों में इस सूर्य नामक ग्रह को सविता कहते हैं। परंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि यह चमकनेवाला अग्निपिण्ड ही पूर्ण सविता नहीं है। आध्यात्मिक भाषा में सविता कहते हैं तेजस्वी को, प्रकाशवान को, उत्पन्न करनेवाले को। परमात्मा की अनंत शक्तियां हैं, उसके अनेक रूप हैं। उनमें तेजस्वी शक्तियों को सविता कहा जाता है।

परमात्मा की जिस शक्ति से हमें प्रयोजन होता है, जिसको अपनी ओर आकर्षित करना होता है, उसका ध्यान, स्मरण या जप किया जाता है। पूजा उपादानों के द्वारा उस शक्ति को

अपने अभिमुख बनाया जाता है। रेडियो की सुई को जिस नंबर पर घुमा दिया जाता है, उस नंबर के मीटरवालों से उस रेडियो का संबंध स्थापित हो जाता है और उस में चलने वाली शब्दल हरी सुनाई पड़ने लगती है। इस विज्ञान को ध्यान में रखते हुए उपासना के लिए ऐसा नियम बनया गया है कि अनंत शक्तियों के भंडार ईश्वर की जिन शक्तियों से लाभ उठाया है, उसका ध्यान करते हैं।

गायत्री में सविता का ध्यान किया जाता है। सविता तेजस्वी है इसलिए साधक उससे तेजस्विता की आशा करता है, आत्मिक तेज, बौद्धिक तेज, आर्थिक तेज, शारीरिक तेज इन सब तेजों से संबंध बनने से मनुष्य का जीवन सर्वांगपूर्ण तेजयुक्त बनता है। ईश्वर की तेजशक्ति को धारण करके हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकाशमान नक्षत्र की तरह चमकें। इसलिए ईश्वर के सविता नाम का गायत्री में स्मरण किया गया है। वेद शास्त्रों में सविता शब्द को विभिन्न अर्थों में परिभाषित किया गया है। कृष्णयजुर्वेद में सविता को समस्त सृष्टि का प्रसव करनेवाला तथा स्वामी बताया गया है-सविता वै प्रसवनामिशे।

वृहत् योगी याज्ञवल्क्य (अ. 9/55) में सविता को प्राणियों एवं भावों को उत्पन्न करनेवाला तथा प्रेरक और सबका रक्षक बताया गया है। संध्या भाष्य में सविता को दु:खों का नाश करनेवाले हेतुओं की वृष्टि करनेवाला बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण में सविता को साक्षात ब्रह्म बताया गया है। भविष्य पुराण में सविता को समस्त भूतों की आत्मा, सनातन, प्राणियों का स्वामी तथा प्रजापति ब्रह्मा के रूप में निरूपित किया गया है।

इस तरह निरुक्त, उपनिषदों और पुराणों में सविता संबंधी वर्णन करीब इसी प्रकार से किया गया है। सविता को प्राणियों का जीवन दाता, प्रेरक, पोषक, रक्षक, स्वामी तथा उद्धारक बताया गया है। इसलिए सविता देवता का नित्य नियमित ध्यान करना चाहिए। सविता वर्ग विशेष या धर्म सम्प्रदायादि के भेद-भावों से परे होने से यह सबके स्वामी हैं। अत: सब कोई सविता का ध्यान कर अपने जीवन को सुखी समुन्नत बना सकता है।

गायत्री के दो प्रकार के मंत्र है, श्रोत मंत्र जिसे हम लोग जानते है, **तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्।** इस में **(१) ॐ(२) भूर्भव: स्व:(३)** गायत्री मंत्र का भाग नही है। किंतु जप के लिए इस को जोड़ा गया है और इस का पाठ कोई भी सात्विकता में रह कर सकता है। अन्य गायत्री मंत्र समर्थ गायत्री है, इस के मंत्र जाप के लिए जनेऊ धारण और वैदिक संस्कारो से युक्त हो कर विधि विधान से पाठ किया जाता है। क्योंकि गीता

सविता अर्थात सूर्य के तेज की भी आराधना है, इसलिए इस का वैदिक अनुष्ठान और जाप भी पृथक है। जिस को हम यहां हम वर्णन नहीं कर रहे।

ब्राह्मण ग्रन्थों की व्याख्या है- कर्माणि धिय:, अर्थातृ जिसे हम धी या बुद्धि तत्व कहते हैं वह केवल मन के द्वारा होनेवाले विचार या कल्पना सविता नहीं किन्तु उन विचारों का कर्मरूप में मूर्त होना है। यही उसकी चरितार्थता है। किंतु मन की इस कर्मक्षमशक्ति के लिए मन का सशक्त या बलिष्ठ होना आवश्यक है। उस मन का जो तेज कर्म की प्रेरणा के लिए आवश्यक है वही वरेण्य भर्ग है। मन की शक्तियों का तो पारवार नहीं है। उनमें से जितना अंश मनुष्य अपने लिए सक्षम बना पाता है, वहीं उसके लिए उस तेज का वरणीय अंश है। अतएव सविता के भर्ग की प्रार्थना में विशेष ध्वनि यह भी है कि सविता या मन का जो दिव्य अंश है वह पार्थिव या भूतों के धरातल पर अवतीर्ण होकर पार्थिव शरीर में प्रकाशित हो। इस गायत्री मंत्र में अन्य किसी प्रकार की कामना नहीं पाई जाती। यहाँ एक मात्र अभिलाषा यही है कि मानव को ईश्वर की ओर से मन के रूप में जो दिव्य शक्ति प्राप्त हुई है उसके द्वारा वह उसी सविता का ज्ञान करे और कर्मों के द्वारा उसे इस जीवन में सार्थक करे।

गायत्री के पूर्व में जो तीन व्याहृतियाँ हैं, वे भी सहेतुक हैं। भू पृथ्वीलोक, ऋग्वेद, अग्नि, पार्थिव जगत् और जाग्रत् अवस्था का सूचक है। भुव: अंतरिक्षलोक, यजुर्वेद, वायु देवता, प्राणात्मक जगत् और स्वप्नावस्था का सूचक है। स्व: द्युलोक, सामवेद, आदित्यदेवता, मनोमय जगत् और सुषुप्ति अवस्था का सूचक है। इस त्रिक के अन्य अनेक प्रतीक ब्राह्मण, उपनिषद् और पुराणों में कहे गए हैं, किन्तु यदि त्रिक के विस्तार में व्याप्त निखिल विश्व को वाक के अक्षरों के संक्षिप्त संकेत में समझना चाहें तो उसके लिए ही यह ॐ संक्षिप्त संकेत गायत्री के आरम्भ में रखा गया है। अ, उ, म इन तीनों मात्राओं से ॐ का स्वरूप बना है। अ अग्नि, उ वायु और म आदित्य का प्रतीक है। यह विश्व प्रजापति की वाक है। वाक का अनन्त विस्तार है किंतु यदि उसका एक संक्षिप्त नमूना लेकर सारे विश्व का स्वरूप बताना चाहें तो अ, उ, म या ॐ कहने से उस त्रिक का परिचय प्राप्त होगा जिसका स्फुट प्रतीक त्रिपदा गायत्री है।

गायत्री' एक छन्द भी है जो 24 मात्राओं 8+8+8 के योग से बना है । गायत्री ऋग्वेद के सात प्रसिद्ध छंदों में एक है। इन सात छंदों के नाम हैं- गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, विराट, त्रिष्टुप् और जगती। गायत्री छन्द में आठ-आठ अक्षरों के तीन चरण होते हैं। ऋग्वेद के मंत्रों

में त्रिष्टुप् को छोड़कर सबसे अधिक संख्या गायत्री छंदों की है। गायत्री के तीन पद होते हैं (त्रिपदा वै गायत्री)। अतएव जब छंद या वाक के रूप में सृष्टि के प्रतीक की कल्पना की जाने लगी तब इस विश्व को त्रिपदा गायत्री का स्वरूप माना गया। जब गायत्री के रूप में जीवन की प्रतीकात्मक व्याख्या होने लगी तब गायत्री छंद की बढ़ती हुई महिता के अनुरूप विशेष मंत्र की रचना हुई, जो इस प्रकार है:

तत् सवितुर्वरेण्यं। भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

गायत्री ध्यानम्

मुक्ता-विद्रुम-हेम-नील वलच्छायैर्मुखस्त्रीक्षणै-र्युक्तामिन्दु-निबद्ध-रत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् । गायत्रीं वरदा-ऽभयः-ड्कुश-कशाः शुभ्रं कपालं गुण। शंख, चक्रमथारविन्दुयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥

अर्थात् मोती, मूंगा, सुवर्ण, नीलम्, तथा हीरा इत्यादि रत्नों की तीक्ष्ण आभा से जिनका मुख मण्डल उल्लसित हो रहा है। चंद्रमा रूपी रत्न जिनके मुकुट में संलग्न हैं। जो आत्म तत्व का बोध कराने वाले वर्णों वाली हैं। जो वरद मुद्रा से युक्त अपने दोनों ओर के हाथों में अंकुश,अभय, चाबुक, कपाल, वीणा,शंख,चक्र,कमल धारण किए हुए हैं ऐसी गायत्री देवी का हम ध्यान करते हैं।

गायत्री महामंत्र वेदों का एक महत्त्वपूर्ण मंत्र है जिस की महत्ता ॐ के लगभग बराबर मानी जाती है।

यह यजुर्वेद के मन्त्र 'ॐ भूर्भुवः स्वः' और ऋग्वेद के छन्द 3.62.10 के मेल से बना है। इस मंत्र में सवितृ देव की उपासना है इसलिए इसे सावित्री भी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि इस मंत्र के उच्चारण और इसे समझने से ईश्वर की प्राप्ति होती है। इसे श्री गायत्री देवी के स्त्री रूप में भी पूजा जाता है।

मेनका, त्रिशंकु एवम महाराज अम्बरीष अश्वमेध यज्ञ में शुन:शेप की रक्षा के कारण तीन बार तप भंग होने के पश्चात, विश्वामित्र ने विचार किया कि लाख प्रयत्न करके भी मैं तपस्या में सफल नहीं हो पा रहा हूँ। माया कब प्रवेश करती है मुझे पता ही नहीं चलता। जब आकाशवाणी सूचित करती है तब ज्ञात हो पाता है। लगता है कि मैं अपने बल से इन बाधाओं पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। अन्तत: विश्वामित्र ने एक परमात्मा की शरण ली कि- "ॐ भूर्भुव: स्व: तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्।" (यजुर्वेद,

अध्याय ३६, कण्डिका ३) अर्थात् ॐ शब्द से उच्चरित, भू:, भुव: और स्व: तीनों लोकों में तत्त्वरूप से व्याप्त 'सवितु:'- ज्योतिर्मय परमात्मा! आपके 'वरेण्य भर्ग' अर्थात् तेज का हम 'धीमहि'- ध्यान करते हैं। 'न: धिय: प्रचोदयात्'- हमारी बुद्धि में निवास करें, मुझे प्रेरणा दें। इस प्रकार अपने को भगवान के प्रति सर्मिपत कर विश्वामित्र तपस्या में लग गये, और सफल हुए।

मंत्र और भावार्थ

ॐ भूर् भुवः स्वः।तत् सवितुर्वरेण्यं।भर्गो देवस्य धीमहि।धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

हिन्दी में भावार्थ

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

मन्त्र जप के लाभ

गायत्री मन्त्र का नियमित रुप से सात बार जप करने से व्यक्ति के आसपास नकारात्मक शक्तियाँ बिलकुल नहीं आती।

जप से कई प्रकार के लाभ होते हैं, व्यक्ति का तेज बढ़ता है और मानसिक चिन्ताओं से मुक्ति मिलती है।

बौद्धिक क्षमता और मेधाशक्ति यानी स्मरणशक्ति बढ़ती है।

गायत्री मन्त्र में चौबीस अक्षर होते हैं, यह 24 अक्षर चौबीस शक्तियों-सिद्धियों के प्रतीक हैं।

इसी कारण ऋषियों ने गायत्री मन्त्र को सभी प्रकार की मनोकामना को पूर्ण करने वाला बताया है।

इस प्रकार गायत्री एक परमात्मा के प्रति समर्पण है। इसके द्वारा हम-आप त्रिगुणमयी प्रकृति का पार पा सकते हैं कि भू: भुव: स्व: तीनों लोकों में तत्त्वरूप से जो व्याप्त है, जो सहज प्रकाश स्वरूप है, हे परमात्मा! आप मेरी बुद्धि में निवास करें जिससे मैं आपको जान लूँ। यह प्रार्थना गीता के अनुरूप है कि 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' (१८/६६)- सारे धर्मों को त्याग दे, मात्र मेरी शरण हो जा। मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू मुझे प्राप्त होगा। सदा रहनेवाला जीवन और शान्ति प्राप्त कर लेगा। यही है गायत्री!

विविध धर्म-सम्प्रदायों मे गायत्री महामन्त्र का भाव

हिन्दू - ईश्वर प्राणाधार, दुःखनाशक तथा सुख स्वरूप है। हम प्रेरक देव के उत्तम तेज का ध्यान करें। जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर बढ़ाने के लिए पवित्र प्रेरणा दें।

यहूदी - हे जेहोवा (परमेश्वर) अपने धर्म के मार्ग में मेरा पथ-प्रदर्शन कर, मेरे आगे अपने सीधे मार्ग को दिखा।

शिन्तो - हे परमेश्वर, हमारे नेत्र भले ही अभद्र वस्तु देखें परन्तु हमारे हृदय में अभद्र भाव उत्पन्न न हों। हमारे कान चाहे अपवित्र बातें सुनें, तो भी हमारे में अभद्र बातों का अनुभव न हो।

पारसी - वह परमगुरु (अहुरमज्द-परमेश्वर) अपने ऋत तथा सत्य के भंडार के कारण, राजा के समान महान है। ईश्वर के नाम पर किये गये परोपकारों से मनुष्य प्रभु प्रेम का पात्र बनता है।

दाओ (ताओ) - दाओ (ब्रह्म) चिन्तन तथा पकड़ से परे है। केवल उसी के अनुसार आचरण ही उत्तम धर्म है।

जैन - अर्हन्तों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, आचार्यों को नमस्कार, उपाध्यायों को नमस्कार तथा सब साधुओं को नमस्कार।

बौद्ध धर्म - मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, मैं धर्म की शरण में जाता हूँ, मैं संघ की शरण में जाता हूँ।

कनफ्यूशस - दूसरों के प्रति वैसा व्यवहार न करो, जैसा कि तुम उनसे अपने प्रति नहीं चाहते।

सिख - ओंकार (ईश्वर) एक है। उसका नाम सत्य है। वह सृष्टिकर्ता, समर्थ पुरुष, निर्भय, निर्वैर, जन्मरहित तथा स्वयम्भू है। वह गुरु की कृपा से जाना जाता है।

बहाई - हे मेरे ईश्वर, मैं साक्षी देता हूँ कि तुझे पहचानने तथा तेरी ही पूजा करने के लिए तूने मुझे उत्पन्न किया है। तेरे अतिरिक्त अन्य कोई परमात्मा नहीं है। तू ही है भयानक संकटों से तारनहार तथा स्व निर्भर।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 10.35 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.36॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्॥

"dyūtaṁ chalayatām asmi,
tejas tejasvinām aham..।
jayo 'smi vyavasāyo 'smi,
sattvaṁ sattvavatām aham"..।।

भावार्थ:

मैं छलने वालो का जुआ हूँ, मैं तेजस्वियों का तेज हूँ, मैं जीतने वालों की विजय हूँ, मैं व्यवसायियों का निश्चय हूँ और मैं ही सत्य बोलने वालों का सत्य हूँ। (३६)

Meaning:

Among deceitful pursuits, I am gambling. I am the splendour in the brilliant and I am victory and determination. I am the Sattva of Saatvic individuals.

Explanation:

As we have seen throughout the Gita, Ishvara uses the power of his maaya to create this universe of duality. So, if everything that we consider “good” is Ishvara, its polar opposite is also Ishvara. To underscore this point, Shri Krishna brings forward gambling as Ishvara’s manifestation.

In fact, in the entire Mahabharatha; one important lesson is to be learned is; if we are not very careful, that gambling or such activities can suck us also down. And what is the example? Dharmaputra who was an embodiment of dharma, even that Dharmaputra got hooked to that and when Dharmaputra got hooked, he lost all the sense of propriety, and he lost even his wife and brothers.

Shree Krishna mentions not only virtue but also vice as his opulence. Gambling is a dangerous vice that ruins families, businesses, and lives. It was Yudhishthir’s weakness for gambling that led to the Mahabharat war.

But if gambling is also God's glory, then is there no harm in it, and why is it forbidden?

Most of us are under the sway of maaya. If we let maaya have her way, she can steal our faculty of discrimination, our intellect that can distinguish right from wrong. Of all the possible ways of deluding and deceiving us, gambling is the strongest form of maaya. Like any addiction, it can cause great attachment and ultimately result in great sorrow.

The God grants his power to the soul, and along with it, he gives the freedom of choice. If we choose to forget him, he gives us the power to forget. This is just as electric power can be used both to heat and cool a house. The user is free to choose how to utilize the power. However, the powerhouse that supplies the energy is not responsible for either the use or misuse of the power. Similarly, a gambler too possesses intellect and ability that is supplied by God. But if he decides to misuse these God- given gifts, then God is not responsible for the sinful deeds.

In Bhāgavatham it is said, in Kaliyuga, the kaliyuga resides in a few places; Kali dēvathā means that dēvathā which will take a person for spiritual downfall and Kali dēvathā means quarrel; fighting; shouting; drinking, all those things will come and therefore Krishna says, I am dhyūtam.

Then tējas tējasvināmaham; I am the brilliance; the internal brilliance, the intelligence among all the intelligent or brilliant people. Perhaps we can define the brilliance as that by which a person resists the temptation for dhyūtam; gambling; because in all of them, first time saying No is much easier; whether it is alcohol; whether it is cigarette or whether it is drug or whether it is gambling; first time saying No is very easy; but if first time one succumbs; then the downslide is so powerful. That it will be very difficult to get out of that; and therefore, I am that brilliant discrimination, which resists such a temptation.

Those among us who are endowed with a sharp intellect, one that never loses its power of discrimination. Nobel prize winners, freedom fighters, scientists, the list goes on. Shri Krishna says that it is Ishvara who is shining as the brilliance of such luminaries. Whenever we come across such individuals, we may feel inferior against their prowess. But there is no need to do so, because it is Ishvara that is giving them their brilliance.

Even if most of us are not endowed with such intellectual faculties, we can accomplish great things if we are hardworking, industrious and focused. People with very little mental and financial resources, through blood, sweat and tears, have shown that it is possible to succeed in spite of their limitations. Shri Krishna says that Ishvara manifests as their hard work, and also as the victory that comes as a result of this effort.

Sattva, along with rajas and tamas, comprise the three basic building blocks of maaya or prakriti. When any system is working in perfect harmony, without any fluctuations or disturbances, we can say that the Sattva quality has manifested. So, when our intellect is functioning without any agitations, when we see things clearly, it indicates that sattva has dominated over rajas and tamas. Ishvara manifests as this sattva in people who demonstrate virtues such as modesty, calmness, sobriety and goodness.

Vyavasāyaḥ means the effort required for the fulfilment of spiritual desire; just as effort is required for the fulfilment of materialistic desires; you should remember, equal or more effort is required for the fulfilment of spiritual desire. like doing pancha maha yajñā; all the noble activities for citta śuddhi; it requires effort; so here the word Vyavasāyaḥ means prayathna; perseverance; industry; effort.

And once there is vyavasāyaḥ or spiritual effort, what will it lead to? jayō:'smi; jayaḥ means victory; success; so that is why, look into the reverse order; satva guṇa to vyavasāyaḥ to jayaḥ; satva guṇa means spiritual

inclination; vyavasāyaḥ means spiritual effort; jayaḥ means spiritual success or victory; all of them I am. if we get spiritual success, we should not become arrogant because of that; we should remember that is also because of the grace of the Lord only.

।। हिंदी समीक्षा ।।

परमात्मा ने अब विभूति को व्यवहारिक एवम जनसदाहरण

के कर्मो एवम व्यक्तित्व को ले कर बता रहे है। आगे के श्लोकों में भी यही सब जमीनी स्तर पर बताया गया है। छल करने वालों में जो पासों से खेलना आदि द्यूत है वह मैं हूँ।जीव के साथ सब से बड़ा जुआ यदि कोई खेलता है तो वो प्रकृति है। प्रकृति सत-रज-तम गुण से युक्त योगमाया से जीव को कर्तृत्व एवम भोक्तत्व के साथ छल ही करती रहती है। यह सत्य है कि जन्म लेने के बाद पूर्व जन्म का ज्ञान किसी को नही रहता किन्तु उस के कर्म संस्कार, उस की कामना, अहम के कारण उस को यह जन्म मिलता है। इस जन्म में कब, कहाँ, कौन और कैसे मिलेगा या क्या प्राप्त होगा यह जुए में फेंके गए पासे के समान है जब हम अपनी कामना के अनुसार उसे प्राप्त नही पाते तो अपने को छला से महसूस करते है। अक्सर जब खाली बैठे हो और जीवन में यह विचार न आए कि मेरा जन्म इस परिवार में ही क्यों हुआ, मुझे इस धारण, जाति में इस कारण जन्म लेना पड़ा या मैं भी क्यों नही किसी इस से उच्च परिवार में पैदा हुआ। मेरा आगे क्या है? मेरे जीवन का औचित्य क्या है?

भविष्य की यही अनिश्चितता द्यूत क्रीड़ा के समान है और प्रकृति द्वारा समय समय पर जो हमे छला जाता है उसे परमात्मा ने अपनी विभूति कहा है। याद रखिये कृष्ण को छलिया के नाम से भी जाना जाता है। कृष्ण की लीलाओं में या महाभारत के युद्ध मे कृष्ण की छल विद्या से कौन अपरिचित है। इसलिये ही यह परमात्मा की विभूति है। **परब्रह्म का अंश होने के बाद भी, जो नित्य, अकर्ता, साक्षी है, वह यदि कर्मबन्धन मे फलाशा के साथ संसार योगमाया से वशीभूत हो कर जन्म मरण के दुख भोग रहा है, तो यह जीवात्मा के साथ छल ही तो है।**

वास्तव में, संपूर्ण महाभारत में; एक महत्वपूर्ण सबक जो सीखना है वह है; यदि हम बहुत सावधान न रहें, तो जुआ या ऐसी गतिविधियाँ हमें भी बर्बाद कर सकती हैं और उदाहरण क्या है? धर्मपुत्र, जो धर्म का अवतार था, वह धर्मपुत्र भी उस धर्म में फँस गया और जब

धर्मपुत्र उस में फँस गया, तो उसने अपना सारा धर्म खो दिया और यहाँ तक कि उसने अपनी पत्नी और भाइयों को भी खो दिया। क्या कोई व्यक्ति वहां पत्नी और भाइयों को दांव पर लगाने के बारे में सोच सकता है? धर्मपुत्र धर्म का अवतार है; वह धर्म शास्त्र जानता है; और यहाँ तक कि उसने अपना संतुलन भी खो दिया। यदि धर्मपुत्र अपना संतुलन खो सकता है; हम आम लोगों की तो बात ही क्या, हम तो जवान थे, मां-बाप ने कभी कार्ड छूने की इजाज़त नहीं दी; लोग कहते हैं कि हम केवल मनोरंजन के लिए ताश खेलते हैं। कोई पैसा शामिल नहीं है; लेकिन हमारे माता-पिता कहते हैं; मनोरंजन के लिए भी ताश न खेलें; क्योंकि वहाँ एक तीव्र खिंचाव है; कृष्ण स्वयं चेतावनी देते हैं ध्युतं अहम् अस्मि; धोखा देने वाली गतिविधियों के बीच; गतिविधियों को नीचे खींचना, सवारी गतिविधियों के लिए लेना; व्यसनी गतिविधियाँ; मैं जुआ सिद्धांत हूं. सो ध्युतम्; वस्तुतः ध्युतम् का अर्थ है पासा; और यहां इसका मतलब किसी भी प्रकार के जुए से है।

किसी भी बिजली की आपूर्ति में उपभोक्ता अपनी इच्छानुसार इस का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र होता है किन्तु पावर हाऊस जो बिजली की आपूर्ति करता है, वह इस का सदुपयोग या दुरूपयोग करने के लिए उपभोक्ता के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। समान रूप से जुआरी में भगवान द्वारा प्रदत्त बुद्धि और शक्ति होती है। लेकिन यदि वह भगवान द्वारा प्रदत्त उपहार का दुरुपयोग करना चाहता है तब भगवान उस के पापमय कर्म के लिए उत्तरदायी नहीं होते।

इंद्रप्रस्थ में पांडव का राज्य सम्पन्न हो कर चल रहा था, वही प्रकृति ने युधिष्ठर को जुए में छल द्वारा सब कुछ हराया गया, फिर द्रोपदी का चीर हरण, 12 वर्ष का वनवास, 1 वर्ष का अज्ञातवास और वापस आने पर राज्य नही लौटाने के कारण यह भीषण युद्ध की तैयारी। इस से बढ़ कर क्या द्यूत क्रिया होगी कि पासे पर पासे पड़ते गए और कौरव पांडव भाई भाई मरने मारने के युद्ध भूमि में खड़े हो गए। प्रकृति यह जुआ या द्यूत क्रीड़ा हम सब के साथ माया द्वारा खेल रही है और कब कौन दूर और कब पास होगा हमे पता नही, हमे हमेशा भाग्य कह कर छला जाता है। परमात्मा का कहना है यह प्रकृति द्वारा छला जाना एक द्यूत क्रीड़ा है जिस में जीव समय समय पर छला जाता है वो मै ही हूँ। द्यूत क्रीड़ा जीव का विवेक, ज्ञान, क्षमता, निपुणता आदि सभी हर लेता है और जीव अपने को ठगा सा महसूस करता है। जो स्मरण एवम समर्पण में डूबा वो ही छला नही जाता।

महाभारत की द्यूत क्रीड़ा या योगमाया में कंस को योगमाया द्वारा ठगा जाना या राम द्वारा ठीक राज्याभिषेक के समय वनवास जाना, इस सब छल का कारण लोककल्याण की

होता है। तभी तो वामन अवतार में बालि को छला और तुलसी को उस के पति के रूप में, परमात्मा जब भी कुछ करे तो उस में कुछ न कुछ लोककल्याण अवश्य होता है। जो परमात्मा को समर्पित हो, वे कभी अपने को ठगा नही मानते, इस का उदाहरण स्वयं कर्ण या भीष्म या बालि है, जिन्होंने स्वयं को छलने के लिए परमात्मा को स्वीकार किया।

सावित्री द्वारा यमराज से अपने पति के प्राण बचाने हेतु मांगे गए वरदान या कर्ण से युध्द से पूर्व उस के कवच कुंडल का दान मांगना, द्रोपती द्वारा भीष्म से उन की मृत्यु का रहस्य प्राप्त करना आदि आदि चतुराई से अपनी विजय को हासिल करना एवम किसी व्यक्ति के विशिष्ट गुण को उस की कमजोरी की तरह प्रयोग में लाना, छल ही है। यह रोज मर्रा की जिंदगी में हर व्यक्ति के साथ होता है। इसलिये जब गुण ही व्यक्तित्व की पहचान हो जाए और जीव अपने से ज्यादा अपने व्यक्तित्व या अहम को महत्व दे, तो वह चतुर व्यक्ति द्वारा उस को उस की कमजोरी बना कर ठग लिया जाता है।

जीव के लग्न, क्षमता, तप, त्याग आदि से उस मे ओज पैदा हो जाता है यह उस के व्यक्तित्व का तेज है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने एक बार कहा था निसन्देह सत्य एक प्रकाश है, परन्तु वह गुणरहित प्रकाश है। जो भी आभा किसी के मुख मंडल से झलकती है, वह उस में स्थित ब्रह्म के अंश का ही प्रकाश होता है।

मैं विजय हूँ उद्यमशीलता हूँ और मैं साधुओं की साधुता हूँ जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, यहाँ भी ये गुण मन की उस स्थिति या दशा को बताते हैं, जो इस प्रकार के निरन्तर चिन्तन से निर्मित होती है। जब उद्यमशीलता और साधुता जैसे गुणों को बनाये रखा जाता है, तब मन अत्यन्त शान्त और स्थिर हो जाता है जिस में चैतन्य आत्मा का प्रतिबिम्वित वैभव इतना स्पष्ट और तेजस्वी होता है कि मानो वही स्वयं सत्य है। अत पूर्वकथित गुणों की प्रत्यारोपण की भाषा में भगवान् कहते हैं कि ये गुण ही मैं हूँ। विजय प्रत्येक प्राणी को प्रिय लगती है। विजय की यह विशेषता भगवान् की है। इसलिये विजय को भगवान् ने अपनी विभूति बताया है। अपने मन के अनुसार अपनी विजय होने से जो सुख होता है, उस का उपभोग न करके उस में भगवद्बुद्धि करनी चाहिये कि विजय रूप से भगवान् आये हैं। अज्ञानी लोग उस के अहम और कर्ता भाव में अहंकार करते है।

व्यवसाय नाम एक निश्चय का है। इस एक निश्चय की भगवान् ने गीता में बहुत महिमा गायी है जैसे - कर्मयोगी की निश्चयात्मिका बुद्धि एक होती है, भोग और ऐश्वर्य में आसक्त पुरुषों की निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती, अब तो मैं केवल भगवान् का भजन ही करूँगा -

इस एक निश्चय के बलपर दुराचारी से दुराचारी मनुष्य को भी भगवान् साधु बताते हैं। इस प्रकार भगवान् की तरफ चलने का जो निश्चय है उसको भगवान् ने अपनी विभूति बताया है। निश्चय को अपनी विभूति बताने का तात्पर्य है कि साधक को ऐसा निश्चय तो रखना ही चाहिये, पर इस को अपना गुण नहीं मानना चाहिये, प्रत्युत ऐसा मानना चाहिये कि यह भगवान् की विभूति है और उन्हीं की कृपा से मुझे प्राप्त हुई है।

व्यवहारिक रूप में हम जो भी व्यापार एवम व्यवसाय करते है उस की उन्नति, सफलता, उस का प्रकार, उस मे ऊंच नीच सब को परमात्मा की विभूति ही मानना चाहिये जिस से हमारे अंदर अहम पैदा न हो। हमें समस्त कार्य भगवान के सेवक के रूप में ही करने चाहिए।

सात्त्विक मनुष्यों में जो सत्त्व गुण है, जो सात्त्विक भाव और आचरण है, वह भी भगवान् की विभूति है। तात्पर्य है कि रजोगुण और तमोगुण को दबाकर जो सात्त्विक भाव बढ़ता है, उस सात्त्विक भाव को साधक अपना गुण न मानकर भगवान् की विभूति माने। विजय, तेज, व्यवसाय, सात्त्विक भाव आदि अपने में अथवा दूसरों में देखने में आयें तो साधक इन को अपना अथवा किसी वस्तु व्यक्ति का गुण न माने, प्रत्युत भगवान् का ही गुण माने। उन गुणोंकी तरफ दृष्टि जाने पर उन में तत्त्वतः भगवान् को देख कर भगवान् को ही याद करना चाहिये। व्यवहार जगत में सत्य का अर्थ बोलने वाले व्यक्ति के ज्ञान, अनुभव एवम मनोस्थिति के अनुसार तथ्य की समझ पर निर्भर है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति का सत्य विभिन्न दृष्टिकोण होने से अलग अलग हो सकता है। किंतु जो सात्विक भाव से निष्काम, निष्पक्ष और दृढ़ता पूर्वक कहा या बताया जाए, वह उस व्यक्ति का व्यक्तिगत सत्य है, जिसे परमात्मा ने अपनी विभूति कहा है।

व्यवहार जगत में भगवान द्वारा अत्यंत संक्षेप में देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, और सर्प आदि चेतन तथा वज्र, इन्द्रिय, मन, समुन्द्र आदि जड़ पदार्थो के साथ साथ जय, निश्चय, तेज, नीति, ज्ञान आदि भावों का भी वर्णन किया। किन्तु अनिश्चितता एवम भाग्य और पुरुषार्थ के सामान्य जन जीवन मे परमात्मा की विभूति का अनुभव हो इसलिये यह वर्णन है।

जुआ का अर्थ है जो अनन्यास बिना किसी पुरुषार्थ के भाग्य से प्राप्त हो, यह छल इसलिये लिये है कि कामना या अपेक्षा या लोभ तो रहे किन्तु लक्ष्य बिना प्रयास के मिले, यह कामना की पूर्ति होगी या नही, इसे कोई नही कह सकता। वैसे ही हर व्यक्ति के गुण के

कारण उस के चारो ओर एक आभा होती है, जिसे aura या तेज कह सकते है, यह तेज परमात्मा से उस व्यक्ति की निकटता से उत्पन्न होता, जितना अधिक निकटता, उतना अधिक तेज,। अनिश्चितता में जो दृढ़ता के साथ व्यवसाय अर्थात प्रयत्न करता है, वह निश्चयात्मक बुद्धि, संघर्ष और मेहनत, अभ्यास से दक्षता प्राप्त कर के जीतने वाले की जीत और सात्विक पुरुषों के सत्व भाव को परमात्मा ने अपना स्वरूप बता कर यह सिद्ध किया है कि प्रकृति के साथ मनुष्य की प्रत्येक राजसी एवम सात्विक क्रिया में परमात्मा की ही विभूति है।

छल व्यक्ति विशेष से प्रकृति ही नही करती, व्यक्ति भी स्वयं से करता है। अच्छे-बुरे सभी काम मे अपने सात्विक मन की आवाज को हर बार अनसुना करना, आलस्य, निंद्रा एवम कर्महीनता के जो भी बहाने बनाये जाए, वह अपने को छलना ही है। जब ज्ञान की प्राप्त करने का अवसर हो, उस समय अपने को व्यस्त एवम असमर्थ कह कर बचना भी अपने से छल ही है। समझ कर भी नासमझी करना, अपने को ज्ञानी सिद्ध करने के लिये रटी रटाई बाते करना भी छल ही है। अतः इस मे परमात्मा की विभूति मान कर अपने को सात्विकता की ओर न ले जाना, भी अपने से छल ही है।

परमात्मा ही करता है एवम परमात्मा ही करवाता है। हम सब उस की कठपुतली मात्र है। गीता प्रेस के समर्पित श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार की कविता में कहा है "मै कठपुतली तुम्हारी, नचायो मुझे निज इच्छा अनुसार"। इसी में उन्होंने कहा है " इतना जो बोल गयीं मै मुख से, यह तुम ही बोले भर मुझ में, मै तो प्रखर मौन"। यह श्लोक इसी बात का द्योतक है कि जीव जो भी व्यापार या व्यवसाय करता है, जो भी परमात्मा से प्रार्थना या पूजन करता है, उस का तेज, सफलता, विजय, प्रकार, उस मे होने वाले छल व्यवहार, उस का ज्ञान, अनुभव एवम उस की बाते, कोई और नही, परमात्मा ही है। जो वह जानता है, वह भी परमात्मा ही है। आज आप जो जिस भी स्थिति में है यह परमात्मा की ही विभूति है, द्यूतक्रीड़ा के समान कल आप क्या होंगे यह आप नही तय कर सकते, कब कौन राजा से रंक और रंक से राजा होगा, कब कौन कहाँ होगा, किस से मिलेगा आदि यह द्यूत क्रीड़ा का छल भी परमात्मा ही है। जब भविष्य का पता नही हो, पूर्व जन्म का कुछ भी ज्ञान न हो, इस देह को त्यागने के बाद का पता नही हो, प्रारब्ध, संचित कर्म कितने और कब फलित होंगे, इस का हिसाब भी न हो और योगमाया में जीव में अज्ञान भर जाए तो जीवन एक द्युत क्रीड़ा बन कर रह जाता है जिस में हमे पल पल छला जाता है। फिर भी कोई जीव सत्व के साथ निश्चय ले कर मोक्ष की ओर बढ़ता है तो उस के प्रयास से जो तेज, सफलता

और ओज मिलता है, उस में जीव का अस्तित्व ही कहां है क्योंकि कर्ता और भोक्ता बन कर को लीला रचा रहा है, वह तो परब्रह्म का ही अंश है। यहाँ तक कि जीव का सत्व गुण, व्यवसाय, व्यवहार, जीत और सत्य भी परमात्मा ही है। हम सब जो गीता का अध्ययन भी कर पा रहे है, यह भी उसी की विभूति है।

।।हरि ॐ तत सत।।10.36।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.37॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥

"vṛṣṇīnāṁ vāsudevo 'smi,
pāṇḍavānāṁ dhanañjayaḥ..।
munīnām apy ahaṁ vyāsaḥ,
kavīnām uśanā kaviḥ"..।।

भावार्थ:

मैं वृष्णिवंशियों में वासुदेव हूँ, मैं ही पाण्डवों में अर्जुन हूँ, मैं मुनियों में वेदव्यास हूँ, और मैं ही कवियों में शुक्राचार्य हूँ। (३७)

Meaning:

Among the Vrishnis, I am Vaasudeva and among the Paandavas, I am Dhananjaya. Also, among the sages I am Vyaasa and among the seers I am Ushanaa the seer.

Explanation:

One of the many names of Shri Krishna is Vaarshaneya, which means one who is born in the clan of Vrishni. The Vrishnis are said to have descended from king Yadu who started the major branch of the Chandravanshis, the lunar dynasty. Being the most prominent of the Vrishni clan. Lord Krishna took birth on the earth in the Vrishni dynasty as the son of Vasudev. Since

no soul can excel the Lord, he is naturally the most glorious personality of the Vrishni dynasty, Shri Krishna declares himself as Ishvara's manifestation.

The Pandavas were the five sons of Pandu—Yudhishthir, Bheem, Arjun, Nakul, and Sahadev. Amongst them, Arjun was an archer par-excellence, and was a very intimate devotee of Shree Krishna.

Ved Vyas is special amongst the sages. He is also known by the names "Badarayan" and "Krishna Dwaipayan." He revealed Vedic knowledge in various ways and wrote many scriptures for the welfare of the people. In fact, Ved Vyas was an Avatār of Shree Krishna himself and is mentioned in the list of Avatārs in the Śhrīmad Bhāgavatam.

Arjun looked upon the Lord as his dear friend. The Bhagavad Gita could never have been possible without Arjuna asking the questions, and without Sage Vyaasa writing the Mahaabhaarata epic. In that regard, Shri Krishna declares both of them as Ishvara's divine manifestations. Furthermore, both Arjuna and Vyaasa were prominent in their own right. Arjuna was the only undefeated warrior in the Mahaabhaarata war, and also the greatest archer of his time. Sage Vyaasa is credited with having divided the Vedas into four branches, and also with writing the major Puraanaas and the Brahma Sutra.

Shukracharya was a very learned sage known for his expertise in the science of ethics. He was compassionate to accept the demons as his disciples and guide their progress. The word "Kavi" means one who is a visionary, one who can foresee what is coming due to the mastery of his academic prowess. Ushana, also known as Shukraachaarya, is revered in the Indian tradition as one of the foremost gurus or teachers. He learnt the technique of reviving the dead from Lord Shiva, also known as Sanjeevani vidya. He later became the guru of the asuraas or demons, but never inherited any of their traits. Shukra-vaar, the day of his birth, is the name

used for Friday in India. By virtue of his learning, he has been declared as a vibhūti of God.

।। हिंदी समीक्षा ।।

भगवदगीता की शुरुवात महाभारत के युद्ध के पूर्व धृतराष्ट्र और संजय के संवाद से हुई, जिस में कृष्ण अर्जुन के सारथी और सखा है। अर्जुन मोह, भय, ममता और अहंकार से ग्रसित हो कर कृष्ण को गुरु मान कर अपनी समस्या का हल चाहता है। अतः अध्याय 1 से 6.29 तक संवाद सखा और गुरु शिष्य के है किंतु भगवान 6.30 में कहते है **यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।6.30।। "जो सब में मुझे देखता है और सबको मुझमें देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।"**

अर्थात अब कृष्ण और अर्जुन के संवाद ब्रह्म अर्थात परमात्मा और जीव के शुरू हो गए। इसलिए जब अर्जुन अर्थात जीव परमात्मा की विभूति को समझने की चेष्टा करता है तो महाभारत के पात्र में भी परमात्मा की विभूति को भी जानना आवश्यक है। परमात्मा अर्थात समस्त सृष्टि का आधार है तो उस का अपनी विभूति और गुणों के लिए "मैं" शब्द प्रयोग का अर्थ यही है कि उस के अतिरिक्त कोई नही। जब एक से ज्यादा लोग हो तो "मैं" शब्द का प्रयोग अहंकार का है।

विभूतियों में जनसदाहरण में अपनी विभूतियों को बताने के क्रम में अब अवतार और अवतार के समकालीन में मैं, तुम, यह और वो यानि हम सभी की तर्ज पर विभूतियां बताते हुए परमात्मा भगवान श्री कृष्ण कहते है।

परमात्मा श्री कृष्ण अपने मानवीय अवतार के स्वरूप में युद्ध भूमि में खड़े हो कर अपने प्रयत्क्ष स्वरूप को अपनी विभूति कहते है। मैं वृष्णियों में वासुदेव हूँ यादवों के पूर्वज यदु के वृष्णि नामक एक पुत्र था। इन वृष्णियों के वंश में वसुदेव का जन्म हुआ था। उनका विवाह मथुरा के क्रूर कंस की बहन देवकी के साथ सम्पन्न हुआ। इनके पुत्र थे श्रीकृष्ण। वसुदेव के पुत्र होने के कारण वे वासुदेव के नाम से विख्यात हुए। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार का वर्णन नहीं है, प्रत्युत वृष्णिवंशियों में अपनी जो विशेषता है, उस विशेषता को लेकर भगवान् ने अपना विभूतिरूप से वर्णन किया है। यहाँ भगवान् का अपने को विभूति रूप से कहना तो संसार की दृष्टि से है, स्वरूप की दृष्टि से तो वे साक्षात् भगवान् ही हैं। वृष्णि वंश से आशय

ओज, बल एवम सामर्थ्य से युक्त कर्मठ व्यक्ति। इसलिये स्वयं को वंश के साथ संयुक्त कर के, भगवान अपने मानव अवतार को राम के बाद दूसरी विभूति कहते है।

यद्यपि पांडव में युधिष्ठर श्रेष्ठ एवम सत्यवादी है, किन्तु संकट एवम युद्धकाल में जिस के पराक्रम से पांडवो ने अनेक युद्ध जीते, तो उस का श्रेय अर्जुन को जाता है। भगवान से गीता का ज्ञान भी अर्जुन को ही कृष्ण के प्रति समर्पण और ज्ञान की जिज्ञासा से सुनने मिला, क्योंकि अन्य कोई भी मानवीय उच्च गुणों युक्त नही था, जो युद्ध भूमि में अपने को देख कर विचलित हुआ हो। मैं पाण्डवों में धनंजय हूँ जिस प्रकार श्रीकृष्ण के पराक्रम से यादव कुल और वृष्णि वंश कृतार्थ और विख्यात होकर मनुष्य की स्मृति में बने रहे, उसी प्रकार पाण्डवों में धनंजय अर्जुन का स्थान था, जिस के बिना पाण्डवों को कुछ भी उपलब्धि नहीं हो सकती थी। धनंजय का वाच्यार्थ है धन को पुण्य एवम उद्यम से जीतने वाला। अर्जुन को अपने पराक्रम के कारण यह नाम उपाधि स्वरूप प्राप्त,हुआ था। नर- नारायण रूप में अर्जुन ही नर के रूप के नारायण के साथ है।

अन्य सभी अवतारों में, भगवान ने असुरों को नष्ट कर दिया और गायब हो गए; लेकिन कृष्ण ही अकेले अवतार है जिन के बारे में कहा गया **"वसुदेव सुतम देवम्, कंस चाणूर मर्दनम्, देवकी परमानंदम्, कृष्णम् वन्दे जगत्गुरुम्" और इसीलिए कृष्ण की भगवदगीता की शिक्षा को प्रस्थानत्रयी में से एक माना जाता है।**

वेदांत शास्त्र की तीन मुख्य पाठ्य पुस्तकें। वेदांत शास्त्र में असंख्य पाठ हैं, पुस्तकें; शायद हजारों या लाखों; सभी वेदांत शास्त्र ग्रंथों में से तीन वेदांत के स्तंभ माने जाते हैं; उन्हें प्रस्थान त्रयम कहा जाता है; नींव ग्रंथ; और वे क्या हैं:

नंबर एक उपनिषद, जिसे श्रुति प्रस्थान कहा जाता है;

दूसरा भगवद गीता है जिसे स्मृति प्रस्थानम कहा जाता है;

और तीसरा है ब्रह्म सूत्र, न्याय प्रस्थानम। ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म के विषय में वेदों में विभिन्न सिद्धांतों को एक सूत्र में बांधने की चेष्टा है किंतु सभी इतने अधिक उलझ गए, कि उस को सरल करने को उपनिषद और गीता की रचना की गई।

मैं मुनियों में व्यास हूँ। गीता के रचयिता स्वयं व्यास जी होने के कारण कोई इसे आत्मप्रशंसा का भाग नहीं समझे। व्यास एक उपाधि अथवा धारण किया हुआ नाम है। विभिन्न काल मे लगभग 12 महान व्यास का वर्णन है। उस युग में दार्शनिक एवं धार्मिक

लेखन के क्षेत्र में जो एक नयी शैली का अविष्कार तथा प्रारम्भ किया गया उसे व्यास नाम से ही जाना जाने लगा अर्थात् व्यास शब्द उस शैली का संकेतक बन गया। यह नवीन शैली क्रान्तिकारी सिद्ध हुई, क्योंकि उस काल तक दार्शनिक साहित्य सूत्र रूप मन्त्रों में लिखा हुआ था पुराणों की रचना के साथ एक नवीन पद्धति का आरम्भ और विकास हुआ, जिस में सिद्धांतों को विस्तृत रूप से समझाने का उद्देश्य था। इस के साथ ही उसमें मूलभूत सिद्धांतों को बारम्बार दाेहरा कर उस पर विशेष बल दिया जाता था। **इस पद्धति का प्रारम्भ और विकास कृष्ण द्वैपायन जी ने व्यास नाम धारण करके किया।** भारत भर में गुरुपूर्णिमा के दिन गुरुदेव की पूजा के साथ महर्षि व्यास की पूजा भी की जाती है। व्यास शब्द का वाच्यार्थ है, विस्तार। इस प्रकार समस्त मुनियों में अपने को व्यास कहने में भगवान् का अभिप्राय यह है कि सभी मननशील पुरुषों में, भगवान् वे हैं जो पुराणों की अपूर्व और अतिविशाल रचना के रचयिता हैं। व्यास जी ने प्रस्थानत्रयी में गीता और ब्रह्म सूत्र की रचना की और वेदों को भी लिपि बद्ध और चार ग्रंथो में विभाजित भी किया। गीता की रचना महाभारत के की रचना के समय की थी इसलिये युद्ध भूमि में व्यास जी को अपनी विभूति कहना गीता के कारण हो नही सकता। वेद व्यास जी ने चारों वेदों से मथ कर चार अध्याय 1) समनव्याध्याय, 2) विरोध- परिहार अध्याय, 3) साधना अध्याय एवम फला अध्याय रूपी सुधा को निकाला जिसे वेदान्त दर्शन के नाम से जाना जाता है। परम् तत्व को जो व्यक्त करने की क्षमता रखते है मै वो ही व्यास हूँ।

उशना प्रख्यात वैदिक ऋषि तथा राजनीति के आचार्य। वेद तथा पुराणों में इनका चरित्र चित्रित है। ऋग्वेद में उशना कवि (4।26।1) एवं काव्य (1।51।10; 4।16।2) विशेषण के साथ अभिहित किए गए हैं तथा कुत्स और इंद्र के साथ इनका उल्लेख बहुश: उपलब्ध होता है। ब्राह्मणों (पंचविंश 7।5।20); शांखायन श्रौत सूत्र (14।27।1) के अनुसार देव-दानव-युद्ध के अवसर पर इन्होंने असुरों का पौरोहित्य किया था। पुराणों के अनुसार स्वायंभू मन्वंतर में ये भृगुपूत्र कवि के पुत्र (उपनाम 'काव्य') बतलाए गए हैं। प्रियव्रात राजा की कन्या ऊर्जस्वती इन की स्त्री थी। भागवत (स्कंध 7 अ.5) के अनुसार ये दैत्यों के पुरोहित थे और इन की अनुपस्थिति में जब वे जंगल में तपस्या करने गए थे तब इन के दोनों पुत्रों-शंड और मर्क-ने हिरण्यकशिपु का पौरोहित्य किया था। भृगुवंश में उत्पन्न होने से ये 'भार्गव' भी कहे जाते हैं। कौटिल्य ने उशना का उल्लेख प्राचीन अर्थशास्त्रवेत्ता आचार्यों में किया है।

मैं कवियों में उशना कवि हूँ, यहाँ उशना शुक्र का नाम है। शुक्र वेदों में विख्यात हैं। कवि का अर्थ है क्रान्तिदर्शी अर्थात् सर्वज्ञ अर्थात त्रिकाल दर्शी । उपनिषदों में कवि शब्द का अर्थ

मन्त्रद्रष्टा भी है। आत्मानुभूति से अनुप्राणित हुए जो ज्ञानी पुरुष अहंकार के रंचमात्र भान के बिना, अपने स्वानुभवों को उद्घोषित करते थे, वे कवि कहलाते थे। कालान्तर में इस शब्द के मुख्यार्थ का शनै शनै लोप हो कर वर्तमान में कविता के रचयिता को ही कवि कहा जाने लगा। ये कवि भी भव्य एवं आश्चर्यपूर्ण विश्व को देखकर लौकिक स्तर से ऊपर उठकर अपने उत्स्फूर्त तेजस्वी भावनाओं या विचारों के जगत् में प्रवेश कर जातें हैं और अपने हृदय की अन्तरतम गहराई से काव्य का सस्वर गान करते हैं। उन सब कवियों में शुक्राचार्य जी मुख्य हैं। शुक्राचार्यजी संजीवनी विद्याके ज्ञाता एवम दैत्यों के गुरु हैं। इन की शुक्रनीति प्रसिद्ध है। इन्होंने अपने शत्रु बृहस्पति के पुत्र कच तक बिना संकोच के शिष्य बनने पर संजीवनी विद्या दी थी। इस प्रकार अनेक गुणों के कारण भगवान् ने इन्हें अपनी विभूति बताया है। इन विभूतियोंकी महत्ता देखकर कहीं भी बुद्धि अटके, तो उस महत्ता को भगवान् की माननी चाहिये क्योंकि वह महत्ता एक क्षण भी स्थायीरूप से न टिकने वाले संसार की नहीं हो सकती।

परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, वह हर जीवात्मा में समाया हुआ है, इसलिये पूरा संसार, ब्रह्मांड उस के अतिरिक्त कुछ भी नही है। इसलिये जो भी ओज, तेज, काव्य, बल, कुशलता, और नियम, धर्म, कर्तव्य, परिस्थिति, यज्ञ, यजन, समय, काल, पंचभूत आदि आदि में कुछ भी विशिष्ट प्रकट हो, वह उस की ही कृपा है।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.37।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.38॥

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥

"daṇḍo damayatām asmi,
nītir asmi jigīṣatām..।
maunaṁ caivāsmi guhyānāṁ,
jñānaṁ jñānavatām aham"..।।

भावार्थ:

मैं दमन करने वालों का दंड हूँ, मैं विजय की कामना वालों की नीति हूँ, मैं रहस्य रखने वालों का मौन हूँ और मैं ही ज्ञानीयों का ज्ञान हूँ। (३८)

Meaning:

Among means of subjugation, I am punishment and among seekers of victory, I am strategy. Also, among the secrets I am silence and among the wise, I am knowledge.

Explanation:

In this shloka, Shri Krishna declares punishment as foremost among Ishvara's expressions that restrain or subdue others. As we have seen in the second chapter, dwelling on sense objects can very easily lead to loss of even a wise person's wisdom and discrimination, which may result in unlawful behaviour. A society without methods to punish criminals is impractical and will result in anarchy and chaos. From our standpoint, we need to watch our mind and our sense organs constantly, lest they lead us astray.

Human nature is such that mere sermons are not sufficient for ensuring good behavior amongst people. Punishment, when meted out in a timely and just manner, is an important tool for reforming sinful behavior in people and training them in right conduct.

The discipline can be caused by several methods; one method is requesting; another is educating; so that a person follows because of understanding; and the third method is daṇḍa; the method of punishment. So sāma, dāna, bhēda, daṇḍa; among them, daṇḍa alone is the most powerful, which gives instantaneous result.

Next, we look at neeti or strategy. In the Mahabhaarata, Arjuna needed to finish Jayadratha in order to move closer to a victory. But the powerful Jayadratha had obtained a boon from his father. Whoever caused

Jayadratha's head to fall to the ground, their head would split into a hundred pieces. This was a tough situation and needed a smart solution.

Upon Shri Krishna's advice, Arjuna dispatched an arrow that would sever Jayadratha's head and deposited it into the lap of his father. When Jayadratha's father got up, he dropped the head and became the target of his own curse. Shri Krishna, the ultimate strategist, declares strategy as Ishvara's foremost expression among seekers of victory. Strategy enables us to deal with different people and circumstances, and to devise a plan to win every time.

The desire for victory is universal, but those with the strength of character are not willing to sacrifice morals or ethics to achieve it. That victory which is won by the path of righteousness signifies the power of God. When you have aim to gain victory in public interest, planning to attack on weakest point of other is not immoral.

"Silence is golden" is a proverb that has stood the test of time. In a business negotiation, we may be put in situations where others try to insult us in some way. We face a choice in such situations: we can either snap back at that person or we can stay silent. If we respond, we may say something that may come back to haunt us later. Worse still, we could reveal a secret that puts us in jeopardy.

The word mounam represents Brahman also. Amātras chaturtaḥ avyavahāryaḥ; so, in Vēdānta, silence has the meaning of Brahman, because in silence, there is nothing except consciousness. In silence what is there? we generally say; but silence is that state, in which nothing is there; which nothingness is witnessed by the consciousness and therefore in Māndukya upaniṣad; brahman is called silence; and therefore, we can mounam as Brahman also; I am Brahman among the secrets. That is why it was called Rāja Vidhya Rāja Guhyaṃ; Guhyam means secret.

A secret is that which is hidden from public knowledge for a specific purpose. There is a saying in English, “A secret known to one person is a secret; a secret known to two people is no longer a secret; and a secret known to three people is news shouted out to the rest of the world.” Thus, the greatest secret is that which is hidden in silence.

To that end, Shri Krishna advises us to follow the “silence is golden” proverb by declaring silence as Ishvara’s foremost manifestation among secrets. And those wise people who follow Ishvara’s recommendations also receive their wisdom through Ishvara’s as his divine manifestation.

।। हिंदी समीक्षा ।।

परमात्मा का कहना है कि नियम का अतिक्रमण करने वालो पर दंड देनेवालों का दंड मै हूँ। यदि वह न रहूं तो सभी स्वतंत्र हो जाएंगे। विश्व, देश, राज्य, शहर, समाज, परिवार और स्वयं के जीवन मे खाने-पीने, रहने, व्यवहार करने, कार्य करने के कुछ नियम होते है, जिन में कुछ प्रकृति बनाती है, कुछ जीव के देह के साथ जुड़े है और शेष मनुष्य स्वयं बनाता है। यह नियम के विरुद्ध जब भी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा बलवती होने लगती है तो लोभ, कामना, वासना और राग, द्वेष एवम क्रोध में मनुष्य नियम के विरुद्घ जा कर कुछ करने का प्रयत्न करता है, तो सामाजिक व्यवस्था, प्राकृतिक व्यवस्था एवम कर्म का विधान उसे दंडित करता है। यह विधान या व्यवस्था को परमात्मा अपना स्वरूप कहते है। क्योंकि दंड के स्वरूप या प्रतिकार में जो भी हिंसा, छल या क्रूरता आदि होती है, वह व्यवस्था को लोकसंग्रह के सुचारू रूप से चलाने के लिये होती है।

दंड नीति में भी किसी कार्य को करने का अंतिम उपाय है, इसलिए धर्म की नीति में साम, दाम, दंड और भेद ले कर कार्य के लक्ष्य तक पहुंचने का प्रावधान है। राम द्वारा रावण के वध के लिए दंड ही अंतिम उपाय सिद्ध हुआ।

व्यवहार के किसी भी राज्य के संचालन में दंड की नीति ही कारगर सिद्ध होती है किंतु दंड की नीति भय, शोषण और भ्रष्टाचार जैसे दोषों को भी जन्म दे सकता है, इसलिए दंड का अधिकार उसी को होना चाहिए जो तन, मन, बुद्धि और विवेक से सक्षम और निष्काम हो।

यह नियम क्या है इस के लिये सृष्टि यज्ञ चक्र के निर्माण के समय ब्रह्मा जी के उस संदेश को याद करे जिस में उन्होंने दुसरो की भलाई के कार्य करना। यदि सभी दुसरो की भलाई करेंगे तो स्वार्थ नही होगा और सभी आनन्द से रहेंगे। प्रकृति सब से पहले इस नियम का पालन करती है। जो इस नियम के विरूद्ध काम करेगा उसे उसी प्रकार दंड भी प्रकृति द्वारा मिलता है, जैसे अग्नि जलाती भी और अनेक कार्य भी करती है। परोपकार एवम दया ही सब से बड़ा नियम है। प्रकृति कार्य कारण के नियम से नियम विरुद्ध चलने वालों को दंडित करती है।

सामाजिक जीवन में दंड का सब से पहला अधिकार माता पिता का होता है फिर परिवार के वृद्ध अर्थात बड़े लोगो का, समाज का, समाज के बाद देश की व्यवस्था राजा या चुनाव से भी होती है। यह दंड देने वाले यदि नीतिगत है तो परमात्मा की विभूति है यदि नही तो प्रकृति के नियम कर्म फल के अनुसार दंड के भागी है। दंड का भय व्यक्तिगत से ले कर देश या राज्य के संचालन के अनिवार्य है।

सामाजिक जीवन से ले कर प्राकृतिक जीवन तक जो नियम से चलेगा वो ही दंड देने का अधिकारी होगा। परमात्मा से इसी नियम से चलाने के दंड के स्वरूप को अपनी विभूति कहा है।

इसी प्रकार कार्यकुशलता, बल, सहयोग, संघठन, धन, अथक प्रयास, ज्ञान, और विजय की कामना रखने से सफलता नही मिलती। **सफलता सही समय पर सही व्यक्ति द्वारा सही कार्य करने से मिलती है। भविष्य की अनिश्चितता में यह सही क्या है तो उसे योजनाबद्ध तय तरीके के करने की नीति।** यह विजय की कामना ले कर बनाई नीति को परमात्मा ने अपनी विभूति कहा है, किन्तु जो कूटनीति असुरवृति की हो, जिस में विजय का अर्थ हिंसा, दमन और अत्याचार हो, वह परमात्मा की विभूति नही, इस के विपरीत लोकसंग्रह हेतु जो विजय की कामना की नीति ही परमात्मा की विभूति है। विजय की कामना की नीति और नैतिकता, न्याय, धर्मशास्त्र और दया, व्यक्तिगत छवि आदि में अंतर समझ कर कार्य करना ही सही नीति है।

नीति का आश्रय लेने से ही मनुष्य विजय प्राप्त करता है और नीति से ही विजय ठहरती है। इसलिये नीति को भगवान् ने अपनी विभूति बताया है। वास्तविक व पूर्ण विजय वही है जिस में विजेता पक्ष बुद्धिमत्तापूर्वक लागू की गई शासन की नीतियों के द्वारा पराजित पक्ष को अपनी संस्कृति एवं विचारधारा में परिवर्तित कर देता है। यदि विजेता, पराजित लोगों का

सांस्कृतिक परिवर्तन कराने में अथवा स्वयं उनकी संस्कृति को ग्रहण करने में समर्थ नहीं है, तो उसकी विजय कदापि पूर्ण नहीं कही जा सकती। इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए यह एक खुला रहस्य है। सैनिक विजय के पश्चात् कुशल राजनीति के द्वारा ही पराजित पक्ष का वास्तविक धर्मान्तरण हो सकता है और केवल तभी पराजित पक्ष पूर्णत विजेता के वश में हुआ कहा जा सकता है। अत यहाँ कहा गया है कि विजयेच्छुओं की नीति मैं हूँ। विजय तभी है जब आप अपने समक्ष व्यक्ति को अपनी विचार धारा से सहमत करा लें।

पृथ्वीराज चौहान द्वारा अपने शत्रु को पराजित करने के बाद दया कर के बार - बार छोड़ देने की नीति उस पर घातक सिद्ध हुई, जब कि महाभारत युद्ध मे अजेय कर्ण को निहत्थे अपने रथ का पहिया निकालते वक्त मार देने की नीति उन की विजय का कारण बनी। महाभारत में कौरव पक्ष के तीन योद्धा भीष्म, द्रोण और कर्ण ऐसे थे, जो पूरे युद्ध में अकेले ही पांडव की पूरी सेना पर भारी थे। इसलिए उन को हारने के युद्ध कौशल की अपेक्षा कूटनीति का सहारा लिया गया।

नीति को किसी भी कार्य को पूर्ण करने की योजना बनाना भी कह सकते है जिस में लचीला पन हो। **महाभारत के युद्ध मे कौरव के प्रत्येक योद्धा को परास्त करने एवम विजय प्राप्त करने के बिना अहम रखे संयुक्त नीति बनी जिस से पांडव कौरव से युद्ध जीते, जब की कौरव में प्रत्येक योद्धा अपनी अपनी नीति से लड़ा एवम हार कर मृत्यु को प्राप्त हुआ।** किसी भी संस्था, व्यक्ति एवम देश की उन्नति समृद्ध नीति के द्वारा ही संभव है।

गुप्त रखने योग्य जितने भाव हैं उन सब में मौन (वाणी का संयम अर्थात् चुप रहना) मुख्य है क्योंकि चुप रहने वाले के भावों को हरेक व्यक्ति नहीं जान सकता। इसलिये गोपनीय भावों में भगवान् ने मौन को अपनी विभूति बताया है। जब शब्दो या भाव द्वारा कोई बात व्यक्त नही जाती, तब तक वह उस की व्यक्तिगत है, किन्तु व्यक्त करने के बाद वह सार्वजनिक हो जाती है। एक मौन अनेक रहस्यों और संभावनाओं को ले कर चलता है।

मौन परमात्मा की आराधना एवम सत्य को जानने का भी मार्ग है। मौन से संकल्प शक्ति की वृद्धि तथा वाणी के आवेगों पर नियंत्रण होता है। मौन आन्तरिक तप है इसलिए यह आन्तरिक गहराइयों तक ले जाता है। मौन के क्षणों में आन्तरिक जगत के नवीन रहस्य उद्घाटित होते है। वाणी का अपव्यय रोककर मानसिक संकल्प के द्वारा आन्तरिक शक्तियों के क्षय को रोकना परम् मौन को उपलब्ध होना है। मौन से सत्य की सुरक्षा एवं वाणी पर

नियंत्रण होता है। मौन के क्षणों में प्रकृति के नवीन रहस्यों के साथ परमात्मा से प्रेरणा मिल सकती है।

कबीर ने कहा है: कबीरा यह गत अटपटी, चटपट लखि न जाए। जब मन की खटपट मिटे, अधर भया ठहराय।

अधर मतलब होंठ। होंठ वास्तव में तभी ठहरेंगें, तभी शान्त होंगे, जब मन की खटपट मिट जायेगी। हमारे होंठ भी ज्यादा इसीलिए चलते हैं क्योंकि मन अशान्त है, और जब तक मन अशान्त है, तब तक होंठ चलें या न चलें कोई अन्तर नहीं क्योंकि मूल बात तो मन की अशान्ति है। वो बनी हुई है।

तो किसी को शब्दहीन देखकर ये मत समझ लेना कि वो मौन हो गया है। वो बहुत ज़ोर से चिल्ला रहा है, शब्दहीन होकर चिल्ला रहा है। वो पागल ही है, बस उसके शब्द सुनाई नहीं दे रहे। वो बोल रहा है बस आवाज़ नहीं आ रही। शब्दहीनता को, ध्वनिहीनता को मौन मत समझ लेना। मौन है- मन का शान्त हो जाना अर्थात कल्पनाओं की व्यर्थ उड़ान न भरे। आन्तरिक मौन में लगातार शब्द मौजूद भी रहें तो भी, मौन बना ही रहता है। उस मौन में तुम कुछ बोलते भी रहो तो उस मौन पर कोई अन्तर नहीं पड़ता।

मौन शब्द ब्रह्म का भी प्रतिनिधित्व करता है। अमात्रस् चतुर्थः अव्यवहार्यः; इसलिए वेदांत में मौन का अर्थ ब्रह्म है, क्योंकि मौन में चेतना के अलावा कुछ भी नहीं है। मौन में क्या है? हम आम तौर पर कहते हैं; लेकिन मौन वह अवस्था है, जिसमें कुछ भी नहीं होता; जो शून्यता चेतना द्वारा देखी जाती है और इसलिए मांडूक्य उपनिषद में; ब्रह्म को मौन कहा जाता है; और इसलिए हम ब्रह्म के रूप में भी मौन रह सकते हैं; मैं रहस्यों में ब्रह्म हूं। इसीलिए इसे राज विद्या राज गुह्यं कहा गया; गुह्यम् का अर्थ है रहस्य.

अतः परमात्मा का गहन रहस्य है, ध्यान, धारणा और समाधि की सीमा तक वही पहुँच सकता है, जिस ने मौन के द्वारा इन्द्रिय, मन बुद्धि से वाक को अंदर और बाहर दोनो ओर मौन कर लिया है। इसलिये मौन को भी परमात्मा ने अपनी विभूति कहा है।

जिस ने सत- असत को जाना वो ज्ञानी है। सत्य ज्ञान और अनन्त ब्रह्म है। ज्ञानवान का ज्ञान मैं हूँ, बुद्धिमानों में बुद्धिमत्ता ही स्वयं बुद्धिमान् नहीं हैं किन्तु वह उससे भिन्न भी नहीं है। आत्मा यह देह नहीं परन्तु हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि देह सर्वव्यापी आत्मा से कोई भिन्न वस्तु है। जड़ उपाधियां और उसके अनुभव ये सब विभूति की आभा हैं, जो

आत्मा के आसपास आलोकवलय में चमकती रहती हैं। ज्ञाता का ज्ञान या बुद्धिमान् की बुद्धिमत्ता परमात्मा की विभूति की अभिव्यक्ति है, जो उन पुरुषों के संस्कारों का परिणाम है। संसार में कलाकौशल आदि को जानने वालों में जो ज्ञान (जानकारी) है, वह भगवान् की विभूति है।

ज्ञान की प्राप्ति अनुभव, श्रुति, अध्ययन, स्मृति, अभ्यास, मनन और बुद्धि के विकास से होता है, किन्तु ज्ञान को धारण करनेवाला चेतन अर्थात जीवात्मा ही है। अन्यथा सारा गया पुस्तक या कंप्यूटर के ज्ञान के तुल्य ही है। ज्ञान वही है, जो उपयोग के समय चेतना में रहे, ज्ञान की आवश्यकता के समय विस्मृति होने से महारथी कर्ण तक को पराजय का सामना करना पड़ा। ज्ञानियो के इस ज्ञान का चेतन स्वरूप परमात्मा की ही विभूति है।

सच्चा ज्ञान मनुष्य में आध्यात्मिक ज्ञान की परिपक्वता और आत्मबोध या भगवद्ज्ञान द्वारा आता है। इसमें संपन्न मनुष्य सभी घटनाओं, मनुष्यों, और पदार्थों को भगवान के साथ उनके संबंध को जोड़कर देखने की दृष्टि को विकसित करता है। ऐसा ज्ञान मनुष्य को परिशुद्ध, पूर्ण, तृप्त और उन्नत करता है। यह जीवन को दिशा देता है तथा अन्याय और परिवर्तन का सामना करने की शक्ति और अंतिम परिणाम तक क्रियाशील रहने की दृढ़ता प्रदान करता है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे ऐसा ज्ञान हैं जो बुद्धिमानों में प्रकट होता है।

अर्जुन युद्ध भूमि में अपनों के विरुद्ध युद्ध के लिये तैयार नही था। उसे उन को मारना हिंसा लगती थी। इसके लिये वह अपनी कार्यकुशलता, नीति, बल, कीर्ति, लाभ सब कुछ त्यागने को तैयार था। यह श्लोक द्वारा यह भी इंगित किया है कि दमन के लिए दिया दंड, विजय की कामना के लिये नीति, अपने रहस्यों के प्रति मौन और परमार्थ का ज्ञान परमात्मा के विभूति है। इसलिये प्रत्येक जीव को लोक संग्रह हेतु निष्काम हो कर कर्म करते हुए, न्याय, धर्म, सत्य और व्यवस्था आदि की बजाए लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, लोकसंग्रह के लिये निष्काम हो कर कर्म करना चाहिए। हमे राजनीति एवम विजय की कामना के लिये भगवान श्री कृष्ण द्वारा अपनायी हुई कूटनीति एवम चाणक्य द्वारा राजनीति का अध्ययन भी करना चाहिए। इस के साथ कर्ण, विदुर, भीष्म, दुर्योधन आदि सभी ने विजय की कामना रखते हुए जो नीति का पालन किया था, उसे भी समझना चाहिये। परमात्मा विभूति स्वरूप सभी मे है, किन्तु सभी के परिणाम अलग अलग है।

व्यवहारिक एवम सांसारिक चार बाते अनुशासन के दंड, कार्य करने के नियम या नीति, अपने विचारों द्वारा किसी को पराजित कर के उस को अपने सामान बनाना एवम अपने

रहस्य एवम ज्ञान को व्यर्थ में न बांटना एवम मौन रह कर उस की विवेचना करना एवम अपने ज्ञान को परमात्मा की देन समझना ही इस श्लोक का वास्तविक अर्थ है।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.38।।

।। मौन - एक रहस्य और आन्तरिक ऊर्जा ।। विशेष - गीता 10.38 ।।

मौन एक अदभुत शक्ती है| बहुत से लोग और मैं भी, यह मानता हुं की, मौन ही सारे विपदाओं का निवारण है। जब हम अपने मन को नियंत्रित कर पाते हैं। तभी मौन का सत्य अनुभव मिलता है|यदि आप बाहर से मौन दिखा रहे हो, पर अंतर्गत मन में विचारों से विचलित रहते है, तो आपको यह अनुभव प्राप्त नही होगा। अपने अंतरिम ज्ञान को जानने के लिए, मौन आध्यात्मिकता में पहला Step माना जाता है। मौन से हानी नहीं बल्की सिर्फ लाभ ही लाभ होते है।

एक बार भष्काली ने अपने गुरु से उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म के बारे में प्रश्न किया कि ब्रह्म कहाँ है। प्रत्युत्तर में ब्रह्म का रहने का स्थान अनन्त शांति अर्थात "अयम आत्मा सन्तो" आत्मा शांत मौन ही ब्रह्म है। मौन ही सत्य है, मौन ही अमर आत्मा है, मौन ही ईश्वर है। मौन ही इस मन, प्राण और शरीर का आधार है। मौन ही इस ब्रह्मांड का क्षेत्र है, मौन ही जीवित शक्ति है, वह शक्ति जो सब ज्ञान से परे है। जीवन का उद्देश्य मौन है, किसी के अस्तित्व का ध्येय भी मौन है।

प्रगाढ़ निंद्रा में हम मौन के निकट तक पहुंच कर अविद्या से उस से अलग रहते है। कहते है जब सत-असत कुछ भी न था, तो वह परब्रह्म स्वयं में मौन ही था। इसलिये मौन चित है, मौन आनंद है, मौन पवित्र है, मौन सर्व व्यापक है, मौन अमेद्य हैं और जागृति है।

इस संसार में जो भी है वह सब कुछ एक ऊर्जा से ही उत्पन्न हुआ है। सभी बातों में किसी ना किसी शक्ती का ही उपयोग होता है। सर Isaac न्यूटन के नियम अनुसार , ऊर्जा को कभी भी निर्माण और नष्ट नही किया जा सकता, सिर्फ उसे एक रूप से दुसरे रुप में Convert कर सकते है। पर इस ऊर्जा का स्त्रोत क्या हैं? ऐसी कौन सी शक्ती हे जो हर क्षण में, हर स्थान मेंे और हर एक घटक में उपलब्ध रहती है?

शक्ति

हिंदू धर्म मान्यता अनुसार मां देवी को ही सृष्टी की ऊर्जा का स्त्रोत कहा गया है और इसी गुणविशेष की वजह से उन्हे 'शक्ती' के नाम से भी जाना जाता है। देवी ही इस जगत के पूर्ण अस्तित्व को शक्ती प्रदान करती है और मनः शक्ती को उजागर करने में भी वही सहायता करती है।

मौन की वजह से हम हमारे स्त्रोत यानि शक्ती के संपर्क में आते है|इस शांती स्वरूप मौन से विश्राम मिलता है और पुनश्च नवचैतन्य प्राप्त करने की संधी प्राप्त होती है, पर यहा विश्रांती का अर्थ सिर्फ शारीरिक क्रिया कलाप से ही विश्राम नहीं, बल्की मानसिक स्तर पर भी विश्राम मिलता है|हमारे मन में पलती चंचलता की वजह से ही हमारे शक्ती का ऱ्हास होता है और इसी वजह से हम उस विश्राम के अनुभव से वंचित रहते है।

संपूर्ण विश्व, ऊर्जा से परिपूर्ण भरा हुआ है, ऐसी ऊर्जा जिसका उपयोग कर हम पुनश्च चैतन्यदायी हो सकते हैं। इस विशाल ऊर्जा स्त्रोत का लाभ लेने हेतु हमे केवल आंतरिक स्थूलता से मिलाप करना होता है, जब मन स्थिर हो जाता है, तब हम बाहरी ऊर्जा को ग्रहण कर, विस्तारित होते है। इस वजह से हमारी सजगता बढती है और मनः शांती का लाभ होता है, बेचैनी कम होती हैं और मन की कार्यक्षमता बढ जाती है और मौन के साथ वह अनुभव अधिक समृद्ध होता है।

Silence से हमारी वाणी शुद्ध हो जाती है|और उससे हमारे Skills भी अधिक विकसित होते हैं| मौन रखने से मन शांत होकर पूर्णतः अंतर्मुखी हो जाता है। परिणाम स्वरूप हम अपनी आंतरिक गहराई तक पहुंच पाते है। मौन यानि केवल बोलना बंद कर लेना नहीं होता| बल्की उससे कई अधिक विशाल अर्थ है मौन का।

मौन के प्रकार

प्रथम

जब हम किसी व्यक्ती से बात नहीं करते और मन हमारे आसपास के किसी भी वस्तु में रस नही लेता। तब वह अंतर्मुखी हो जाता है। पूर्णतः से एकरूप होता है। इस प्रकार के मौन में हम, न बताते हुए और किसी भी प्रकार की क्रिया न करके, ऊर्जा का संग्रह करते है।

दूसरा

दुसरे प्रकार में हम विकास स्वरूप आगे जाते है और सभी प्रकार के भौतिक सुख का उपभोग लेने से बचते है, जब जब हम भौतिक सुख के पीछे भागते है, तब हमारा मन चंचलता से कार्यरत होता है। इस लिये हमे मनःशांती हेतु भौतिक सुख से बचना चाहिए।

तीसरा

तिसरे प्रकार के मौन में हमे किसी चीज की आवश्यकता महसुस नही होती। हम पूर्णतः शांत होकर, अपने ही अंतर्ज्ञान में तृप्त हो जाते है। इस कारण हमारा मन एककेंद्री होकर वह अपने आत्मपरीक्षण हेतु स्थिर होता है।

इस के अतिरिक्त शब्द या बातचीत में हम अपने रहस्य ज्ञान आदि का परस्पर संवाद द्वारा विनिमय करते है। एक बार संवाद होने से उस विषय का अधिकार एकल न हो कर विस्तृत हो जाता। गोपनीय या महत्वपूर्ण सूचनाएं समय से पूर्व सम्वाद करने से नीतिगत फैसले लेने या उन के क्रियांवयन में कठनाई आदि है। अतः सही नीति, जानकारी को गुप्त रखते हुए सफलता हासिल करना, व्यर्थ के वाद-विवाद और मिथ्या और गलत बातों से विस्तार को रोकने के लिये मौन ही सर्वोत्तम माध्यम है।

मानसशास्त्र में Silence का विश्लेषण

हमारे विचारों की चंचलता को रोकने हेतु मौन एक ध्यानप्रक्रिया है। यही मन को शांती प्रदान करने वाला योग है। इससे ही हमारी खुदसे पहचान होती है। हमे जीने के लिये एक नई दिशा मिलती है। हर मनुष्य का उद्दिष्ट आनंद एवं शांती ही होती है। चिरस्थायी स्वरूप शांती, सत्ता, पैसा, भौतिक सुख यह बाते सबको मोहीत करती है। परंतु इसके परिणाम स्वरूप तकलिफे ही ज्यादा मिलती है । इन सबसे मनः शांती नही मिलती बल्कि बेचैनी बढ जाती है।

हर रोज मौन रखना और ध्यान करना यह दोनों ही आध्यात्मिक विकास हेतु सहायक है।

मानसशास्त्र के अनुसार, हर रोज मनुष्य ६० हजार बार विचार करता है। उनमे से ९० से ९८ प्रतिशत विचार रोजाना की बातों से जुडे हुए रहते है|वह हर एक विचार मेंदू में केमिकल रिलिज करता है।

मनुष्य के Brain में १०० अरब Neurones रहते हैं। हर एक न्युरॉन, शरीर में लगभग १००० संपर्क बनाता हैं। हर संपर्क प्रतिसेकंद २०० बार Effective रहता है। इसवजह से २० हजार करोड खरब Calculations प्रति सेकंड शुरू रहते है।

जीवन मे मौन के लाभ

यह पुरा सिस्टम जीवन की ऊर्जा से चलता है। इस कारण अगर हम विचारों को यदि कम करना सीख जाए तो वह जीवन हेतु अधिक लाभदायी रहेगा। कुछ मिनटों के मौन से ही शरीर की ऊर्जा में वृध्दी होने में मदद होती है। विचारों में कमी लाने से हमारी सकारात्मकता में सुधार होता है। उन विचारों को नियंत्रित करने के बाद, किसी भी लक्ष्य पर हम जल्दी ध्यान केंद्रित कर पाते है। इसलिये वह विचार ज्यादा शक्तीशाली हो जाता है।

हर विचार एक रचनात्मक शक्ती होती है। इसका मतलब अगर जीवन में कोई बदलाव चाहिए , तो स्वयं में किया हुुआ बदलाव ही महत्त्वपूर्ण होता है। केवल कुछ समय के मौन धारण करने से ही, हमारे मन की आवृत्ति में बदलाव दिखाई देते हैं| मौन में अधिक फ्रीक्वेंसी की तरंगे होने की वजह से यदि कुछ विचार बाहर आते भी है| तो उनसे जीवन में अच्छे ही परिणाम मिलते हैं|और इसी वजह से मौन में कुछ भी साध्य हो सकता है।

विभिन्न महापुरुषों के मौन के प्रति विचार

सर्वज्ञो के समाज में मूर्खों का मौन रहना शोभा देता है। -- भर्तहरि

आओं हम मौन रहें ताकि फ़रिस्तों की कानाफूसियाँ सुन सकें । -- एमर्शन

अज्ञान की सबसे बड़ी सम्पति है मौन और जब वह इस रहस्य को जान जाता हैं। तब अज्ञान नहीं रहता। -- प्लेटो

विपत्ति में मौन रहना सबसे उत्तम हैं। -- ड्राइडेन

अल्पभाषी मनुष्य सर्वोत्तम हैं। -- शेक्सपियर

आपद् में मौन रहना अति श्रेयस्कर है। -- ड्राइडेन

इसका खेद अनेक बार हुआ कि में बोल क्यों पड़ा। -- पाइथोगोरस

उपाध्याय मौन का इससे अधिक हितकर रूप कुछ नहीं हो सकता कि वह झूठे आरोप और मानहानि का उत्तर बन जाय। -- जॉसेफ एडिसन

कभी आंसू भी सम्पूर्ण वक्तव्य होते हैं ।– ओविड

कभी-कभी मौन रह जाना, सबसे तीखी आलोचना होती है।

क्रोध को जीतने में मौन जितना सहायक होता है, उतनी और कोई भी वस्तु नहीं। -- महात्मा गांधी

खामोश रहो या ऐसी बात कहो जो ख़ामोशी से बेहतर हो। -- पाइथोगोरस

चींटी से अच्छा कोई उपदेश नहीं देता, और वह मौन रहती है। -- फ्रैंकलिन

जहाँ नदी गहरी होती है, वहाँ जलप्रवाह अत्यंत शांत व गंभीर होता हैं। -- शेक्सपियर

जहाँ विचारों का सम्मान न हो और सत्य अप्रिय लगे, वहाँ मौन साध लो। -- फुलर

जितना दिखाते हो उससे ज्यादा तुम्हारे पास होना चाहिए, जितना जानते हो उससे कम तुम्हें बोलना चाहिए।

जैसे घोंसला सोती हुई चिड़ियों को आश्रय देता है वैसे ही मौन तुम्हारी वाणी को आश्रय देता है। -- रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जो अपनी जिह्वा को वश में रखता है वह जीवन-भर नियन्त्रण रखता है; किन्तु जिसका जिह्वा पर वश नहीं, वह नाश को प्राप्त होता हैं। -- बाइबिल

जो झुकना जानता है, दुनिया उसे उठाती है, जो केवल अकड़ना जानता है, दुनिया उसे उखाड़ फेंकती है।

जो सही जीवन जीता है और सही है, उसके मौन में दूसरे के शब्दों से अधिक शक्ति होती है। -- फिलिप्स बुक्स

तिरस्कार दिखाने का सबसे अच्छा ढंग है, मौन। -- बर्नार्ड शॉ

तुम्हे प्रत्येक का उपदेश सुनना चाहिए जबकि अपना उपदेश कुछ ही व्यक्तियों को दो।

तोड़ो मौन की चट्टान, फोड़ी अहं का व्यवधान; आकुल प्राण के रस-गान, भीतर ही न जाएँ मर। बोली, जोर से बोली, व्यथा की ग्रंथियाँ खोली, संजोलो मन कि फूटें, कण्ठ से फ़िर गीत के निझर। -- भारतभूषण अग्रवाल

थोड़ा पढ़ना और अधिक सोचना, कम बोलना और अधिक सुनना, यही बुद्धिमान बनने का उपाय है।

धनुष से छूटा हुआ तीर ओर मुख से निकला हुआ शब्द कभी वापस नहीं लौटता।

नारी का मौन मनुष्य की वाणी के समान होता है। -- बेन जॉन्सन

प्रत्येक स्थान और समय बोलने के योग्य नहीं होते, कभी-कभी मौन रह जाना बुरी बात नहीं।

बोलने में समझदारी से काम लेना, वाक्पटुता से अच्छा है। -- बेकन

भरे बर्तन की अपेक्षा, खाली बर्तन ज्यादा शोर करते है। -- जॉन ज्वेल

मुझे कभी इसका खेद नहीं हुआ कि मैं मौन क्यों रहा, परन्तु इसका खेद अनेक बार हुआ कि मैं बोल क्यों पड़ा। -- साइरस

मुझे बोलने पर अक्सर खेद हुआ है; चुप रहने पर कभी नहीं। -- साइरस

मौन , क्रोध की सर्वोत्तम चिकित्सा है। -- स्वामी विवेकानन्द

मौन और एकांत आत्मा के सर्वोत्तम मित्र हैं। -- लांगफेलो

मौन और दृढ़ विश्वास यहीं तुम्हारी सबसे बड़ी शक्ति है। -- ओल्ड टेस्टामेंट

मौन की भाषा सबसे प्रभावी भाषा हैं पर व्यक्ति इसका इस्तेमाल बहुत कम करता हैं। -- अज्ञात

मौन के वृक्ष पर शान्ति के फल फलते हैं। -- अरबी लोकोक्ति

मौन क्रोध का दमन करने में व्यक्ति की जितनी सहायता करता है, उतना अन्य कोई नहीं सहायता करता हैं। -- महात्मा गांधी

मौन घृणा की उत्तम अभिव्यक्ति है। -- जॉर्ज बर्नार्ड शॉ

मौन ज्ञानियों की सभा में अज्ञानियों का अज्ञानियों का आभूषण है। -- भर्नुहरि

मौन निद्रा के सदृश है। यह ज्ञान में नई स्फूर्ति पैदा करता है। -- बेकन

मौन बातचीत की एक महान् कला है। -- हैजलिट

मौन में शब्दों की अपेक्षा अधिक वाक-शक्ति होती है। -- कार्लाइल

मौन रहकर मैं अन्य लोगों की कमियों को सुन लेता हूँ और अपनी कमियों को छिपा लेता हूँ। -- आस्कर वाइल्ड

मौन शक्ति का उत्कृष्ट स्रोत है। -- लाओत्ज़ु

मौनं सर्वार्थसाधनम् । (मौन सारे काम बना देता है) -- पंचतन्त्र

मौन सर्वोत्तम भाषण है। अगर बोलना ही चाहिए, तो कम से कम बोलो, एक शब्द से काम चले, तो दो नहीं। -- महात्मा गांधी

मौनं स्वीकार लक्षणम् । (किसी बात पर मौन रह जाना उसे स्वीकार कर लेने का लक्षण है।)

यदि तुम चाहते हो कि लोग तुम्हें तुम्हारी वास्तविक योग्यता से अधिक योग्य व्यक्ति समझें तो कम बोलो। बुद्धिमानी की बात कहने की अपेक्षा बुद्धिमान प्रतीत होना अधिक आसान हैं। -- ब्रुएरे

वाणी का वर्चस्व रजत है किन्तु मौन कंचन है। -- रामधारीसिंह 'दिनकर'

वाद-विवादे विष घना, बोले बहुत उपाध।

मौन गहे सबकी सहै, सुमिरै नाम अगाध । -- कबीर

वार्तालाप बुद्धि को मूल्यवान बना देता है, किन्तु एकान्त प्रतिभा की पाठशाला है । -- गिब्बन

वास्तविक महानता की उत्पत्ति स्वयं पर खामोश विजय से होती है।

हमारे पवित्र विचारों का मन्दिर मौन है। -- श्रीमती हेल

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 10.38 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.39॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥

"yac cāpi sarva-bhūtānāṁ,
bījaṁ tad aham arjuna..।
na tad asti vinā yat syān,
mayā bhūtaṁ carācaram"..।।

भावार्थ:

हे अर्जुन! वह बीज भी मैं ही हूँ जिनके कारण सभी प्राणीयों की उत्पत्ति होती है, क्योंकि संसार में कोई भी ऐसा चर (चलायमान) या अचर (स्थिर) प्राणी नहीं है, जो मेरे बिना अलग रह सके। (३९)

Meaning:

And O Arjuna, whatsoever is the seed of all beings, I am that. No moving or non-moving being can exist without me.

Explanation:

Now Shri Krishna begins to conclude the teaching of this chapter. Having provided a long list of Ishvara's divine expressions, he now gives us a simple formula to recognize him. He says that whatever we come across in the world, whether it is a living or a non-living entity, or whether it is moving or stationary, it has arisen from the seed that is Ishvara. **In other words, Ishvara is the cause or the seed of everything in this universe.**

Shree Krishna is both the efficient cause of all creation and also the material cause. Efficient cause means that he is the creator who performs the work involved in manifesting the world. Material cause means that he is the material from which creation happens. In verses 7.10 and 9.18, Shree Krishna declared himself as “the eternal seed.” Again here, he states that he is “the generating seed.” He is stressing that he is the origin of everything, and without his potency nothing can exist.

And the material cause always expresses in the effect; in the form of the very existence; when you say an ornament is: the very Is_ness or existence

does not belong to the ornament, the existence actually belongs to the gold alone; ornament is nothing but nāma and rūpa; it is an non- substantial entity; if you say nāma rūpa 'is': that Is_ness is borrowed from where; the gold. How do you prove that? remove the gold from the ornament; ornament loses its very existence. And therefore, Krishna says I am the material cause who lend existence to every product in the creation; Therefore when you say wall is: Isness belongs to me; when you say: fan is: Is_ness belongs to me; In short, I am the Sat in the creation. What did he say in the starting; Aham ātma gudakēśa. There the word ātma means that I am the very consciousness in every being; in finishing he says: I am the very existence in every being; I am sat cit svarūpaḥ; obtaining in the entire creation.

One way of understanding this is as follows. When we refer to an object, let's say it's a book, we say: "This is a book". There are two aspects pointed out here. First is the book, which is quite obvious. But we also use the word "is" to indicate that the book exists, that the book is visible, and it will be visible to someone else. Shri Krishna says that the very existence of the book, the "is-ness" of the book, is nothing but Ishvara.

Bhagavan says: I am the material cause without which nothing in the creation, moving or non-moving can exist. And therefore, if somebody asks, who is God? We say, who "Is", is God; What does that mean; Is ness is the God; all others are nama rupa only. So yat carācāram bhūtam syāt maya vina asti; tat nā; there is nothing which can exist without me. Thus, he started with cit, ended with sat; cit and sat are nirguṇa Īśvara vibhuthi; and all others are saguṇa Īśvara vibhūthiḥ; vibhūthiḥmeans mahima.

In other words, this entire universe will not exist without Ishvara. All of the names and forms in the universe use Ishvara are their basis. If we comprehend this, and develop our vision based on this knowledge, we will

automatically see Ishvara everywhere, just like we automatically “see” electricity in every electrical gadget.

।। हिंदी समीक्षा ।।

सबै घट रामु बोलै रामा बोलै, राम बिना को बोलै रे।असथावर जंगम कीट पतंगम घटि-घटि रामु समाना रे ।।

संत नामदेव की उक्त पंक्तियां, इस श्लोक के अर्थ को दर्शाती है। जिस में अर्जुन ने परमात्मा से उन की समस्त विभूतियो को बताने की प्रार्थना की थी, फिर लगभग 82 विभूतियो को बताने के बाद भगवान श्री कृष्ण सांतवे अध्याय के सनातन बीज एवम नवम अध्याय के अविनाशी बीज की बात को दोहराते हुए कहते है कि मेरी विभूतियां अनन्त है, उन में से प्रत्येक का वर्णन करना संभव नही। जब यह ब्रह्मांड, संसार , क्षर, अक्षर प्राणी मेरी ही उत्पत्ति है तो मै तो इन सब का कारक हूँ, मै ही वो बीज स्वरूप हूँ जिस से यह सब क्षर-अक्षर का विस्तार हुआ है। इसलिये जो भी हम देखते है, सुनते है, अनुभव करते है, विचार या मनन करते है उन सब को मेरी विभूति मान कर चिंतन करो।

अर्जुन का प्रश्न था कि भक्त योग में परमात्मा का चिंतन किस प्रकार करे, क्योंकि जो इन्द्रिय अगोचर है, उस की भक्ति करने में कठनाई होती है। इसलिये परब्रह्म का कुछ स्वरूप भक्ति करने के लिये होना चाहिये। संसार में जडचेतन, स्थावरजङ्गम, चरअचर आदि जो कुछ भी देखने में आता है, वह सब परमात्मा बिना नहीं हो सकता। इसलिये भगवान कहते है कि सब मेरे से ही होते हैं अर्थात् सब कुछ मैं ही मैं हूँ। इस वास्तविक मूल तत्त्व को जान कर साधक की इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि जहाँ कहीं जायँ अथवा मनबुद्धि में संसार की जो कुछ बात याद आये, उन सब को भगवान् का ही स्वरूप माने। ऐसा मानने से साधक को भगवान् का ही चिन्तन होगा, दूसरे का नहीं क्योंकि तत्त्व से भगवान् के सिवाय दूसरा कोई है ही नहीं।

विश्व की बीजावस्था- बीज में वृक्ष की अव्यक्त अवस्था के तुल्य है। अनुकूल परिस्थितियों को पाकर बीज से अंकुर फूटकर ऊपर की ओर तने का रूप ले लेता है और उसी प्रकार भूमि के अन्दर उस का मूल उतनी गहराई तक पहुँचता है। नाम और रूपमय यह सम्पूर्ण विश्व जब अपनी अव्यक्त अवस्था में होता है तब वह उपनिषदों के अनुसार, प्रलय की स्थिति कहलाती है। यह समष्टि प्रलय का सिद्धांत व्यष्टि की दृष्टि से विचार करने पर बुद्धिगम्य हो जाता है।

हमारी सुषुप्ति अवस्था में, हमारे व्यक्तिगत स्वभाव, चरित्र, क्षमता, शिक्षा, संस्कृति, सद्व्यवहार आदि सब अव्यक्त स्थिति में विद्यमान रहते हैं। संक्षेप में, निद्रावस्था में हमारे व्यक्तित्व की विशेषताएं बीजावस्था में रहती हैं। विश्राम काल के अन्तराल के बाद, जब ये वासनाएं स्वयं को व्यक्त करने के लिए अधीर हो उठती हैं, तब यदि अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त हो जायें, तो वे पूर्णरूप से व्यक्त होती हैं। इसी प्रकार समष्टि मन की विश्राम की अवस्था में सम्पूर्ण जीवों की वासनाओं के साथ यह विश्व बीजावस्था में विद्यमान रहता है। यह एक अत्यन्त सुन्दर एवं तत्त्वबोधक उदाहरण हमारे प्राचीन ऋषियों ने दिया है। गर्भावस्था से, कालान्तर में अनुकूल परिस्थितियों में, यह अव्यक्त सृष्टि व्यक्त होती है और उसकी इस प्रथम अभिव्यक्ति को ऋषियों ने सुन्दर नाम दिया है हिरण्यगर्भ। इस शब्द का अर्थ है, चराचर जगत् का गर्भ। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण समष्टि कारण शरीर अर्थात् समस्त प्राणियों की वासनाओं के साथ तादात्म्य करके, सर्वज्ञ ईश्वर के रूप में कहते हैं कि वे वह महान् बीज हैं, जिस से यह संसार वृक्ष फलीभूत हुआ है तथा भविष्य में भी असंख्य बार ऐसा ही होता रहेगा।

विज्ञान और वेदांत की प्रामाणिकता का आधार उस की मनन और निदिध्यासन के निकले हुए निष्कर्ष होते है। इस सृष्टि की रचना एक ब्रह्म या अणु से हुई और यह हिरण्यगर्भ से विकसित होते होते विभिन्न जीव और जड़ वे चेतन जीव उत्पन्न हुए। अतः सृष्टि का मूल वह एक मात्र परब्रह्म ही है और विज्ञान में भी एक अणु अर्थात God particle से यह सृष्टि का विकास हुआ।

लौकिक अनुभव यह है कि बीज से वृक्ष की उत्पत्ति होने की प्रक्रिया में स्वत बीज का नाश हो जाता है। अत भगवान् के कथन से गीता का कोई विद्यार्थी यह न समझ ले कि इस विश्व की उत्पत्ति में स्वयं भगवान् नष्ट हो जाते हैं इस प्रकार की विपरीत धारणा की निवृत्ति के लिए, श्रीकृष्ण कहते हैं, ऐसा कोई चर या अचर भूत नहीं है, जो मेरे बिना रहता है। परमात्मा का बीजत्व ऐसे ही है, जैसे समुद्र तरंगों का बीज है। तरंगों की उत्पत्ति और विकास समुद्र से भिन्न स्थान पर नहीं होते। जहाँ समुद्र नहीं, वहाँ तरंगों का भी अस्तित्व नहीं हो सकता। उसी प्रकार, असंख्य तरंगों की उत्पत्ति में स्वयं समुद्र कभी नष्ट नहीं होता।यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उस अविद्या से प्रकट होता है, जो मानों सत्य को आच्छादित कर देती है। इस अविद्या का अस्तित्व और उसकी भ्रमोत्पादक शक्ति ये दोनों ही प्रक्षेपित जगत् के स्रोतभूत ब्रह्म में ही स्थित होते हैं। यह आत्म अज्ञान ही सृष्टि का कारण है। चैतन्य आत्मा के बिना यह अविद्या और अविद्याजनित हमारे संसार के दुख प्रकाशित नहीं होते और हमें

उनका भान तक नहीं होता।जैसे तरंगों का जनक, धारक और पोषक जल ही है, वैसे ही चैतन्य आत्मा इस संसार वृक्ष का जनक और पोषक है। आंशिक कथन में वे इस बात को भी जोड़ते हैं कि मेरे बिना कोई भूतवस्तु नहीं रह सकती। इसलिए यह विश्व भगवत्स्वरूप ही है।

जैसे यहाँ गीता में भगवान् ने अर्जुन से अपनी विभूतियाँ कही हैं, ऐसे ही श्रीमद्भागवत में (ग्यारहवें स्कन्ध के सोलहवें अध्याय में) भगवान् ने उद्धवजी से अपनी विभूतियाँ कही हैं। गीता में कही कुछ विभूतियाँ भागवत में नहीं आयी हैं और भागवत में कही कुछ विभूतियाँ गीता में नहीं आयी हैं। गीता और भागवत में कही गयी कुछ विभूतियों में तो समानता है, पर कुछ विभूतियों में दोनों जगह अलग अलग बात आयी है; जैसे -- गीता में भगवान् ने पुरोहितों में बृहस्पति को अपनी विभूति बताया है -- 'पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्' (10। 24) और भागवत में भगवान् ने पुरोहितों में वसिष्ठजी को अपनी tv विभूति बताया है -- 'पुरोधसां वसिष्ठोऽहम्' (11। 16। 22)। अब शङ्का यह होती है कि गीता और भागवत की विभूतियों का वक्ता एक होने पर भी दोनों में एक समान बात क्यों नहीं मिलती? इसका समाधान यह है कि वास्तव में विभूतियाँ कहने में भगवान् का तात्पर्य किसी वस्तु, व्यक्ति आदि की महत्ता बताने में नहीं है, प्रत्युत अपना चिन्तन कराने में है। अतः गीता और भागवत - दोनों ही जगह कही हुई विभूतियों में भगवान् का चिन्तन करना ही मुख्य है। इस दृष्टि से जहाँ-जहाँ विशेषता दिखायी दे, वहाँ-वहाँ वस्तु, व्यक्ति आदि की विशेषता न देखकर केवल भगवान् की ही विशेषता देखनी चाहिये और भगवान् की ही तरफ वृत्ति जानी चाहिये।

भगवान कहते हैं: मैं वह भौतिक कारण हूँ जिसके बिना सृष्टि में कोई भी वस्तु, चर या अचर, अस्तित्व में नहीं रह सकती। और इसलिए अगर कोई पूछे कि भगवान कौन है? हम कहते हैं, जो "है", वह ईश्वर है; इसका क्या मतलब है; अस्तित्व ही ईश्वर है; अन्य सभी नाम रूप ही हैं। तो यत् चराचरं भूतं स्यात् मया विना अस्ति; तत् ना; ऐसा कुछ भी नहीं है जो मेरे बिना अस्तित्व में हो। इस प्रकार उन्होंने चित्त से शुरू किया, सत् पर समाप्त किया; चित और सत् निर्गुण ईश्वर विभूति हैं; और अन्य सभी सगुण ईश्वर विभूतिः हैं; विभूतिः मतलब महिमा.

विभूति चिंतन में ऋणात्मक बातों का चिंतन नही है क्योंकि यह परमात्मा की विभूति का अभाव है जिस का चिंतन परमात्मा के स्वरूप से नही हो सकता। यह स्वरूप परमात्मा का

ही है परंतु चिन्तन स्वरूप परमात्मा के अभाव का है। सुर-असुर, नीच एवम दुष्ट व्यक्ति सभी परमात्मा के ही स्वरूप है किंतु यह अहम, कामना एवम अपने कर्मो से लिप्त है, इसलिये इन को चिंतन योग्य नही माना चाहिए।

।। हरि ॐ तत सत।।10.39।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.40॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥

nānto 'sti mama divyānāṁ,
vibhūtīnāṁ parantapa..।
eṣa tūddeśataḥ prokto,
vibhūter vistaro mayā..।।

भावार्थ:

हे परन्तप अर्जुन! मेरी लौकिक और अलौकिक ऎश्वर्यपुर्ण स्वरूपों का अंत नहीं है, मैंने अपने इन ऎश्वर्यों का वर्णन तो तेरे लिए संक्षिप्त रूप से कहा है। (४०)

Meaning:

There is no end to my divine expressions, O scorcher of foes. For, what has been spoken of my expressions is (just) an indicator.

Explanation:

Shri Krishna, speaking as Ishvara, began enumerating his divine expressions in the beginning of this chapter. As we have seen so far, he has highlighted the most glorious, powerful and awe-inspiring aspects of his creation. In this shloka, he admits that it is next to impossible to list every single aspect of creation. But he also asserts that every single aspect of creation is divine, since it has sprung out of Ishvara himself. He told that "I have stopped the enumeration of My glories, not because my glories have been exhausted. If

I have to enumerate all the glories the list is inexhaustible." Since, there is no end to divine glory. It can never be exhausted by Krishna himself.

The question can be asked that if everything is the opulence of God, then what was the need of mentioning these? The answer is that Arjun had asked Shree Krishna how he should think of him, and these glories have been described in response to Arjun's question. The mind is naturally drawn to specialties, and thus, the Lord has revealed these specialties amongst his powers. Whenever we see a special splendor manifesting anywhere, if we look on it as God's glory, then our mind will naturally be transported to him. In the larger scheme of things, however, since God's glories are in all things big and small, one can think of the whole world as providing innumerable examples for enhancing our devotion. A paint company in India would advertise, "Whenever you see colors think of us." In this case, Shree Krishna's statement is tantamount to saying, "Wherever you see a manifestation of glory, think of me."

Let us go back to the example of Mr. X and his shiny new car. The seed of sorrow was planted the minute he started considering that "the car is mine". Instead, if Mr. X thinks that the car is Ishvara's creation, he will immediately drop his sense of "mine-ness" from it. Furthermore, he realizes that the car is a temporary object and will eventually cease to exist. He also comes to know that the sense of joy he derives from buying a new car is not from the car, but it is from the presence of Ishvara inside it. So if something happens to the car, he remains unaffected and unperturbed.

Now having gone through the list, we find that a 21st century person like us has difficulty identifying with Puraanic glories that would have been familiar to Arjuna. How should we deal with this issue? Shri Krishna gives the answer in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अठारहवें श्लोक में अर्जुन ने कहा कि आप अपनी दिव्य विभूतियों को विस्तार से कहिये, तो उत्तर में भगवान् ने कहा कि मेरी विभूतियों के विस्तार का अन्त नहीं है। ऐसा कह कर भी भगवान् ने अर्जुन की जिज्ञासा के कारण कृपापूर्वक अपनी विभूतियों का विस्तार से वर्णन किया। परन्तु यह विस्तार केवल लौकिक दृष्टि से ही है। इसलिये भगवान् यहाँ कह रहे हैं कि मैंने यहाँ जो विभूतियों का विस्तार किया है, वह विस्तार केवल तेरी दृष्टि से ही है। मेरी दृष्टि से तो यह विस्तार भी वास्तव में बहुत ही संक्षेप से (नाममात्रका) है क्योंकि मेरी विभूतियोंका अन्त नहीं है। अतः जब सभी कुछ परमात्मा ही है तो उस की विभूतियों का वर्णन अंतहीन अर्थात असंभव सा है।

कारण कि **भगवान् अनन्त हैं तो उन की विभूतियाँ, गुण, लीलाएँ आदि भी अनन्त हैं हरि अनंत हरि कथा अनंता।** इसलिये भगवान् ने विभूतियों के उपक्रम में और उपसंहार में दोनों ही जगह कहा है कि मेरी विभूतियों के विस्तार का अन्त नहीं है। श्रीमद्भागवत में भगवान् ने अपनी विभूतियों के विषय में कहा है कि मेरे द्वारा परमाणुओं की संख्या समय से गिनी जा सकती है, पर करोड़ों ब्रह्माण्डों को रचने वाली मेरी विभूतियों का अन्त नहीं पाया जा सकता। भगवान् अनन्त, असीम और अगाध हैं। संख्या की दृष्टि से भगवान् अनन्त हैं अर्थात् उनकी गणना परार्द्ध तक नहीं हो सकती। सीमा की दृष्टि से भगवान् असीम हैं। सीमा दो तरह की होती है, कालकृत और देशकृत। अमुक समय पैदा हुआ और अमुक समय तक रहेगा, यह कालकृत सीमा हुई और यहाँ से लेकर वहाँ तक यह देशकृत सीमा हुई। भगवान् ऐसे सीमा में बँधे हुए नहीं हैं। तल की दृष्टि से भगवान्,अगाध हैं। अगाध शब्द में गाध नाम तल का है जैसे, जल में नीचे का तल होता है। अगाध का अर्थ हुआ जिस का तल है ही नहीं, ऐसा अथाह गहरा।

अब यह प्रश्न सामने आता है कि यदि सब कुछ भगवान का ही ऐश्वर्य है तब इनका उल्लेख करने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा था कि वह उनके दिव्य स्वरूप को कैसे समझे इसलिए अर्जुन के प्रश्न की प्रतिक्रिया में श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों का वर्णन किया। मन विशिष्ट गुणों की ओर आकर्षित होता है इसलिए भगवान ने अपनी शक्तियों की विलक्षणताओं को प्रकट किया है। जब कभी हम कहीं पर विशद वैभवशाली अभिव्यक्तियों को देखते हैं, यदि हम उन्हें भगवान की महिमा के रूप में देखते हैं तब हमारा मन स्वाभाविक रूप से भगवान के सम्मुख हो जाएगा। जबकि सृष्टि निर्माण की वृहत योजना में भगवान की महिमा सभी छोटी और बड़ी वस्तुओं में व्याप्त है

फिर भी हम यह समझ सकते हैं कि सारा संसार हमारी श्रद्धा भक्ति बढ़ाने के लिए असंख्य आदर्श और उदाहरण उपलब्ध करवाता है।

भारत में एक पेंट कम्पनी अपने विज्ञापन में इसे इस प्रकार से व्यक्त करती है-'जब भी आप रंगों को देखोगे तब हमारे बारे में सोचोगे।' इस प्रकरण में श्रीकृष्ण का कथन भी समान है- "जहाँ भी आप महिमा की अभिव्यक्तियों को देखें तब मेरे बारे में सोचें।"

शल्य चिकित्सा के विद्यार्थियों को सर्वप्रथम एक सप्ताह के मृत देह पर शल्यक्रिया करने को कहा जाता है यह कोई असत्य नहीं है यह सत्य है कि कितनी ही कुशलता से शल्यक्रिया करने पर भी वह मृत रोगी पुनर्जीवित होने वाला नहीं है, परन्तु इस प्रकार के अभ्यास का प्रयोजन विद्यार्थी को उस अनुभव को कराना है, जो अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करने के लिए जीवन में आवश्यक होता है। इसी प्रकार, भगवान् यहाँ अर्जुन को दृश्य के द्वारा अदृश्य का दर्शन करने की कला को सिखाने के लिए अपनी कुछ विशेष विभूतियों का वर्णन करते हैं।उनका यह उद्देश्य उन की इस स्वीकारोक्ति में स्पष्ट होता है, किन्तु मैंने अपनी विभूतियों का विस्तार संक्षेप से कहा है। भगवान् द्वारा किया गया वर्णन पूर्ण नहीं कहा जा सकता। साधकों को प्रशिक्षित करने के लिए उन्होंने कुछ विशेष उदाहरण ही चुन कर दिये हैं।

अव्यक्त शब्द का प्रयोग प्रकृति तथा ब्रह्म के लिये किया जाता है। ॐ :- अव्यक्त अर्थात् जो व्यक्त नही है अव्यक्त प्रकृति , पुरुष (अविनाशी जीव) , ब्रह्म के लिए प्रयोग होता है। वेद कहते है कि सृष्टि पूर्व में अपने कारण अवस्था में लीन थी अर्थात अव्यक्त थी वह इस अवस्था में थी जिसे किसी भी उपकरण या मन , बुद्धि, इन्द्रियों द्वारा नही जाना जा सके जिसे वेद ने अव्यक्त कहा अर्थात जो इंद्रियों से परे हो या जिसका ज्ञान या अनुभव इंद्रियों से न हो सके।

ब्रह्म (संस्कृत : ब्रह्मन्) हिन्दू (वेद परम्परा, वेदान्त और उपनिषद) दर्शन में इस सारे विश्व का परम सत्य है और जगत का सार है। वो दुनिया की आत्मा है। वो विश्व का कारण है, जिस से विश्व की उत्पत्ति होती है , जिस से विश्व आधारित होता है और अन्त में जिस में विलीन हो जाता है। वो एक और अद्वितीय है। वो स्वयं ही परमज्ञान है और प्रकाश- स्त्रोत की तरह रोशन है। वो निराकार, अनन्त, नित्य और शाश्वत है। ब्रह्म सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।

ब्रह्म को मन से जानने कि कोशिश करने पर मनुष्य योग माया वश उस परम् ब्रह्म की परिकल्पना करता है और संसार में खोजता है तो अपर ब्रह्म जो प्राचीन प्रार्थना स्थल की

मूर्ति है उसे माया वश ब्रह्म समझ लेता है अगर कहा जाए तो ब्रह्म को जानने की कोशिश करने पर मनुष्य माया वश विभूति को ही परमात्मा समझ लेता है।

परब्रह्म या परम-ब्रह्म ब्रह्म का वो रूप है, जो निर्गुण और अनन्त गुणों वाला भी है। जब भी उस के व्यक्त अर्थात विभूति स्वरुप का वर्णन हुआ है, "नेति-नेति" करके इसके गुणों का खण्डन किया गया है, पर ये असल में अनन्त सत्य, अनन्त चित और अनन्त आनन्द है। अद्वैत वेदान्त में उसे ही परमात्मा कहा गया है, ब्रह्म ही सत्य है, बाकि सब मिथ्या है।

ब्रह्म मनुष्य है सभी मनुष्य उस ब्रह्म के प्रतिबिम्ब अर्थात आत्मा है सम्पूर्ण विश्व ही ब्रह्म है जो शून्य है वह ब्रह्म है मनुष्य इस विश्व की जितना कल्पना करता है वह ब्रह्म है । ब्रह्म स्वयं की भाव इच्छा सोच विचार है । ब्रह्म सब कुछ है और जो नहीं है वह ब्रह्म है ।

व्यवहार में प्रत्येक जन एवम श्रेष्ठ में परमात्मा की विभूति हमे प्रेरित करती है कि हम अपने को उस उच्च श्रेणी के लिये प्रयासरत करे। किसी भी व्यक्ति के परमात्मा के प्रति श्रद्धा और विश्वास उस के सकारात्मक गुणों के विकास के अनिवार्य है।

उदाहरण में हम जब परिवार में रहते है तो हमें अपने माता - पिता, भाई - बहन, पत्नी और बच्चों के साथ उन के अनुकूल व्यवहार से रहना होता है। किंतु सभी अपनी अपनी नियति और विचारों में साथ साथ रहते हुए भी, पृथक पृथक भावनाए और संबंध रखते है। यदि अच्छे संबंध जुड़े रहे तो उसे परमात्मा ही विभूति मानने से आपस में द्वेष या स्वार्थ को स्थान नही मिलेगा। किंतु यदि उस को सांसारिक हो कर अहम, ममत्व और स्वार्थ में जीने की चेष्टा करे तो काल के अंतराल में जब परिवार बड़ा होने के बाद टूटने लगता है तो अवसाद, भय ,क्रोध , लोभ और स्वार्थ को ज्यादा अहमियत मिलती है। जब हम प्रत्येक क्रिया और वस्तु में परमात्मा की विभूति के स्वरूप में जुड़ कर आनंद लेते है तो वह आनंद उस क्रिया या वस्तु के छूटने या नष्ट होने पर अवसाद या दुख का कारण नहीं बन सकता।

जो साधक इन विभूतियों का ध्यान कर के अपने मन को पूर्णत प्रशिक्षित कर लेगा, वह इस बहुविध सृष्टि के पीछे स्थित एक अनन्त परमात्मा को सरलता से सर्वत्र पहचानेगा।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.40।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.41॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥

"yad yad vibhūtimat sattvaṁ,
śrīmad ūrjitam eva vā..।
tat tad evāvagaccha tvaṁ,
mama tejo- 'ṁśa- sambhavam"..।।

भावार्थ:

जो-जो ऐश्वर्ययुक्त, कांतियुक्त और शक्तियुक्त वस्तुयें है, उन-उन को तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुआ समझ। (४१)

Meaning:

Whichever entity is endowed with majesty, prosperity and also energy, you should understand that all those as born out of a fraction of my power.

Explanation:

Since it is difficult for someone in our time to identify with Puraanic expressions of Ishvara, Shri Krishna gives us a simple suggestion. He says that anything that appeals to our mind and senses, any object or person that is endowed with grandeur, perfection, knowledge and power, anything that inspire awe and wonder is Ishvara's expression. So we are free to choose anything that meets this criteria.

Electricity flowing through a speaker creates sound, but one who does not know the principle behind how it works may think that the sound comes from the speaker itself. Similarly, whenever we observe extraordinary splendor anywhere, whatever catches our imagination, sends us in raptures, and infuses us with bliss, we should know it to be but a spark of the glory of God. He is the infinite reservoir of beauty, glory, power, knowledge, and opulence. He is the powerhouse from where all beings and things get their

splendor. Thus, we must make God, who is the source of all glory, the object of our worship.

So, if we live in India, the Taj Mahal becomes Ishvara's expression and in USA, the Grand Canyon. If we like western classical music, the Mahler Symphony No. 9 in D Major becomes Ishvara's vibhooti and if we like Indian classical music, a rendition by Bhimsen Joshi. An engineer can admire marvels such as the tallest building in the world or the space shuttle. And all of us can admire the thousands of nameless people who are working in NGOs to better the world as yet another expression of Ishvara.

Now, Shri Krishna makes another important point here. If we add up all the glories in the universe, that glory is but a fraction of Ishvara's glory. Just like we always think of a country's government whenever we see a police officer, we should always think of Ishvara whenever we see or think of any of his expressions. Arjuna had asked the question as to how he could know Ishvara. With this shloka, Shri Krishna has provided the answer. We use the visible expression to remind us of the invisible Ishvara.

What should we do? Whenever we see something wonderful and glorious, we should remember that the glory is coming from Ishvara, not from that object or person. Next, we should remember that Ishvara is infinitely more powerful and glorious than the object or person. In this manner, we will be able to maintain a constant awareness of Ishvara.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन का प्रश्न था कि वो उन को किस प्रकार चिंतन करे, किस प्रकार परमात्मा की जाने, तो परमात्मा ने अपनी कुछ विभूतियो का उदाहरण दे कर परमात्मा की उपस्थिति का बोध करवाया। अब वो अंत मे कहते है कि व्यक्ति, घटना, परिस्थिति, गुण, भाव, क्रिया आदि में जो कुछ ऐश्वर्य दिखे, शोभा या सौन्दर्य दिखे बलवत्ता दिखे तथा जो कुछ भी विशेषता, विलक्षणता, योग्यता दिखे, उन सब को मेरे तेज के किसी एक अंश से उत्पन्न हुई जानो।

तात्पर्य है कि उन में वह विलक्षणता मेरे योग से, सामर्थ्य से प्रभाव से ही आयी है , ऐसा तुम समझो ।

स्पीकर द्वारा प्रवाहित हो रही बिजली ध्वनि उत्पन्न करती है किन्तु जो इसके पीछे के सिद्धान्त को नहीं जानता। वह सोचता है कि ध्वनि स्पीकर से आती है। समान रूप से जब हम किसी असाधारण ज्योति को देखते है जो हमारी कल्पना शक्ति को हर्षोन्माद कर देती है और हमें आनन्द में निमग्न कर देती है तब हमें उसे और कुछ न मानकर भगवान की महिमा का स्फुलिंग मानना चाहिए। वे सौंदर्य, महिमा, शक्ति, ज्ञान और ऐश्वर्य के अनन्त सरोवर हैं। वे विद्युत गृह (पावर हाउस) हैं जहाँ से सभी जीव और पदार्थ अपनी ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इसलिए हमें भगवान जो सभी प्रकार के वैभवों का स्रोत हैं उन्हें अपनी पूजा का लक्ष्य मानना चाहिए।

वस्तुतः प्रकृति के सत-रज-तम गुणों में यदि हम अपने सात्विक गुण को विकसित करें, तो यह हमारे व्यक्तित्व विकास का सोपान होगा। क्योंकि बताई गई समस्त जड़-चेतन की समस्त विभूतियाँ उन के इन्ही गुणों के आधार पर है कि जिस किसी ने सात्विक गुण में महारत हासिल की, वह परमात्मा की योगक्षेम वहन करने से ही उत्पन्न हुई। यद्यपि परमात्मा ने अपनी विभूति में ब्रह्मांड के जड़-चेतन के प्रत्येक तत्व एवम घटना में अपनी उपस्थिति दर्ज की किन्तु श्रेष्ठ को अपनी विभूति कह कर स्पष्ट कर दिया कि मनुष्य को परमात्मा का चिंतन सामान्य जीवन पैदा हो कर, खाते-पीते शहीद होने की उपेक्षा उन व्यक्तित्व को स्मरण या चिंतन करते हुए करना चाहिए, जिन्होने विभिन्न परिस्थितियों का सामना करते हुए, अपने क्षेत्र में श्रेष्ठता हासिल की। जीवन मे आदर्शो के संग अपने व्यक्तित्व का विकास ही परमात्मा का वास्तविक रूप में चिंतन है।

भगवान गुण वाचक शब्द है जिसका अर्थ गुणवान होता है। यह "भग" धातु से बना है ,भग के ६ अर्थ है:- १-ऐश्वर्य २-वीर्य ३-स्मृति ४-यश ५-ज्ञान और ६ वैराग्य ये ६ गुण है वह भगवान है, अर्थात जहां भी इन गुणों से युक्त कुछ भी दिखे तो समझो परमात्मा के दर्शन हो रहे है।

गीता के समय काल को छोड़ कर आज यह चिंतन स्वामी विवेकानंद, नानकदेव या अन्य सिख गुरु, कबीर, रविदास, बुद्ध, महावीर, सत्यनारायण स्वामी, सरदार पटेल, राजेंद्र प्रसाद, रामसुखदासजी, डोंगरे महाराज, लक्ष्मीबाई, शिवाजी महाराज और समाज सेवा की संस्थाएं, उद्योगपति, देश की रक्षा के सीमा पर खड़े सैनिक से ले कर देश और धर्म की रक्षा के अपने

प्राणों को निछावर करने वाले सैनिक और नागरिक आदि आदि का उन के तेज, शौर्य एवम निष्ठा के साथ परमात्मा को ही देख सकते है।

मनुष्य को जिस जिस में कोई भी विशेषता मालूम दे, उस उस में भगवान् की ही विशेषता मानते हुए भगवान् का ही चिन्तन होना चाहिये। अगर भगवान् को छोड़कर दूसरे वस्तु, व्यक्ति आदि की विशेषता दीखती है, तो यह,पतन का कारण है।अगर उस वस्तु का होता तो वह सब समय रहता, केवल उस वस्तु विशेष में होता किसी अन्य में नही और सब को दिखता पर वह न तो सब समय रहता है और न सब को दिखता है। एक वेश्या बड़े सुन्दर स्वरों में गाना गा रही थी तो उसको सुनकर एक सन्त मस्त हो गये कि देखो ठाकुरजी ने कैसा कण्ठ दिया है कितनी सुन्दर आवाज दी है तो सन्त की दृष्टि वेश्या पर नहीं गयी, प्रत्युत भगवान् पर गयी कि इस के कण्ठ में जो आकर्षण है, मिठास है, वह भगवान् की है।

जीव को जब प्रकृति अर्थात योगमाया नियंत्रित कर लेती है तो वह प्रकृति के सत - रज - तम गुण में व्यवहार करता है। क्योंकि ईश्वर तत्व का अर्थ है जिस ने प्रकृति को जीत लिया है, अतः जो भी विशेषता प्रकृति के गुण से उत्पन्न हो, उस में सत्व गुण प्रधान जीव जो गुणातीत विशेषण से युक्त हो, उस में ही ईश्वर अर्थात परमात्मा तत्व झलकता है, इसलिए निकृष्ट गुण परमात्मा की विभूति नही हो सकते, वे प्रकृति के गुण होते है।

ईश्वर यह भी उपदेश दे रहे है कि किसी व्यक्ति में ऐष्वर्य, तेज, कांति आदि दिखती है तो व्यक्ति विशेष की समझ कर हम उस की पूजा करने लगते है जबकि पूजा उस गुण की होनी चाहिए, व्यक्ति विशेष की नही। क्योंकि परमात्मा नित्य है व्यक्ति विशेष नही। ऐसे ही व्यक्ति जिस में यह गुण हो परमात्मा की देन समझ कर जनहित में उपयोग करना चाहिए क्योंकि जो उस उसे मिला है वो परमात्मा है इसलिये जब तक परमात्मा चाहेगा उस के पास रहेगा। स्वयम को विशेष गुण के रहते परमात्मा समझना ही पतन का कारण है।

पूर्व में श्लोक 24 में गुरु बृहस्पति के ज्ञान स्वरूप की विभूति में एवम श्लोक 27 में राजा के शासन करने की कर्तव्यनिष्ठा में स्वयम का स्वरूप बताने से ज्यादा समझने को कहा गया इसलिये विद्धि शब्द का प्रयोग किया गया। क्योंकि कर्म एवम ज्ञान समझने के लिए है, यही बात अब अवगच्छ कह कर परमात्मा कह रहे है, कि परमात्मा अंधविश्वास के साथ तेज, ऐष्वर्य, धन, पद, ज्ञान देख कर मान लेने से ज्यादा समझने को कह रहे है जिस से परमात्मा का चिंतन सही कर सके।

चिंतन उच्च कोटि के आदर्शों का करते रहने से हमारा स्वभाव, आदत, रहन-सहन, बोलचाल और व्यवहार में भी परिवर्तन आता है, अतः यह आध्यात्मिक अध्याय होने के साथ साथ चरित्र निर्माण के लिये उच्च कोटि का सरल उपाय है।

व्यवहार में मन की अधोगति होने से स्वर्ण देख कर लोभ, स्त्री देख कर वासना, अधिकार और सुविधाएं देख कर पद या सत्ता की लालसा उत्पन्न हो जाती है। किंतु उस से सत्व गुण के अभ्यास और मेहनत की अपेक्षा तमों गुण में आलसी बने रहे तो किसी भी विशिष्ट गुण युक्त वस्तु देख कर ईर्ष्या उत्पन्न होगी, किंतु यदि वही परमात्मा का स्वरूप समझ कर देखे तो उस से आनंद की अनुभूति होगी। यह आनंद की अनुभूति ही किसी व्यक्ति के ईश्वर तत्व के निकट होने का प्रमाण है। किसी परिवार में पिता के चार पुत्र हो तो परिवार का गौरव जिस पुत्र के कारण बढ़ता है उसे ही उस परिवार की विभूति कहेंगे, जब की परिवार के सदस्य सभी पुत्र होंगे। परमात्मा का अंश सभी जड़ और चेतन में है किंतु विभूति वही है जिस में परमात्मा के सत्व गुण अधिक होंगे।

कल अंतिम श्लोक के साथ इस अध्याय को समाप्त करते हुए, भगवान श्री कृष्ण क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।।10.41।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 10.42॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमे कांशेन स्थितो जगत् ॥

"atha vā bahunaitena,
kiṁ jñātena tavārjuna..।
viṣṭabhyāham idaṁ kṛtsnam,
ekāṁśena sthito jagat"..।।

भावार्थ:

किन्तु हे अर्जुन! तुझे इस प्रकार सारे ज्ञान को विस्तार से जानने की आवश्यकता ही क्या है, मैं तो अपने एक अंश मात्र से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण करके सर्वत्र स्थित रहता हूँ। (४२)

Meaning:

Now, what is the need for you to know these details, O Arjuna? With a fraction of myself, sustaining this entire universe, I am established.

Explanation:

Shree Krishna's statement indicates that he has already answered the question. Now, of his own accord, he wants to tell something remarkable. Having revealed many amazing aspects of his splendour, he says that the magnitude of his glory cannot be judged even from the sum total of what he has described, for the entire creation of unlimited universes is held within a fraction of his being.

Therefore, instead of saying I am in the creation; I would like to reverse it and say: the whole creation is in Me. I am in everything; I would like to say everything is in Me. In fact, I remain supporting the entire creation; or the entire creation is in me. Like space is not within this Hall; that is not the correct statement; all the Halls are in space.

In the days when we would stay employed with the same firm for a majority of their career, we would start with an entry level job as a junior accountant, let us say, and work our way up the corporate ladder. Over a period of fifteen or twenty years, that junior accountant could end up being promoted to chief financial officer. At that point, he would no longer be concerned with trivial details such as checking receipts against journal entries and so on. He would focus on bigger issues such as the financial health of the entire company.

Similarly, when Shri Krishna provided a long list of Ishvara's expressions, he wanted to ensure that Arjuna did not get stuck at the level of knowing more and more expressions. He wanted Arjuna to stop asking more questions, take a step back and ask himself a very basic question.

If Ishvara is present in everything in the universe and Ishvara is also present in me, is there anything else in the universe besides Ishvara? In other words, if Ishvara is in everything, isn't everything in Ishvara ultimately? It is like asking: If there is space in everything including me and including every atom, isn't everything in space?

With this intriguing thought, Shri Krishna concludes the tenth chapter and sets the stage for the eleventh chapter. While the tenth chapter was about how the one Ishvara was in all, the eleventh chapter is about how all is in the one Ishvara.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जिस के एक अंश मात्र से पूरा ब्रह्मांड, सृष्टि, ब्रह्मा, लोक, जड़-चेतन सम्पूर्ण व्याप्त है, जो कण कण में है, जिस के सिवाय कुछ भी नही है यदि उस से विभूतियां का वर्णन करने को कहा जाए तो ऐसी स्थिति में सदाहरण और विशिष्ट भेदों की परिकल्पना किस दृष्टि से की जाय? इस प्रकार का भेद भाव की परिकल्पना करना मानो घृत का मंथन करना या वायु के दाएं या बाए अंग को खोजना है।

इसलिये इस अध्याय के अंत मे परमात्मा अर्जुन से सीधा प्रश्न करते है कि जब मेरे स्वरूप में सामान्य एवम विशेष वाली भेदमूलक कोई भी बात नही तो तुम मेरी एक एक विभूति को पृथक पृथक कर के मेरे आपार स्वरूप को कहा तक नापोगे, तुम्हारा यह जानने का प्रयोजन क्या है। अतः मेरे स्वरूप को जानने की चेष्ठा छोड़ कर समबुद्धि से मेरा स्मरण करो।

इसका कारण है कि समस्त असंख्य ब्रह्माण्डों में रचित सारी भौतिक सृष्टियाँ भगवान का केवल एक चौथाई अंश हैं। शेष तीन चौथाई आध्यात्मिक अभिव्यक्तियाँ हैं।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।। (पुरुष सूक्तम् मंत्र-3)

"भौतिक शक्ति से निर्मित अस्थायी संसार पुरुषोत्तम भगवान का केवल एक अंश है। अन्य तीन अंश उनके नित्य लोक हैं जो जन्म और मृत्यु के आभास से परे हैं।"

परमात्मा का यह कथन इतनी विभूति बताने के बाद क्यों आया तो मनुष्य की बुद्धि को जानना भी जरूरी है, जब किसी भी व्यक्ति से परिचय मांगा जाए तो वह प्रथम उन बातों का

जिक्र करेगा जो वह उच्च स्थान पर करता है या उस ने अलग हट कर किया है, यह उस के प्रति जिज्ञासा या सम्मान पैदा करने के लिये किया जा सकता है किन्तु वो उस से नीचे के सभी काम या तो कर चुका होगा या कर सकने की क्षमता रखता है। **TATA** के उत्पादन के विज्ञापन में उस के उच्च उत्पादकों के साथ अंत मे सुई का भी बताया जाता है। हमारी क्षमता हमारी उच्च उत्पादकता से नापी जाती है, निम्नता से नही।

प्रकृति का बहुत क्षुद्र अंश हमारी बुद्धि है। बुद्धि में कई भाषाओं का, कई लिपियों का, कई कलाओं का ज्ञान होने पर भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि हमारी बुद्धि अनेक भाषाओं आदि के ज्ञान से भर गयी है अतः अब दूसरी भाषा, लिपि आदि जानने के लिये जगह नहीं रही। तात्पर्य है कि बुद्धि में अनेक भाषाओं आदि का ज्ञान होने पर भी बुद्धि में जगह खाली ही रहती है और कितनी ही भाषाएँ आदि सीखने पर भी बुद्धि भर नहीं सकती। इस प्रकार जब, प्रकृति का छोटा अंश बुद्धि भी अनेक भाषाओं आदि के ज्ञान से नहीं भरती, तो फिर प्रकृति से अतीत, अनन्त, असीम और अगाध भगवान् का कोई अंश अनन्त सृष्टियों से कैसे भर सकता है वह तो बुद्धि की अपेक्षा भी विशेष रूप से खाली रहता है। परमात्मा ने यह वर्णन अर्जुन की बुद्धि के अनुसार विशिष्ट विभूतियां बता कर अंत में यह कह कर समापन किया कि उस की विभूतियो का वर्णन संभव नही क्योंकि उस के एक अंश मात्र में यह नीचे से ले कर ऊपर तक समस्त सृष्टि समाई हुई है अतः जो भी है वो परमात्मा का ही अंश है, उस के अतिरिक्त कुछ भी नही। मैं इस सम्पूर्ण जगत् को अपने एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ वेदान्त में जगत् शब्द में वे समस्त अनुभव समाविष्ट है, जो हम अपनी इन्द्रियों, मन और बुद्धि के द्वारा प्राप्त करते हैं। संक्षेप में जिन वस्तुओं को हम दृश्य रूप में जानते हैं, वे सभी जगत् शब्द की परिभाषा में आते हैं। इस में दृश्य पदार्थ, भावनाएं, विचार और उन को ग्रहण करने वाली इन्द्रियादि उपाधियाँ भी सम्मिलित हैं। किन्तु हम जिस को बुद्धि से नही जानते वो भी परमात्मा ही है।

अर्जुन से परमात्मा का यह प्रश्न की तुम मेरे बारे में या मेरी विभूतियों के बारे में इतना विस्तृत रूप से जानने की जो चेष्टा क्यों कर रहा है, एक व्यवहारिक प्रश्न है। जब हम किस विषय वस्तु को मर्म एवम उस के स्वरूप को जान लेते है, तो हमारा कर्तव्य उस को व्यवहारिक आचरण में लाने का होना चाहिये। ज्ञान को प्राप्त करने की चेष्टा असीमित है, कर्म करने के व्यक्ति की उम्र सीमित है। अतः सीमित समय का उपयोग यथेष्ट ज्ञान की प्राप्ति के बाद उपयोग में लाने का होना चाहिए। यदि हम अधिक समय ज्ञान को प्राप्ति में लगा देंगे तो हमारे पास उस को व्यवहार में लाने के लिये कम समय होगा। अतः सम्वाद या

बातचीत उद्देश्य पूर्ण और संशय के समस्त पहलू को मिटाने के लिये होनी चाहिये। न कि मनोरंजन या आनन्द के लिये। याद रहे, अर्जुन ने कहा था कि आप के अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नही होती।

एक सामान्य जीव प्रकृति की योगमाया में इतना अधिक फस चुका होता है कि सांसारिक व्यापार एवम कर्म कांड में अतिरिक्त उस को कुछ नही सूझता। उस का यज्ञ, धर्म, दान, पूजा या देवता के प्रति समर्पण का अर्थ उस के सांसारिक दुखो के निवारण, स्वास्थ्य, धन, परिवार के अतिरिक्त कुछ नही होता। इसलिये विभूतियों को समझ कर वह उन्हें भी देवता ही मान कर पूजने लगता है। उस के समय का निवेश ततकालीन लाभ के लिये होता है, फिर वह चाहे विषय उस के मोक्ष का ही क्यों न हो। मेरा अनुभव है, उपदेश, भागवद, प्रवचन एवम चर्चा का विषय क्षणिक आनन्द एवम अहम की संतुष्टि के अतिरिक्त कुछ नही होता। प्रत्येक जीव कैसे भी यही सिद्ध करने में लगा रहता है कि वह भी धार्मिक, सांस्कारिक एवम ज्ञानवान है, जबकि आत्मिक तौर पर उस का मन पूर्णतः सांसारिक और चंचल ही होता है। इसलिये भगवान ने अर्जुन से यही पूछ लिया कि जब मैने तुन्हें बताया कि इस ब्रह्मांड का रचियता मै हूँ एवम प्रत्येक जड़-चेतन पदार्थ में मैं ही उपस्थित हूँ तो उस दृष्टिकोण को छोड़ कर तुम्हारा आग्रह मुझे विभूतियों के स्वरूप में सुनने का क्यों है। इस का क्या उद्देश्य है। क्या तुम्हे अच्छा लगता है, इसलिये मात्र आत्म संतुष्टि के लिये तुम यह जानना चाहते हो।

यह प्रश्न अक्सर मुझे भी है कि मेरा गीता अध्ययन का उद्देश्य क्या है? किन्तु अभी तक कोई स्पष्ट उत्तर नही खोज पा रहा हूँ। गीता अध्ययन हम संस्कार वश कर रहे है, या आध्यात्मिक ज्ञान के लिए, या अपने मोक्ष की प्रति के लिए आदि आदि। कभी कभी लगता है कि गीता पढ़ना है, इसलिए पढ़ रहे है। लेकिन अध्ययन शुरू है। यही विषाद में फसे अर्जुन की स्थिति है, अब उसे परमात्मा की बातों और ज्ञान में रस आ रहा है, वह अपना विषाद भी भूल गया है, कि वह युद्ध भूमि में अपने खोये हुए आत्मविश्वास के असमंजस की स्थिति से उभरने के लिये परमात्मा को सुन रहा था। इसलिये परमात्मा ने भी अप्रत्यक्ष रूप से उसे यही याद दिलाया कि इतनी बाते जानने का वास्तविक उद्देश्य क्या है? क्या वह युद्ध के क्षत्रिय धर्म की बजाए, जो सन्यासी बनने की सोच रहा था, अब इतना विस्तृत स्वरुप में परमात्मा की विभूतियों को क्यों जानना चाह रहा है।

विभूति योग का यह अध्याय अपने अंतिम श्लोके के साथ समापन होता है जो चिन्तन का विषय इस लिये है जिस हम परमात्मा कर के पूजते है वो उस का अंश है, परमात्मा का चिंतन या परमात्मा को जानना प्रकृति से प्राप्त मन एवम बुद्धि से संभव नही, इसे तो इस के पार जा कर ही प्राप्त कर सकते है, अतः उन की समस्त विभूतियो में उस स्वरूप का चिंतन करे किन्तु उस को परमात्मा न मान बैठे।

।। हरि ॐ तत सत।। 10.42।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ अध्याय: १० सारांश॥

।। ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः॥

||ōṃ tatsaditi śrīmadbhagavadgītāsūpaniṣatsu brahmavidyāyāṃ yōgaśāstrē śrīkṛṣṇārjunasaṃvādē vibhūtiyōgō nāma daśamō'dhyāyaḥ ||

भावार्थ:

इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में 'विभूति-योग' नाम का दसवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ॥

Meaning:

Thus, in the Upaniṣad sung by Lord, the science of Brahma, The scripture of Yoga, the dialogue between Sri Krishna snd Arjuna, ends the tenth chapter entitled “The Yoga of Divine Glories”

॥ हरि: ॐ तत् सत् ॥

Summary of Bhagvad Gita Chapter 10:

When India received independence, the founders wanted to ensure that the newly created states with in India did not disintegrate due to infighting. To that end, they created a two-tier government system with a state government

that was aligned to state interests and a central government that put the interests of India before anything else.

Furthermore, in order to ensure that residents of a state did not forget that they are part of a bigger country, our founders instituted the national flag, the national anthem, Independence Day, republic day, the national emblem and so on.

These symbols are expressions, or “vibhootis” of India. They are highly important because they remind us of the existence of the nation of India no matter where we are. They make the abstract concept of the nation of India tangible and visible.

Shri Krishna ended the previous chapter by urging Arjuna, and all devotees, to always keep their minds within Ishvara. In this chapter, Arjuna asked Shri Krishna, “how can I know Ishvara when my eyes cannot see him?” The answer to Arjuna’s question is the main teaching of this chapter, in the form of natural, historic, Puraanic and other awe-inspiring people and objects that serve as Ishvara's expressions or manifestations.

How do these expressions benefit us? Just like we use symbols of India to constantly invoke the notion of India, we should use one or some or all of these expressions to constantly remember and think of Ishvara. This chapter is not meant to be a lesson in the Puraanas. It is meant to be practiced as a daily meditation, by employing one expression, whichever we like, as the object of our meditation.

So for example, if we have an affinity for the sun, we should bring the shloka “aadityaanaamaham vishnuhu” to attention and keep it in our minds as much as possible, whenever we see the sun. This will transform our vision to look beyond the visible aspect of the sun, connect the sun to Ishvara and see the Ishvara inside.

सारांश:

नवम अध्याय में राजगुह्य योग द्वारा भगवान श्री कृष्ण ने राजविद्या का गुप्त ज्ञान का उपदेश दिया, जिस में अर्जुन को ज्ञानयोग के साथ स्मरणपन और समर्पण के साथ भक्ति, श्रद्धा, विश्वास और प्रेम से परमात्मा का ह्रदय से चिंतन का उपदेश दिया था।

जो अव्यक्त है, निराकार है, इन्द्रियों से परे है, उस का चिंतन या ध्यान कोई किस प्रकार कर सकता है क्योंकि जीवात्मा प्रकृति से बंधा जीव है, उस के साधन प्रकृति से प्रदत्त इन्द्रिय,मन और बुद्धि ही है। अतः दशम अध्याय का सृजन परमात्मा के व्यक्त स्वरूप का चिंतन किस प्रकार करना चाहिये, के ज्ञान के लिये हुआ।

इसलिये अध्याय के आरम्भ में पुनरावर्ती करते हुए, भगवान श्री कृष्ण कहते है, तुझ प्रेमी के हित की कामना से जो कुछ में कहता हूँ, उस परम वचन को तू, फिर से श्रवण कर। मेरे प्रभाव को न देवता जानते है और न ही ऋषिगण, क्योंकि मैं सब का आदि कारण हूँ पर अपना कोई कारण नही रखता।

परमात्मा कहते है मेरी उत्पत्ति को न देवता और न ही महृषि गण जानते है क्योंकि मैं उन का भी आदि कारण हूँ। जो मुझे अजन्मा, अनादि और सम्पूर्ण लोको के महान परमात्मा को साक्षात्कार सहित जानता है वो ही ज्ञानी है।

जैसे समुन्द्र का तरंग, फेन, बुद्दुदादि के रूप में तरंगायमान होना समुन्द्र की विभूति व चमत्कार ही है और जैसे मृतिका का घट शरावादि के रूप में विकास व लय मृतिका की अदाएं ही है। इसी प्रकार सब देव, महृषि और अखिल संसार मेरी विभूति व चमत्कार ही है।

इस प्रकार भगवान ने बुद्धि, ज्ञान, क्षमा, सत्य, दम, शम, भय, अभय, सुख-दुख, भाव-अभाव, यश-अयश, अहिंसा और समता आदि नाना भावों तथा सप्तऋषि एवम चार मनुयो को जिन से अतिभौतिक सृष्टि की उत्पत्ति हुई, अपनी ही विभूति या चमत्कार बताया और कहा जो मेरी इस विभूति एवम योग को उपयुक्त रीति से तत्व रूप में जान लेता है, वह मुझ में अचल एवम अटल योग प्राप्त कर लेता है।

आगे हम ने उन अधिकारी देवताओ के अनन्य भाव वर्णन पढा, किस प्रकार यह देवता गण कार्य करते है एवम कैसे परमात्मा उन देवताओ के प्रति बुद्धि संयोग प्रदान करता है।

परमात्मा द्वारा उस को स्मरण करने वाले जब अनन्यभाव से बिना विचलित हुए उस को स्मरण करते हुए समर्पित होते है तो उन्हें बुद्धि ज्ञान योग जैसे जटिल तत्व भी परमात्मा प्रदान करता है। परमात्मा द्वारा भक्ति करने वाले अनन्य भक्त का योगक्षेम वहम करने की प्रतिबद्धता भी करते है जिस से भक्त निश्चित हो कर अनन्य भाव से अविचलित, निर्भय एवम एकनिष्ठ हो कर भक्ति करता रहे।

अर्जुन जिस ने अभी तक यह सब बातें ऋषि मुनि गुरु जनों एवम ज्ञानी लोगो से सुनी थी, जब परमात्मा को साक्षात यह बताते हुए सुनता है तो भाव विभोर हो नत मस्तक हो जाता है एवम प्रार्थना करने लगता है कि उस को परमात्मा अपने उन स्वरूप के बारे में बताए जिस से उस का चिंतन किया जा सकता है। क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी इतना सक्षम नही जो परमात्मा के स्वरूप को बता सके।

परमात्मा जो अनन्त है, कण कण में है उस के स्वरूप का वर्णन करना संभव नही किन्तु अर्जुन के आग्रह पर परमात्मा अपनी मुख्य मुख्य विभूतियो से परिचय श्लोक 20 से 40 तक करवाते है।

अपनी विभूतियो का वर्णन करते हुए परमात्मा ने ज्ञान, ऐष्वर्य, शौर्य, संगीत, गायन, पुण्य, तेज, छल, प्रणव, शब्द-अक्षर ज्ञान, स्मरण, समर्पण, सेवा, शक्ति, वीरता आदि आदि सभी गुणों को अपनी विभूति बताया एवम कहा जब भी तुम यह किसी भी वस्तु, जड़-चेतन, देवताओ, पितरो, जीव में यह गुण देखो तो परमात्मा के गुण समझ कर परमात्मा का चिंतन करो।

परमात्मा का कथन है कि विभूति का वर्णन का यह कथन कदापि नही है कि वह अपनी इन विभूतियो के रूप में परिणामी हो कर आता है। वह अपने आप मे ज्यो का त्यों ही है और किसी भी विकार से रहित निर्विकार ही है।

जब हम किसी वस्तु, व्यक्ति या द्रव्य का दृष्टा दृष्टि से अवलोकन करते है तो हमेशा द्रष्टा दृश्य से परे जो अवलोकन कर रखा रहा है, रह जाता है। ब्रह्म या आत्मा कोई द्रव्य पदार्थ नही है,जिसे भौतिक प्रयोगशाला में किसी विधि से परखा जा सके।

जो पदार्थ इन्द्रियातीत है और जिस का चिंतन नही किया जा सकता, उस को यह मान कर भी चिंतन नही करना चाहिये कि ब्रह्म अचिन्त्य है। उपनिषद भी कहते है कि आत्म ज्ञान केवल तर्क से नही प्राप्त हो सकता। जब तक आत्मा प्राकृतिक गुणों से युक्त है, वह क्षेत्रज्ञ

कहलाता है, और प्रकृतिक गुणों से मुक्त होने से वह ब्रह्म ही है। इसलिये परमात्मा का कथन है कि पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इस प्रकार यह अष्टधा मेरी प्रकृति है और जिस ने सारे संसार को धारण किया है, वह जीव भी मेरी ही प्रकृति है।

प्रकृति और पुरुष से परे परमात्मा के व्यक्त और अव्यक्त दो स्वरूप बताये गए। व्यक्त स्वरूप में भगवान श्री कृष्ण कई बार घोषणा प्रथम पुरुष के स्वरूप में करते है

प्रकृति मेरा स्वरूप है (9.8)

जीव मेरा अंश है (15.7)

मुझ में मन लगा कर मेरा भक्त हो (9.34) आदि आदि।

फिर भी समस्त सृष्टि में अपनी विभूति के व्यक्त स्वरूप का वर्णन करते हुए, अपने को अव्यक्त ही बताते है। फिर कभी यह भी कहते है कि मूर्ख लोग मुझे व्यक्त समझते है।

तुम जो मेरा रूप देख रहे हो, इस से तुम यह न समझो कि मैं सर्व भूतो के गुणों से युक्त हूँ, यह मेरी उत्पन्न की हुई माया है। मेरा सच्चा स्वरुप सर्वव्यापी अव्यक्त और नित्य है।

भगवद्गीता और उपनिषदों में परमात्मा के अव्यक्त स्वरूप को कभी सगुण, कभी उभयविद यानी सगुण-निर्गुण और कभी निर्गुण कहा गया है।

अतः विभूतियों में परमात्मा के जो भी सगुण बताये गए वो चिंतन करने योग्य गुण ही है, कोई व्यक्ति विशेष, प्रकृति या भाव को परमात्मा नही कहा गया है। क्योंकि निर्गुण का चिंतन नही किया जा सकता, इसलिये अपनी ज्ञानेद्रियों से सगुण ब्रह्म की उपासना करते करते जीव सगुण ब्रह्म से सगुण-निर्गुण ब्रह्म को जान पाता है और उस के बाद ही निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त या उस मे लीन हो पाता है। इसलिये जिस श्रद्धा, विश्वास, प्रेम के साथ परमात्मा के चिंतन किया जाता है, वस्तुतः जीव भी उसी प्रकार् का फल को प्राप्त होता है। अतः विभूतियाँ परमात्मा के चिंतन का माध्यम है,पूर्ण ब्रह्म नही, और यही ज्ञान के साथ चिंतन करने की आवश्यकता है।

परब्रह्म अव्यक्त से भी परे स्वरूप में स्वीकारा गया है। उस परब्रह्म को चिंतन मनन करने के लिये जीवात्मा के पास प्रकृति के अंतर्गत इन्द्रिय-मन- बुद्धि और पंच महाभूत का शरीर ही है। जिस में देखने, समझने और ध्यान, धारणा और समाधि आदि लगाने की अपनी ही

एक परिसीमा है। जीवात्मा किस प्रकार परमात्मा को ध्यान लगाएं, इसलिये प्रकृति से सत गुण से शुरुवात की जाती है। सात्विक गुणों से आत्मा, चरित्र, मन, बुद्धि और कर्म शुद्ध होने से कामनाओ और अहम पर नियंत्रण आता है। इस के बाद सगुण उपासना से ध्यान एवम स्मरण की प्रक्रिया शुरू होती है। यह सगुणात्मक ध्यान मन-बुद्धि में चेतना के द्वार को खोल देता है। जिस से सगुणाकार परमात्मा के निर्गुणाकार स्वरुप समझ के आने लगता है। अर्थात उपासना सगुणाकार- निर्गुणाकार परब्रह्म की शुरू होती है जो निर्गुणाकार परब्रह्म की उपासना में उस मे लीन हो कर जीव को अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति पर पूर्ण होती है। विभूतिया उसी सगुणाकार- निर्गुणाकार स्वरूप का प्रतीक है किंतु कुछ मूर्ख लोग यही उसे ही ब्रह्म मान ले तो वह उन की भूल है। जो इन सब से परे है वही परब्रह्म है। सगुण उपासना उस को जानने का प्रयास है।

प्रस्तुत अध्याय में जिन भी महान विभूतियों का वर्णन है, उन का चिंतन एवम अनुसरण हमारे सात्विक भाव के विकास के अनिवार्य है। व्यवहार में जिस घर मे उच्च महापुरुष के चरित्र और उपलब्धियों को बच्चों को पढ़ाया जाता है, वह बच्चे आगे चल कर चरित्रवान, कर्मठ, कठनाइयों से नही विचलित होने वाले, अच्छे संस्कारो से युक्त होते है। ब्रह्म तो प्रत्येक जीव में समान रूप से समाया हुआ है, किन्तु मुक्ति और मोक्ष का मार्ग उन्ही के लिये जो सात्विक गुणों से अपना विकास करते है।

इस अध्याय का अंत **"हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता"** से कराते है एवम कहते कि परमात्मा निर्गुण है, समस्त सगुण उस के एक अंश से उत्पन्न है। निर्गुणाकर का सगुणाकार वर्णन करना संभव नही, इस लिये संसार मे जो कुछ भी है उसे परमात्मा की देन समझना चाहिए किसी वस्तु विशिष्ट की नहीं। क्योंकि वस्तु विशिष्ट अनित्य है, यदि नित्य कोई है तो वो परमात्मा ही है। परमात्मा ही उस विशिष्ट गुण को प्रदान करता है और जब तक चाहे तब तक उस के साथ रखता है। व्यक्ति विशेष या किसी भी जड़ प्रदार्थ को कभी भी परमात्मा नही मानना चाहिए क्योंकि उस मे जो भी विशिष्ट गुण है, वो परमात्मा की विभूति है परमात्मा नहीं। सगुणाकार परमात्मा के चिंतन का माध्यम है जिस से हम अपने ज्ञान योग को प्राप्त हो एवम निर्गुणाकार परमात्मा को प्राप्त हो कर मुक्त हो।

।। हरि ॐ तत सत।। 10 ॥

==========